जीवन की कला

अनुक्रम

1. विचार, चिंतन और विवेक...2
2. दृष्टि का परिवर्तन...11
3. सत्य की झलक..24
4. आकाश का आनंद..36
5. नये मनुष्य का जन्म..49
6. जीवन की कला के तीन सूत्र..64
7. आध्यात्मिक और लौकिक जीवन...74
8. जीवन की अनंतता...83
9. जीवन का आमूल परिवर्तन..94 10...अहंकार का बोध 105

जीवन की कला
पहला प्रवचन

विचार, चिंतन और विवेक

मेरे प्रिय आत्मन्!

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह भाव कि मैं हूं, अनिवार्यतया इस भाव से जुड़ा होगा कि ईश्वर नहीं है। ये दोनों संयुक्त घटनाएं हैं। जिस सदी में मनुष्यों को ऐसा लगेगा कि मैं हूं, उस सदी में उन्हें लगेगा ईश्वर नहीं है। जितना तीव्र प्रकाश अपने व्यक्तित्व के घरों में अहंकार का जलेगा, उतना ही परमात्मा के प्रकाश से हम वंचित हो जाएंगे। तो जब मैं कह रहा हूं, विचार को छोड़ दें; तो मैं कह रहा हूं, अपने भीतर, घर के भीतर जलती हुई टिमटिमाती मोमबत्ती को बुझा दें और फिर देखें। फिर जो मैं कह रहा हूं कोई इस वजह से नहीं कि मैं कहता हूं इसलिए मान लें; मैं कहता हूं, करें और देखें। यह कोई सैद्धांतिक बातचीत नहीं है, यह कोई फिलॉसफी नहीं है, यह कोई तार्किक मामला नहीं है कि कोई लफ्फाजी तर्क से मैं सिद्ध कर रहा हूं। मैं तो एक अत्यंत प्रयोगात्मक, एक्सपेरिमेंटल, एक ऐसी व्यावहारिक बात कह रहा हूं--जिसे करें और देखें। एक बार बुझा कर देखें अपने घर के दीये को, तो पता चलेगा कि चांद की रोशनी भीतर प्रविष्ट हो जाती है। एक सड़ा सा टिमटिमाता दीया चांद को रोके रखता है। वैसे ही जरा "मैं" को बुझा कर देखें। और "मैं" नहीं बुझेगा जब तक विचार हैं। क्योंकि विचार ही दीये का तेल है। विचार ही उस दीये की अग्नि है जो "मैं" को जलाए हुए रखती है। विचार को अलग करें, क्रमशः दीया बुझता जाएगा अहंकार का। सारा विचार अलग हो जाए, आप पाएंगे, वहां कोई दीया नहीं है। और जिस घड़ी आप निर्विचार और निर-अहंकार होकर देखेंगे, आपको पता चलेगा "मैं" कभी नहीं था। जो सदा से था वह अब भी है और आगे भी होगा। "मैं" मेरा भ्रम था। और जिस मनुष्य को यह ज्ञात हो जाए कि "मैं" मेरा भ्रम था, वह सत्य को उपलब्ध हो जाता है। वैसा सत्य ही जीवन में अनंत आनंद को और सौंदर्य को प्रकट करता है।
तो विचार छोड़ कर आप जड़ नहीं होंगे। हां, अगर विचार के पीछे ही चले जाएं, तो निश्चित जड़ हो जाएंगे। विचार को छोड़ कर ही आप में परिपूर्ण चेतना प्रकट होगी। और यह इतनी सरल बात है, अगर एक बार स्पष्ट रूप से खयाल में आ जाए, इतनी सरल बात है, इतनी सरल क्योंकि छायाओं को मिटा देना बहुत कठिन नहीं होता, और भ्रमों को तोड़ देना बहुत कठिन नहीं होता, और सपनों को मिटा देना बहुत कठिन नहीं होता। ये सब स्वप्न हैं हमारे, जो तोड़े जा सकते हैं। मैं अभी ध्यान के संबंध में और विस्तार से बात करूंगा।

साथ ही जिन्होंने यह प्रश्न पूछा है, उन्होंने यह भी पूछा है कि नीति
पर मैं बहुत जोर नहीं देता हूं, मैं आत्म-निरीक्षण पर, ध्यान पर, विचार शून्यता पर जोर देता हूं, लेकिन नीति पर जोर नहीं देता हूं।

निश्चित ही मैं नीति पर जोर नहीं देता। न जोर देने का मेरा कारण है। अगर मैं आपसे कहूं, घर में दीया जला लें, तो क्या आप मुझसे कहेंगे कि आप दीया जलाने की तो बात करते हैं, लेकिन अंधेरा निकालने पर जोर नहीं देते? मैं कहूंगा, निश्चित ही, अंधेरा निकालने पर मैं बिल्कुल जोर नहीं देता। कोई पागल होंगे जो अंधेरा निकालने पर जोर देते होंगे, हम तो दीये ही जलाने पर जोर देते हैं। मतलब यह है कि अगर ध्यान और विवेक जाग्रत हो जाए, तो अनीति असंभव हो जाती है। इसलिए नीति पर जोर देने का कोई कारण नहीं है। जिस मनुष्य का विवेक जाग्रत हो वह अनीति नहीं कर सकेगा। और जिस मनुष्य का विवेक जाग्रत न हो, किसी तरह जबरदस्ती अगर नैतिक हो भी जाए, उसकी नीति का कोई भरोसा और विश्वास नहीं है। और फिर यह भी स्मरण रखें, जो नीति जबरदस्ती आरोपित की जाती है वह निश्चित ही टूट जाती है। क्यों? क्योंकि जबरदस्ती

आरोपित नीति को निरंतर सम्हाल कर रखना होता है चौबीस घंटे, एक क्षण को भी छूटी तो बिखर जाएगी। अपने आप जबरदस्ती सम्हाली गई है, विवेक से जाग्रत नहीं है, आत्म-बोध से पैदा नहीं हुई है।
समाज कहता है, लोग कहते हैं, ये शिक्षण संस्थाएं कहती हैं कि झूठ मत बोलो, इसलिए हम झूठ नहीं बोलते हैं। झूठ उठता है। स्वयं के विवेक ने कहा नहीं कि सत्य बोलो, दूसरे ने सिखाया है इसलिए सत्य बोलते हैं। यह चेष्टित होगा, कल्टिवेटिड होगा। इसमें श्रम लगेगा। और एक नियम समझ लें, जिस बात में श्रम लगता है उसको आप चौबीस घंटे नहीं साध सकते, बहुत दिन तक नहीं साध सकते। क्योंकि श्रम के बाद विश्राम करना जरूरी है। कोई आदमी सतत श्रम नहीं कर सकता। श्रम के बाद विश्राम करना जरूरी है। तो जिसकी नीति श्रम से सधी हुई है, जब श्रम से थक जाएगा तो विश्राम में अनीति आ जाएगी। जब वह विश्राम करेगा तो अनीति प्रविष्ट हो जाएगी। स्मरण रख लें, श्रम निरंतर नहीं किया जा सकता। एक सीमा आएगी कि आप थक जाएंगे श्रम करने से और विश्राम करना पड़ेगा, जो कि बिल्कुल प्राकृतिक नियम है। और इसीलिए साधु और संन्यासी, सज्जन और सदपुरुष भी, जिनको हम सामान्यतः पाते हैं, सब भांति नैतिक हैं। एक दिन अचानक अनैतिक होते भी देखे जाते हैं। हम कहते हैं कि उनका पतन हो गया, पतन नहीं हुआ। श्रम से जिसको साधा था, कितनी देर साध सकते थे? एक सीमा आती है, श्रम थक जाता है और विश्राम करना पड़ता है। तो अगर श्रम से नीति सधी थी, विश्राम में अनीति आ जाएगी। यह स्वाभाविक सहज नियम है। इसलिए मैं श्रमसाध्य नीति के समर्थन में नहीं हूं। मैं सहजस्फूर्त नीति के समर्थन में हूं, जो अपने आप पैदा होनी चाहिए।
एक तो वह प्रेम है कि लोग मुझसे कहते हैं कि मैं करूं इसलिए करता हूं। लोग कहते हैं, प्रेम करो, इसलिए मैं प्रेम करता हूं। इस प्रेम की कोई कीमत हो सकती है? और एक वह प्रेम है जो मेरे सारे प्राणों से आविर्भूत होता है, जो मेरे सारे प्राणों से उठता है और फैलता है। तो एक तो वह नीति है जो ऊपर से थोप ली जाती है और एक वह नीति है जो भीतर से निकलती है।
मैं जिस ध्यान पर, आत्म-निरीक्षण पर जोर दे रहा हूं, अगर उस दिशा में गति हो, तो नीति आरोपित नहीं करनी होती, वह भीतर से निकलनी शुरू हो जाती है। क्यों? जिस भांति जानते हुए आग में हाथ डालना मुश्किल है, उसी भांति जानते हुए पाप करना असंभव है जिस भांति देखते हुए दीवाल में से निकलना कठिन है। अंधा अलग बात है, एक अंधा आदमी यहां से निकलने की कोशिश करे, दीवाल से टकरा सकता है, तो उससे हम कहेंगे, दरवाजे को स्मरण रखो। कितनी बार कहा कि दरवाजा बाईं तरफ है, बाईं तरफ जाओ। अंधा सीख भी सकता है कि बाईं तरफ दरवाजा है, जा भी सकता है, फिर भी दरवाजा उसे दिखाई नहीं पड़ता। दीवाल से टकराने की संभावना हमेशा है। लेकिन जिस आदमी को दरवाजा दिखाई पड़ रहा हो, वह अगर दीवाल से टकरा जाए, तो कैसा आश्चर्य होगा? वैसे ही जिस मनुष्य का स्वयं विवेक जाग्रत हुआ हो वह अनैतिक हो जाए, इतना ही आश्चर्य होगा, जितना आंख वाला आदमी देखता हुआ दरवाजे से टकरा जाए, दीवाल से टकरा जाए।
आंख वाला जैसे दरवाजे से निकल जाता है, ऐसे ही भीतर की आंख खुल जाए तो मनुष्य नैतिक जीवन में प्रविष्ट होता है। अनीति अज्ञान है और कुछ भी नहीं है। नीति ज्ञान है और कुछ भी नहीं है। इसलिए नीति पर मैं जोर नहीं देता, ज्ञान पर जोर देता हूं। जो नीति पर जोर देते हैं, वह किसी न किसी रूप में रिप्रेशन, दमन, जबरदस्ती आरोपण पर उनका जोर है। जो कहते हैं, कुछ भी हो तुम सत्य बोलो, कुछ भी हो तुम क्रोध मत करो; कुछ भी हो तुम शांत रहो, कुछ भी हो तुम अहिंसा करो, जो ऐसा सिखाते हैं, वे आपके प्राणों को बड़े घेरों में बांध रहे हैं। वह आपकी आत्मा को मुक्त नहीं कर रहे हैं, वह आपकी आत्मा को जेलों में डाल रहे हैं, और आपकी आत्मा तड़फड़ाने लगेगी। इस तरह की कैद से घबड़ाने लगेगी। और आज नहीं कल आप खुद, जिन्होंने वे दीवालें बनाई थीं, खुद ही उनको तोड़ने वाले हो जाएंगे, और यही वजह है कि जितने लोग नैतिक जीवन को जबरदस्ती थोप लेते हैं उनके मन में चौबीस घंटे अनीति का रस बहता रहता है। ऊपर से उन्होंने तय कर लिया है, ऊपर से उन्होंने सब सीख लिया है, ऊपर से वे अपना घेरा भी बना रहे हैं, और उनकी आत्मा मुक्त होने को भी तड़फ रही है। उनके प्राण तड़फ रहे हैं। अब मुक्ति का रास्ता उनको एक ही दिखाई पड़ता है--अनीति।

जिसने नीति को कैद बना लिया है, उसके लिए मुक्ति दिखाई पड़ती है अनीति में।
इसलिए समझ लीजिए दुनिया में जितनी सभ्यता पनप रही है, वह थोथी नीति पर खड़ी है।
इसलिए सारी दुनिया में उस सभ्यता के विरोध में भी आंदोलन चल रहे हैं। सारी जमीन पर न मालूम कितने लोग उसके विरोध में खड़े हो गए हैं, और इस इच्छा में हैं कि सारी नीति तोड़ देनी चाहिए। कोई नीति मानने की कोई जरूरत नहीं है। यह जो नैतिक असमर्थन में लोग खड़े हो रहे हैं, इनका जिम्मा उन नैतिक लोगों पर है जिन्होने जबरदस्ती नीति को आरोपित करने के उपदेश दिए हैं और लोगों को समझाया है।
असल में जो नहीं जानते, जो बिल्कुल नहीं जानते कि नैतिक जीवन का उदय कैसा होता है? केवल वे ही नीति पर जोर देते हैं। जो जानते हैं वह नीति पर नहीं बोध पर, विवेक पर, आत्म-स्मरण पर जोर देते हैं। आपको अपना बोध आ जाए, आप अपने ही अहित में कुछ भी नहीं कर सकेंगे। क्योंकि अनीति किसी और का अहित नहीं आपका अहित है। जब मैं क्रोध करता हूं, जब मैं झूठ बोलता हूं, जब मैं पाप करता हूं या चोरी करता हूं या कुछ और करता हूं, जिसको हम अनीति कहते हैं, तब मैं किसी और का नहीं अपना नुकसान करता हूं। और अगर यह दिखाई पड़ जाए, अगर यह दिखाई पड़ने लगे तो फिर कौन है ऐसा कि यह नुकसान करने को राजी होगा?
बुद्ध एक गांव के पास से निकले, कुछ लोगों ने उन्हें घेरा, अपमान किया, गालियां दीं। बुद्ध ने कहाः मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है, अगर तुम्हारी बातचीत पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं? उन लोगों ने कहाः यह बातचीत नहीं है, हमने गालियां दी हैं, अपमान किया है। बुद्ध ने कहा कि तुमने दी होंगी गालियां और अपमान किया होगा, मैंने उन सबका लेना बंद कर दिया है। तुमने दिया होगा, मैंने लेना बंद कर दिया है। उन्होंने कहाः क्यों? बुद्ध ने कहाः देखा सिवाय हानि के और कुछ भी नहीं है। अब तुम इन सारी गालियों को वापस ले जाओ। क्योंकि पिछले गांव में लोग आए थे और फूल लाए थे और मालाएं लाए थे, और फल लाए थे, और मिष्ठान लाए थे; और मैंने उनसे कहा मेरा पेट भरा है; तो अपनी थालियों को वापस ले गए। अब तुम क्या करोगे? तुम जो गालियां लाए हो, अपमान लाए हो, तुम क्या करोगे? तुम भी अपनी थालियां वापस ले जाओ। मैंने लेना बंद कर दिया है। न मैं लेता हूं, न मैं देता हूं। क्योंकि मैंने देख लिया, सिवाय अहित के और कुछ भी नहीं है।
अगर भीतर यह स्मरण आ जाए, यह बात दिखाई पड़ने लगे कि अहित कहां है और आत्महित कहां है तो अनीति असंभव हो जाएगी। इस बात को समझ लें, समाज का जोर है कि नैतिक हों आप, क्योंकि समाज समझता है, अनैतिक होने में दूसरों का नुकसान है। समाज का जोर है कि आप नैतिक हों। क्योंकि समाज समझता है कि अगर आप अनैतिक हुए तो दूसरों का नुकसान होगा। धर्म कहता है आप विवेकपूर्ण हों, और विवेकपूर्ण होने से नैतिक हो जाएंगे, और धर्म यह भी कहता है, अगर आप अनैतिक हुए तो नुकसान आपका होगा। इसमें फर्क है। सामाजिक नैतिकता में और धार्मिक नैतिकता में बुनियादी फर्क है। सामाजिक नैतिकता, दूसरे का अहित न हो जाए, इसका खयाल करती है। वह यह कहती है, चोरी मत करो। क्योंकि जिनकी तुम चोरी करोगे उनको नुकसान पहुंच जाएगा। धर्म कहता है अगर तुम्हें दिख जाए तो तुम समझोगे कि चोरी कैसे करुं? क्योंकि चोरी करूंगा तो नुकसान मुझे पहुंच जाएगा। यानि यह फर्क है, और जब तक यह दिखाई न पड़े कि नुकसान आपको पहुंच रहा है, तब तक चोरी रोकी नहीं जा सकती। तब तक अनीति रोकी नहीं जा सकती। तो मैं कतई नीति पर जोर नहीं देता, क्योंकि मैं समझता हूं, नीति जोर देने की बात ही नहीं है। जोर देने की बात तो धर्म है, विवेक है।
आचरण और व्यवहार बहुत जोर देने की बात नहीं है। जैसे मैं आपसे कहूं
बीज बो दें, पौधों को सम्हालें, आप कहेंगे फूलों की बात ही नहीं करते हैं। बीजों की बात करते हैं, पौधों की बात करते हैं, फूल की बात ही नहीं करते। मैं आपसे कहूंगा फूल की फि क्र छोड़ें, बीजों को बोएं, पानी दें, पौधे की फिकर करें। फूल आएंगे, फूल तो अनिवार्य आएंगे। जो व्यक्ति विवेक को सम्हालता है, नीति के फूल अनिवार्य आ जाते हैं। उनकी फिकर करने की कोई भी जरूरत नहीं है। और अगर आपने फूलों की फिकर की और बीजों को भूल गए, जड़ों को

भूल गए, पौधों को भूल गए, तो स्मरण रखें, अगर आपके हाथ में फूल हुए भी तो कागज के होंगे, असली नहीं हो सकते हैं। क्योंकि असली फूल कभी फूलों की फिकर से नहीं आते हैं। वे तो किसी और चीज की फि क्र से आते हैं।
माओत्सु तुंग ने अपने बचपन का एक स्मरण लिखा है। वह सारे मुल्क में उसको कहता हुआ घूमा। बड़ी छोटी सी, बड़ी मीठी अर्थपूर्ण बात लिखी है। उसने लिखा है कि जब मैं छोटा था, छोटे गांव में रहता था। मेरी मां का एक बगीचा था। एक दिन मेरी मां बीमार पड़ गई, मैंने उससे कहाः घबड़ाओ मत, वह बगीचे के लिए बड़ी चिंतित थी, फूलों का क्या होगा, पौधों का क्या होगा, तो मैंने उनसे कहाः घबड़ाओ मत, मैं फिकर कर लूंगा। पंद्रह दिन बात जब उसकी मां उठी, उसने देखा कि बगीचा तो बिल्कुल सूख गया है, फूलों का तो कोई पता ही नहीं, पौधे भी आधे मर गए हैं। उसने माओ को बुलाया और कहा कि तुम तो दिन भर बगीचे में रहते थे, किया क्या? ये सब पौधे मर गए और फूल तो सब नष्ट हो गए। माओ रोने लगा, उसने कहाः मैंने तो बड़ी फिक्र की, मैं तो एक-एक फूल को प्रेम करता था, एक-एक फूल को पानी देता था, एक-एक फूल को झाड़ता था, धूल न जम जाए लेकिन न मालूम क्या हुआ? बस पौधे सूखने लगे और फूल मरने लगे। उसकी मां ने कहाः नासमझ फूलों के प्राण फूलों में नहीं होते हैं। फूलों के प्राण जड़ों में होते हैं। फूलों की फिकर जिसे करनी हो उसे फूलों की फिकर बिल्कुल नहीं करनी चाहिए। फिकर करनी चाहिए जड़ों की। अगर जड़ें सम्हल जाएं तो सब सम्हल जाता है। और जड़े मिट जाएं तो सब मिट जाता है।
माओ ने लिखा है, जीवन भर के लिए बात समझ ली। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, जो भी फूल की तरह महत्वपूर्ण है, स्मरण रखना, उसके प्राण उसमें नहीं होते, गहरे कहीं जड़ों में होते हैं जो दिखाई नहीं पड़तीं। नीति के फूलः अहिंसा, प्रेम, अपरिग्रह, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, ये सब के सब फूल हैं जो बड़े सुंदर हैं। लेकिन इनके प्राण इनमें नहीं हैं, इनके प्राण उन जड़ों में हैं जो भीतर छिपी हैं। वे जड़ें विवेक की हैं, वे जड़ें आत्म-बोध की हैं, वे जड़ें ध्यान की हैं, वे जड़ें धर्म की हैं, उन पर मेरा जोर है, फूल अपने से आ जाते हैं। इसलिए नीति पर निश्चित ही मेरा जोर नहीं है। और जिनका हो, उन्हें मैं समझता हूं कि वे गलती में हैं। उनसे जो कुछ भी पैदा होगा वह कागज के फूल होंगे। असली नहीं हो सकते हैं।

पूछा है संसार को त्याग कर, जंगल में बैठ कर तप करना, या संसार के प्रति अलिप्त होकर स्वार्थ-भाव के बन कर साधना करना यह केवल क्या व्यक्ति का स्वार्थ नहीं? सभी के कल्याण का मार्ग देख कर कर्त्तव्य की बाजी लगा कर, सभी के साथ अपना कल्याण प्राप्त करने की भावना क्या योग्य नहीं?

ठीक पूछा है, हम सभी के मनों में यह बात उठती है कि क्या जो अपनी ही आत्मा साधना में लगे हैं, वे स्वार्थ में नहीं लगे हैं। क्या उचित न हो कि वे सबके कल्याण के काम में लगें? सेवा में लगें, सहयोग में लगें, समाज विकसित हो ऐसे कामों में लगें, अकेले में एकांत में बैठ कर वे जो कुछ भी कर रहे हों, अगर उसमें आनंद और शांति भी मिलती है, तो भी यह निपट स्वार्थ मालूम होता है। यह प्रश्न स्वाभाविक है सबके मन में उठे, लेकिन मैं आपको कहूं क्या आपको पता है कि अगर आपके भीतर का दीया न जल रहा हो तो आप दूसरे का दीया जला सकते हैं? क्या आपको पता है, अगर आपके भीतर शांति न हो, तो आप दूसरे के लिए मंगलदायी हो सकते हैं? क्या आपको पता है, अगर आपके भीतर प्रेम न हो, तो आप सेवा कर सकते हैं? जो आपके भीतर नहीं है, उसे देने की सामर्थ्य आपमें कैसे हो सकती है? और जो आपके भीतर नहीं है उसे आप कैसे बांट सकेंगे?
इसलिए स्मरण रखें, आत्म-साधना अगर स्वार्थ की तरह मालूम भी होती हो,
तो भी आत्म-साधना ही एकमात्र परार्थ है और परोपकार है। क्योंकि उसके बाद ही केवल उसके बाद ही कोई व्यक्ति दूसरे की सेवा कर सकता है। अन्यथा उसके अभाव में सेवा केवल दंभ होगी, अहंकार होगा। सेवा झूठी होगी, पीछे कोई और मतलब और अर्थ होंगे। और जो खुद ही शांत नहीं है वे दूसरों को शांत करने निकल पड़े, और जिसके जीवन में खुद ही मंगल की वर्षा नहीं हुई, वे दूसरों के

कल्याण की बात सोचने लगे; यह सब धोखा है, आत्म-प्रवंचना है। अपने भीतर जो अंधेरा है उसको भुलाने के ये सब उपाय हैं। ये तो स्मरणीय ही है कि इसके पूर्व कि आप किसी के भी कुछ काम के हो सकें, आपको अपने लिए काम का हो जाना चाहिए। इसके पहले कि आपका जीवन किसी के लिए भी कल्याणकारी हो सके, आपका जीवन आपके लिए तो कल्याणकारी हो जाना चाहिए।
धर्म स्वार्थ को और परार्थ को विरोध में नहीं देखता। जो ठीक-ठीक स्वार्थ है वही ठीक-ठीक परार्थ भी है। मैं तो ऐसे ही देखता हूं। अगर आप ठीक-ठीक अपने स्वार्थ को सिद्ध कर लें, तो आपके जीवन से ज्यादा परोपकारी जीवन और कोई भी नहीं होगा, क्यों? क्योंकि जो आपके आत्यंतिक रूप से स्वार्थ में है, वह किसी के भी स्वार्थ के विरोध में नहीं हो सकता। और स्मरण रखें, आपके भीतर जो भी दूसरे के विरोध में है, आज नहीं कल आपको पता चलेगा वह अपने ही पैर पर मारी गई कुल्हाड़ी थी। जो-जो आपको दिखता है कि दूसरे का स्वार्थ है मेरा नहीं तो आप समझ लेना कि अगर आपको जो दूसरे का स्वार्थ दिख रहा है अपने स्वार्थ के विरोध में तो आप समझना अभी आपको पता भी नहीं कि स्वार्थ क्या है? अभी आपको पता भी नहीं कि मेरा हित क्या है? क्योंकि जो मेरा हित है, वह इस जगत में प्रत्येक प्राणी का हित होना ही चाहिए। क्योंकि सबके भीतर एक सी आत्मा, एक सी चेतना, एक सी कामना और एक सी आकांक्षाओं का वास है। सारे लोग दुश्मन की तरह जमीन पर नहीं खड़े हैं, बल्कि एक ही नियम की अभिव्यक्तियों की भांति हैं। इन सबके भीतर एक से नियम हैं। क्या एक से नियम हैं? मैं अगर थोड़ा समझूं, तो नियम दिखाई पड़ना मुझे शुरू हो जाते हैं। मुझे दिखाई पड़ता है कि अगर मेरा कोई अपमान करे तो मुझे बुरा लगता है। अगर मैं थोड़ा समझ का आदमी हूं तो मुझे यह भी दिखाई पड़ जाना चाहिए कि इस जमीन पर किसी का भी अपमान किया जाए, उसे बुरा लगेगा।
नियम तो एक है। मुझे कोई प्रेम करे तो अच्छा लगता है और कोई घृणा करे
तो बुरा लगता है। तो मैं जानता हूं इस जमीन पर ऐसा प्राणी खोजना कठिन है, जिसे घृणा किया जाना अच्छा लगता हो, और प्रेम किया जाना बुरा लगता हो। सारे लोगों के भीतर एक सी चेतनाएं हैं और उनके एक से नियम हैं, एक सी आकांक्षाएं हैं। इसलिए जो आत्यंतिक रूप से मेरा हित है, वह आपका अहित कैसे हो सकता है? यह मेरा हित है कि सारे लोग मुझे प्रेम करें। यह मेरा हित है कि सारे लोग मुझे प्रेम करें, मैं समझ गया यह आपका भी हित है कि सारे लोग आपको प्रेम करें। और यह भी मुझे जानना चाहिए कि अगर मैं खुद प्रेम देने को राजी नहीं हूं तो मैं प्रेम पाने का हक भी तो खो दूंगा। अगर मेरा यह हित है कि प्रेम मेरे पास आए, तो मेरा यह कर्तव्य हो गया कि प्रेम मुझ से जाए। जो मेरा हित है वही मेरा कर्तव्य भी है। अगर यह मेरा हित है कि सेवा मुझे मिले, तो यह मेरा कर्तव्य हो गया कि सेवा मैं दूं। लेकिन यह बोध भी तभी होगा जब भीतर विवेक जाग्रत होगा, और मुझे अपने हितों की पहचान हो जाए। दुनिया में अधिक लोग जिन्हें अपना दुश्मन समझते हैं, वे उनके बिल्कुल दुश्मन नहीं हैं। दुनिया में अधिक लोग अपने जितने खुद के दुश्मन हैं, उतना कोई उनका दुश्मन नहीं है।
यह मैं आपसे भी कहता हूं, अगर आप लेखा-जोखा करेंगे अपनी जिंदगी का तो जितना नुकसान आपने अपने को पहुंचाया है, उतना कोई दूसरा आपको कभी नहीं पहुंचा सकता है। और अगर हर एक आदमी स्वार्थ साध ले तो वह अपने को नुकसान नहीं पहुंचा सकेगा। और बड़े मजे की बात है यह है कि जो अपने को नुकसान नहीं पहुंचा सकेगा, वह केवल अपने को नुकसान से बचाने के लिए किसी को भी नुकसान पहुंचाने में असमर्थ हो जाता है। मैं अपना हित साध लूं तो मैं सबकी सेवा में तत्पर हो जाऊंगा।
इसलिए स्वार्थ को और परार्थ को मैं विरोध में नहीं देखता। साधना को
और सेवा को मैं विरोध में नहीं देखता। साधना ही सेवा का आधार है। तो यह मत सोचें कि आप अकेले में बैठें हैं तो स्वार्थ साध रहे हैं। यह मत सोचें कि आप अपनी आत्मा की शांति खोज रहे हैं तो स्वार्थी हैं। आप अपने भीतर शांत हो जाएं, आनंद से भर जाएं, प्रेम से भर जाएं, ज्योति ज्ञान से भर जाएं, तो अपके जीवन तें दो घटनाएं घटेंगी। एक, आप किसी का भी अहित करने में असमर्थ हो जाएंगे। दो, आपका सारा जीवन दूसरों के रास्ते पर फूल की तरह बिछ जाएगा।

आप दूसरों को दुख पहुंचाने में असमर्थ हो जाएंगे और दूसरों को आनंद देने के लिए मजबूर--वह आपको बांटना ही पड़ेगा। वह इसलिए बांटना पड़ेगा कि नियम यह है कि जो जितना बांटता है, उससे कई गुना उसे वापस उपलब्ध हो जाता है। और जो जो बांटता है उसे वही वापस उपलब्ध हो जाता है। अगर मैं अपने चारों तरफ घृणा बांटता हूं तो सारी घृणा अनेक-अनेक लोगों में प्रतिबिंबित और प्रतिफलित होकर और प्रतिध्वनित होकर मुझ पर वापस लौट आती है। और अगर मैं प्रेम बांटता हूं तो प्रेम वापस लौट आता है। यह आत्म-साधना इन अर्थों में विश्व के विरोध में नहीं है। और स्वयं को जानना इस अर्थों में समाज के विरोध में नहीं है, वरन वही केवल हित में हैं शेष सारी बातें न तो हित की हैं, न अर्थ की हैं, न सत्य हैं। अत्यंत दंभपूर्ण, अत्यंत अहंकारपूर्ण, अत्यंत अज्ञानपूर्ण वे बातें हैं।
एक व्यक्ति ने बुद्ध को जाकर कहा था। बुद्ध को जाकर एक व्यक्ति ने उनके पैर छुए और उनसे कहा कि प्रभु, मैं आपकी बातों से प्रभावित हुआ हूं। अब मुझे बताएं कि मैं दुनिया के लिए क्या करूं? बुद्ध चुपचाप खड़े रह गए, उनके पास जो भिक्षु थे, वे भी हैरान हुए। कभी उन्हें इस भांति चुपचाप खड़े रहता देखा नहीं गया था। उस आदमी ने दुबारा पूछाः आप क्या सोच रहे हैं? मुझे आज्ञा दें, मैं दुनिया के लिए क्या करूं? बुद्ध ने कहाः मेरे मित्र, मैं इससे हैरान हूं कि मेरी बातें तुम्हें पसंद आईं, लेकिन तुमने मुझसे यह न पूछा कि मैं अपने लिए क्या करूं? तुम पूछते हो मैं दुनिया के लिए क्या करूं? तुम अपने को धोखा दे रहे हो। तुम दुनिया के लिए करने की बातों में खुद के लिए करने से बचना चाहते हो। तुम बचना चाहते हो, खुद के साथ कुछ न करना पड़े। और यही वजह है कि जो उपदेश हम दूसरों को देते हैं, उन उपदेशों को हम खुद भी नहीं मानते। और यही वजह है कि जिन बातों की हम दूसरों में आलोचना करते हैं, उनको कभी अपने में नहीं देखते। और यही वजह है कि जिन बातों की हम प्रशंसा करते हैं, उनको भी स्वयं में पैदा करने का कभी खयाल नहीं करते। दूसरों में पैदा होना चाहिए।
दुनिया में अज्ञान के समर्थन में इससे ज्यादा और कोई दूसरी बात नहीं है, जितनी दूसरों का सुधार, दूसरों का कल्याण, दूसरों का मंगल। वह आदमी कितना पागल है, जिसने खुद का मंगल न साधा हो और दूसरों के मंगल का विचार कर रहा हो, धोखेबाज है। और दूसरों को धोखा देना उतना महंगा नहीं, जितना सेल्फ-डिसेप्शन, जितना खुद को धोखा देना महंगा पड़ जाता है। क्योंकि अंत में दूसरों को दिए हुए धोखे बड़े छोटे साबित होते हैं। दस-पांच रुपये के लेन-देन के धोखे हैं, अपने को दिया गया धोखा सबसे बड़ा साबित होता है। क्योंकि उसमें पूरा जीवन, पूरा जीवन दांव पर लग कर खो जाता है। तो मैं आपको कहूंगा कि स्वार्थी हो जाएं। मैं आपको कहूंगा निपट स्वार्थी हो जाएं। मैं आपको कहूंगा अपने हित के अतिरिक्त कुछ भी न सोचें। दुनिया को एक कोने में रख दें, और अपना हित ही सोच लें। इतना जरूर मैं आश्वासन दिलाता हूं जिस दिन आप अपना हित पहचान जाएंगे और अपने हित को साध लेंगे, इस दुनिया में आपका हित किसी के हित के विरोध में नहीं पड़ेगा, वरन आपका पूरा का पूरा जीवन दूसरों के हित में, दूसरों के कल्याण में आधार बन जाएगा।

कुछ और प्रश्न हैं, एकाध प्रश्न का उत्तर और दे देता हूं, फिर बाकी प्रश्नों को बाद में ले लेंगे। और इस प्रश्न के बाद हम ध्यान में बैठेंगे।

पूछा हैः महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण ऐसे बड़े-बड़े महापुरुष हुए, उन्होंने सत्य को खोजा; लेकिन उनका प्रभाव, उनके सत्य का प्रभाव दुनिया में क्यों नहीं पड़ा? और दुनिया में इतना असत्य क्यों है?

दो कारण हैं, एक तो कारण यह है जो मैंने सुबह आपसे कहा, सत्य कोई एक व्यक्ति दूसरे को दे नहीं सकता। इसलिए जिसे उपलब्ध होता है, उसके साथ ही समाप्त हो जाता है। बुद्ध को मिलेगा, बुद्ध के साथ विलीन हो जाएगा। बांटा नहीं जा सकता। दूसरे आदमी को दिया नहीं जा सकता कि मैं मर रहा हूं इस संपत्ति को तुम सम्हालो। उसकी कोई वसीयत नहीं हो सकती। सत्य की कोई वसीयत

नहीं हो सकती। इसलिए यह भी हो सकता है कि एक जमाने में सारे लागों को सत्य उपलब्ध हो जाए, तो भी उनके बच्चे असत्य में ही पैदा होंगे। उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। यह हो सकता है कि एक जमाने में सारे लोगों को सत्य उपलब्ध हो जाए, तो भी बच्चों की पैदाइश से उनके खून में सत्य नहीं होगा। क्योंकि सत्य निजी उपलब्धि है, उसकी वसीयत से कोई संबंध नहीं है। वह कोई मिलता नहीं, वंशाधिकार में नहीं मिलता, एक बात। दूसरी बात, यह खयाल करना कि उनका कोई प्रभाव नहीं है, गलत होगा, उनका बहुत प्रभाव है। सत्य तो उनके कारण आपको नहीं मिलता, लेकिन उनका प्रभाव बहुत है। अगर दस-पांच इतिहास से ऐसे नाम अलग कर दिए जाएं--महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण और क्राइस्ट के तो आप हैरान होंगे, आप कोई दस या पंद्रह या बीस हजार वर्ष पहले जैसा मनुष्य था, वैसे मनुष्य हो जाएंगे।
आपके भीतर बहुत से विकास हुए हैं, जो आपको परिलक्षित नहीं होते। अभी
मैं जो बातें कह रहा हूं, क्राइस्ट ने करीब-करीब इस तरह की बातें ढाई से दो हजार वर्ष पहले कहीं थीं। अगर जो बातें मैंने आज आपसे कहीं हैं, वह दो हजार वर्ष पहले कहता तो इसका फल फांसी हो सकती थी। लेकिन आप मुझे फांसी नहीं दे रहे हैं, दो हजार वर्ष पहले इनका फल फांसी के सिवाय कुछ भी नहीं हो सकता था। क्यों? दो हजार साल में ईसा के मरने से कुछ फर्क पड़ा है? कुछ फर्क पड़ा है। लोगों के विचार और समझ ज्यादा उदार हुए हैं। ज्यादा सोचने समझने की और अपनी ही बात को सत्य कहने का आग्रह कम हुआ है। कुछ और बातें विकसित हुई हैं। दुनिया में हमेशा युद्ध होते रहे, यह पहला मौका है कि जमीन पर हजारों ऐसे विचारशील लोग हैं जो सब तरह के युद्धों के खिलाफ हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ था। दुनिया के बड़े-बड़े पुरुष भी पिछले जमानों के युद्धों के खिलाफ नहीं थे। जमाने में बड़ा फर्क आया है, लोगों में समझ बड़ी गहरी हुई है इस अर्थों में। आज जमीन पर जितने समझदार लोग हैं, वे किसी तरह के युद्ध के पक्ष में नही हैं। वे कहते हैं युद्ध मूढ़तापूर्ण है। कैसे ही नारे युद्ध के लिए दिए जाएं, कैसी ही वजह बतलाई जाएं, युद्ध मूर्खतापूर्ण है, लेकिन यह बात आज संभव है, यह बात कभी खयाल में नहीं थी।
आज सारी जमीन पर अनेक-अनेक नये विचारों का क्रमशः मनुष्य की चेतना में प्रवेश हुआ है। दुनिया में किसी भी धर्मग्रंथ में यह नहीं लिखा है कि संपत्ति इकट्ठी करना पाप है। दुनिया के सारे धर्मग्रंथों में लिखा हैः चोरी करना पाप है। लेकिन किसी ने यह नहीं लिखा कि संपत्ति इकट्ठी करना पाप है। जब कि ऐसे ही समाज में चोरी होती है जिस समाज में संपत्ति इकट्ठी की जाती है। चोरी बाई-प्रॉडक्ट है। जहां लोग संपत्ति इकट्ठी करते हैं उसके परिणाम में चोरी होती है।
लेकिन दुनिया के सारे धर्मग्रंथ कहते हैंः चोरी पाप है, क्योंकि चोरों का कोई मास्टर थीफ, चोरों का कोई पंडित, संन्यासी नहीं हुआ। सब धनिकों के संन्यासी और उनके सब मास्टर थीफ थे। इसलिए संपत्ति को संग्रह करना तो पुण्य का फल है और चोरी करना किसी की सम्पत्ति ले आना पाप है। लेकिन इस जमाने में यह बात समझ में आ गई है कि यह धोखा है। अगर चोरी पाप है तो उससे बड़ा पाप संपत्ति को इकट्ठा करना है। यह क्रमशः दो हजार वर्ष... इसके पीछे महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट का हाथ है। धीरे-धीरे जो चेतना प्रज्वलित हुई है--विचार, चिंतन और विवेक जाग्रत हुआ, उसके परिणाम हुए। आज कोई आदमी यह कहने की हिम्मत नहीं कर सकता जोर से कि मुझे जो संपत्ति मिली है, वह मेरे पुण्य का फल है। हालांकि आज से हमेशा पिछले दिनों में यही कहा जाता रहा। जो दरिद्र है वह अपने पाप की वजह से दरिद्र है, और जिसके पास धन है वह अपने पुण्य की वजह से है। आज तो हम समझते हैं बात उलटी है। जो जितना पाप करता है, उतना उसके पास धन है, और जो जितना पुण्य के साथ खड़ा होगा, उतना दरिद्र हो जाएगा।
लोगों के मस्तिष्क खुले हैं। उनके खुलने में उनकी हथौड़ियां, उनकी चोटें हैं। और काफी उन्होंने चोटें की हैं। अपनी-अपनी हैसियत से संतों ने सत्पुरुषों ने बड़ी चोटें की हैं मनुष्य के मस्तिष्क पर। और कुछ परिणाम हुए हैं। हम आज किसी भी स्थिति में जो भी दिखाई पड़ते हैं, उसमें उनका हाथ है। हां, लेकिन कोई सत्य कोई किसी को नहीं दे सकता। चेतना का परिष्कार,

बौद्धिक विकास, बोध ये सारे के सारे फलित होते हैं क्रमशः, लेकिन सत्य को कोई सीधा किसी को नहीं दे सकता। वह तो स्वयं को ही अपनी ही साधना से पाना होता है। इसलिए सत्य तो भला न हो, लेकिन सत्य को पाने के लिए जो बौद्धिक क्षमता चाहिए वह आपकी विकसित हुई है। आप आगे गए हैं, आज एक झाड़ के पास खड़े होकर आपको नमस्कार करते हुए थोड़ा संकोच होता है। आज एक नदी में जाकर प्रणाम करके कुछ पैसा चढ़ाने में संकोच होता है। जो और थोड़े विचारशील हैं, पत्थर की मूर्ति के सामने सिर झुकाने में उन्हें थोड़ी सी झिझक होती है। यह हम क्या कर रहे हैं? इसमें चोटें हैं इन लोगों की। इन्होंने आपको मुक्त करने की कोशिश की है।
मैं सुबह ही आज कह रहा था, नानक वहां काबा गए। और रात जब वह सोए तो काबा
का जो पुरोहित था, उसने आकर कहा कि महानुभव अपने पैर उस तरफ कर लें, यहां काबा का पवित्र पत्थर है, परमात्मा की तरफ पैर किए हुए हैं। नानक ने कहाः मेरे पैर उस तरफ कर दो जहां परमात्मा न हो। ये चोटें हैं। ये चोट है इस बात की जब आप एक मंदिर की मूर्ति के सामने सिर झुका रहे हैं, तो स्मरण रखें कि अगर परमात्मा को उस मूर्ति में समझ लिया तो आप गलती में हैं। अगर परमात्मा का बोध होगा तो वह सब तरफ व्याप्त है। तो अगर प्रणाम करना है तो कोई एक दिशा में करना गलती होगी। और अगर प्रणाम करना है तो किसी एक को करना गलत होगा। अगर प्रणाम करना है तो वह केवल एक भाव की अवस्था हो सकती है जो समस्त के प्रति समर्पित हो। क्रमशः चोटें की गईं। अब यह नानक की चोट इसके पीछे है। यह इसके पीछे है। सारी इस भांति क्रमशः मनुष्य की चेतना पर जो-जो प्रहार हुए हैं, उनसे विकास हुआ है। विकास को झुठलाया नहीं जा सकता है। लेकिन सत्य की उपलब्धि निजी बात है, विकास सामूहिक घटना है। लेकिन सत्य को प्रत्येक व्यक्ति अपने ही श्रम से पाता है। इसलिए कोई वसीयत में सत्य नहीं मिल सकता है। कोई यह नहीं कह सकता है कि हम महावीर और बुद्ध, और राम और कृष्ण के वंशज हैं इसलिए हमको तो सत्य मिला ही हुआ है। और यह भ्रम है, यह भूल है। दुनिया में ऐसे बहुत से लोग हैं जो यह समझते हैं कि हम तो राम-कृष्ण के वंशज हैं, हम को तो सत्य मिला ही हुआ है। किसी को नहीं मिलता, और सत्य अगर इतनी क्षुद्र चीज हो, जो पैदाइश से और वंशज होने से मिलती हो तो उसका कोई मूल्य भी नहीं रह जाएगा। फिर कोई सामर्थ्यवान, कोई अपनी व्यक्तित्व की गरिमा को मानने वाला व्यक्ति ऐसे सत्य की तलाश भी नहीं करेगा। सत्य की तलाश एकदम निजी खोज है। निजी उपलब्धि है।

कुछ और प्रश्न हैं, उनको मैं कल ले लूंगा। थोड़ी सी बातें आपको ध्यान
के संबंध में समझा दूं और फिर हम ध्यान के लिए बैठेंगे।

जीवन की कला
दूसरा प्रवचन

दृष्टि का परिवर्तन

मेरे प्रिय आत्मन्!
सत्य की यात्रा पर मनुष्य का सीखा हुआ ज्ञान ही बाधा बन जाता है, यह पहले दिन की चर्चा में मैंने कहा। सीखा हुआ ज्ञान दो कौड़ी का भी नहीं। और जो सीखे हुए, पढ़े हुए ज्ञान के आधार पर सोचता हो कि जीवन के प्रश्न को हल कर लेगा, वह नासमझ ही नहीं, पागल है। जीवन के ज्ञान को तो स्वयं ही पाना होता है किसी और से उसे नहीं सीखा जा सकता।
दूसरे दिन की चर्चा में मैंने आपसे कहा कि जिसका अहंकार जितना प्रबल
है वह स्वयं के और परमात्मा के बीच उतनी ही बड़ी दीवाल खड़ी कर लेता है। मैं हूं, यही भाव, जो सबमें छिपा है उससे नहीं मिलने देता। अहंकार की बूंद जब परमात्मा के सागर में स्वयं को खोने को तैयार हो जाती है तभी उसे जाना जा सकता है जो सत्य है और सबमें है। यह मैंने दूसरे दिन आपसे कहा।
और आज सुबह तीसरी बात मैंने कही कि हम सोए हुए हैं, मूर्च्छित हैं। और
जब तक हम सोए हुए हैं तब तक हमें सत्य का कोई अनुभव नहीं हो सकेगा।
ये तीन बातें मैंने कहीं। ज्ञान को, सीखे हुए ज्ञान को छोड़ना होगा। अहंकार को, कल्पित अहंकार को छोड़ना होगा। और निद्रा को, वास्तविक निद्रा को छोड़ना होगा। इन तीन सीढ़ियों को जो पार करता है, वह परमात्मा के मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है।
इस संबंध में बहुत से प्रश्न आए हुए हैं। उन प्रश्नों में से कुछ पर मैं अभी चर्चा करूंगा। बहुत से प्रश्न समान हैं, इसलिए पांच-छह प्रश्न जो सभी ने पूछे हैं करीब-करीब थोड़े भाषा के भेद से, उन पर ही बात करना उचित है।

सबसे पहले एक मित्र ने पूछा हैः धार्मिक व्यक्तित्व क्या है? रिलीजस माइंड क्या है? किस व्यक्ति को आप धार्मिक कह रहे हैं?

शायद इसलिए यह प्रश्न उनके मन में पैदा हुआ क्योंकि मैंने कहाः मंदिर
जो जाता है उतने से ही कोई धार्मिक नहीं हो जाता। शास्त्र जो पढ़ता है उतने से ही कोई धार्मिक नहीं हो जाता। संन्यास भी कोई ले ले, वस्त्र कोई बदल ले, घर-द्वार छोड़ दे, उतने से भी कोई धार्मिक नहीं हो जाता है।
धार्मिक होना फिर क्या है?
इसलिए ठीक ही पूछा है कि किस मन को, किस चित्त को मैं धार्मिक कहता हूं? कौन है रिलीजस माइंड?
एक छोटी से कहानी से समझाऊं।
वर्षा निकट आ गई थी और आकाश में बादल घिरने लगे थे। आज ही कल में गर्मी में तपी हुई धरती पर वर्षा आ जाएगी। दो भिखारी, दो भिक्षु अपने झोपड़े पर कई दिनों की यात्रा के बाद वापस लौटते थे। एक गांव की झील के पास उनका छोटा सा झोपड़ा था। हर वर्षा में वे वापस लौट आते थे, फिर आठ महीने के लिए घूमते- फिरते थे। वर्षा करीब थी, वे भागे हुए अपने झोपड़े के करीब पहुंचे। झोपड़े के पास जाते ही देखाः आधा झोपड़ा हवाएं उड़ा कर ले गई हैं, आधा ही झोपड़ा बचा है। छप्पर आधा है, आधा छप्पर कहीं उड़ गया। आगे जो भिखारी था, युवा था, पीछे उसका गुरु था, वृद्ध। उस युवा भिक्षु ने अत्यंत दुख से अपने बूढ़े गुरु को कहाः ऐसी ही बातों को देख कर तो ईश्वर पर अविश्वास पैदा हो जाता है। गांव में महल खड़े हैं पापियों के, उनके महलों में कुछ भी विकृति न आई, कोई महल न गिरा, और हम गरीबों के झोपड़े पर, हमारे गरीबों के झोपड़े के आधे छप्पर को भी उड़ा दिया। ऐसी ही बातों से तो मन क्रोध से भर जाता है, ऐसी ही बातों से तो परमात्मा के प्रति विरोध पैदा हो जाता है। हम गरीबों का झोपड़ा ही था उड़ाने को? तोड़ने को? यह वह बड़े क्रोध से कहा, लेकिन देख कर हैरान हुआ, उसके गुरु की आंखों से आंसू बहे जा रहे हैं। और वे आंसू दुख के नहीं किसी अपूर्व आनंद के हैं। और उस गुरु के हाथ जुड़े हैं आकाश की तरफ और वह गुनगुना रहा है कोई गीत। वह चुपचाप खड़े होकर सुनने लगा। उस बूढ़े ने कहाः हे परमात्मा! ऐसी ही

बातों से तुझ पर विश्वास आ जाता है, हवाओं का क्या भरोसा, पूरा झोपड़ा भी उड़ा कर ले जा सकती थीं। आधा रोका है, तो तूने ही रोका होगा। हवाओं का क्या भरोसा, पूरा झोपड़ा भी जा सकता था। आधा रोका है, तो तूने ही रोका होगा। धन्यवाद! हम दरिद्रों का भी तुझे खयाल है।
फिर उस रात वे दोनों उस झोपड़े में सोए। जिस युवक भिक्षु ने क्रोध प्रकट किया था वह रात भर नहीं सो सका। रात भर उसके मन में बड़ी बेचैनी, बड़ी अशांति, बार-बार यही खयाल कि गरीब के झोपड़े को तोड़ने की बात क्या उचित है? हमने क्या बुरा किया? दिन-रात जिसकी प्रार्थना करते हैं वही हमारा साथी नहीं? तो हम और क्या आशा करें प्रार्थनाओं से? और क्या आशा करें? रात भर बेचैन वह करवट बदलता रहा। क्योंकि सांझ दुख में सोया था तो रात भर दुख सरकता रहा। सांझ जिस भाव को लेकर हम सोते हैं पूरी नींद उसी भाव में परिवर्तित हो जाती है। लेकिन बूढ़ा रात भर सोया बड़े आनंद से। सुबह उठ कर उसने एक गीत लिखा, और उस गीत में फिर परमात्मा को धन्यवाद दिया और कहाः हे पिता! हे परमपिता! हे प्रभु! हमें क्या पता था, आधा झोपड़े का भी आनंद होता है? कल रात हम सोए भी रहे आधे छप्पर में, और जब भी आंख खुली, तो तेरे चांद, तेरे तारों को भी देखा। बड़ी खुशी है, अब वर्षा आएगी; हम आधे में सोएंगे भी, आधे में वर्षा का गीत, टप-टप बूंदें, वे भी सुनेंगे। हमें क्या पता था, अगर पहले से पता होता हम आधा झोपड़ा खुद भी तोड़ देते, तेरी हवाओं को तकलीफ भी न देते।
इस आदमी को मैं धार्मिक आदमी कहता हूं। यह रिलीजस माइंड है। यह चाहे किसी मंदिर और मस्जिद में जाता हो या न जाता हो; यह किसी शास्त्र को पूजता हो, न पूजता हो; इसके वस्त्र गेरुए रंगे हों, न रंगे हों; यह घर में हो, घर के बाहर हो, ऐसा जो चित्त है वह धार्मिक है।
धर्म कोई बाहरी क्रियाकांड नहीं, दृष्टि का परिवर्तन है। धर्म कोई बाहरी परिवर्तन नहीं, अंतस का बदल जाना है। दृष्टि का, देखने के ढंग का। इतना आसान मत समझ लेना कि हम मंदिर चले जाते हैं तो धार्मिक हो जाएंगे। इतना सस्ती बात होती तो पृथ्वी पर बहुत मंदिर हैं, बहुत मस्जिदें, बहुत चर्च, पृथ्वी धार्मिक कभी की हो गई होती। लेकिन मंदिर-मस्जिद बढ़ते गए हैं और धर्म? धर्म का कोई कहीं पता नहीं। धर्म कहीं भी नहीं है। धर्म को हमने एक बाह्य उपचार बनाया इसीलिए पृथ्वी पर धर्म पैदा नहीं हो सका। धर्म है आंतरिक चित्त की दशा। धर्म है मनःस्थिति। धर्म है एटिट्यूड, धर्म है भीतर के देखने का ढंग। इसलिए कोई मंदिर में पहुंच जाए तो धार्मिक नहीं हो जाता। लेकिन जो आदमी धार्मिक है वह कहीं भी पहुंच जाए वहीं मंदिर जरूर हो जाता है। इसे मैं फिर से दोहराऊं, धार्मिक आदमी वह नहीं जो मंदिर में पहुंच जाता है, धार्मिक आदमी वह है कि जहां पहुंच जाए वहीं मंदिर हो जाए। धार्मिकता चित्त एक दशा है। यह चित्त की दशा निरंतर जागरूक, होश से भरे रह कर जीने से पैदा होती है। न तो यह प्रार्थनाओं से पैदा होती है, न पूजाओं से, यह तो चित्त की सरलतम भावनाओं से उपलब्ध होती है।
चित्त की चाहिए सरलता, ह्यूमिलिटी। चित्त का चाहिए बिना जटिल होना, अजटिलता। चित्त की चाहिए इतनी सरलता कि वह चित्त की सरलता ही जीवन बन जाए। तो, तो व्यक्ति के जगत में उसका अवतरण होता है जिसे हम धर्म कहें। लेकिन यह कोई ऐसी बात नहीं है कि कोई आधा घंटे को धार्मिक हो जाए और साढ़े तेईस घंटे को अधार्मिक हो जाए।

एक और मित्र ने, और भी कई मित्रों ने पूछा है कि हम क्या करें, थोड़ी- बहुत देर के लिए समय निकाल सकते हैं, समय ज्यादा हमारे पास नहीं है, तो हम क्या करें--मंत्र-जाप करें, नाप जपें, पूजा करें, थोड़ा-बहुत समय दे सकते हैं उसमें हम क्या करें?

मैं निवेदन करना चाहूंगा, धर्म कोई ऐसी बात नहीं कि आप थोड़े से समय में कर लें और उससे निपट जाएं। धर्म चौबीस घंटे की साधना है। और इस बात से बहुत भ्रांति दुनिया में पैदा हुई है कि कोई सोचे कि हम थोड़ी देर को धार्मिक हो जाएं। धार्मिक होना चौबीस घंटे चलने वाली श्वासों की तरह है।

ऐसा नहीं कि आप आधा घंटा श्वास ले लें, फिर साढ़े तेईस घंटा श्वास लेने की कोई जरूरत न रह जाए। धर्म एक अखंड चित्त की दशा है। खंडित नहीं। कोई कंपार्टमेंट नहीं बनाए जा सकते कि आधा घंटे को मंदिर में जाकर मैं धार्मिक हो जाऊंगा। यह असंभव है, यह बिल्कुल इंपासिबल है। जो आदमी मंदिर के बाहर अधार्मिक था और मंदिर के बाहर फिर अधार्मिक हो जाएगा। आधा घंटे को मंदिर के भीतर धार्मिक हो सकता है?
चित्त एक अविच्छिन्न प्रवाह है, एक कंटीन्युटी है। कहीं ऐसा हो सकता
है क्या कि गंगा काशी के घाट पर आकर पवित्र हो जाए, पहले अपवित्र रही हो? फिर काशी का घाट निकल जाए, फिर आगे अपवित्र हो जाए। सिर्फ बीच में पवित्र हो जाए? गंगा एक सातत्य, कंटीन्युटी है। अगर गंगा काशी के घाट पर पवित्र होगी तो तभी होगी जब पहले भी पवित्र हो। अगर गंगा काशी के घाट पर पवित्र हो गई, तो आगे भी पवित्र रहेगी।
मैंने सुना है, एक आदमी अपनी मृत्युशय्या पर था। अंतिम घड़ी थी उसकी। परिवार के मित्र, परिवार के लोग, पुत्र, पुत्रवधुएं, उसकी पत्नी, सब इकट्ठे थे। संध्या के करीब उसने आंख खोली, सूरज ढल गया था और अभी घर के दीये न जले थे, अंधेरा था, उसने आंख खोली और अपनी पत्नी से पूछाः मेरा बड़ा लड़का कहां है? उसकी पत्नी को बड़ा आनंद हुआ। जीवन में उसने कभी किसी को नहीं पूछा था। जीवन में पैसा और पैसा और पैसा। प्रेम की कभी कोई बात उससे न उठी थी। शायद मृत्यु के क्षण में प्रेम का स्मरण आया है। पत्नी बहुत प्रसन्न थी, उसने कहाः निश्चिंत रहें, आपका बड़ा लड़का बगल में बैठा हुआ है, अंधेरे में आपको दिखता नहीं, बड़ा लड़का मौजूद है, आप निश्चिंत आराम से लेटे रहें। लेकिन उसने पूछा, और उससे छोटा लड़का? पत्नी तो बहुत अनुगृहीत हो आई। कभी उसने पूछा नहीं था। जो पैसे के पीछे है, जो महत्वाकांक्षी है उसके जीवन में प्रेम की कभी भी कोई सुगंध नहीं होती, हो भी नहीं सकती। उसने कभी न पूछा था, कौन कहां है! उसे फुर्सत कहां थी! पत्नी ने कहाः छोटा लड़का भी मौजूद है। उसने पूछाः और उससे छोटा? पांच उसके लड़के थे। अंतिम पांचवां? उसकी पत्नी ने कहाः वह भी आपके पैरों के पास बैठा है। सब मौजूद हैं, आप निश्चिंत सो रहें। वह आदमी उठ कर बैठ गया, उसने कहाः इसका क्या मतलब, फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है?
वह पांच लड़कों की फिकर में नहीं था। पत्नी भूल में थी। जीवन भर जिसके
मन में पैसा रहा हो, अंतिम क्षण में प्रेम आ सकता है? पत्नी गलत थी, भूल हो गई थी। वह इस चिंता में था कि दुकान पर कोई मौजूद है या कि सब यहीं बैठे हुए हैं? यह मरते क्षण में भी उसके चित्त में वही धारा चल रही थी जो जीवन भर चली थी। यह स्वाभाविक है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। जीवन भर जो चला है वही तो चलेगा। तो इस भूल में कोई न रहे कि मैं थोड़ी देर मंदिर हो आता हूं तो धार्मिक हो जाऊंगा। जिसे धार्मिक होना है उसे अपने चित्त की पूरी धारा को बदलने के लिए तैयार होना होगा। ये धोखा देने के ढंग हैं, ये सब सेल्फ-डिसेप्शन हैं कि हम मंदिर हो आते हैं इसलिए धार्मिक हो गए, अपने को धोखा देने की तरकीबों से यह ज्यादा नहीं है। कि हम चंदन लगाते हैं तो धार्मिक हो गए। कि हम यज्ञोपवीत पहनते हैं तो हम धार्मिक हो गए। हद्द बेवकूफियां हैं। इस तरह कोई धार्मिक हो सकता तो हमने दुनिया को कभी का धार्मिक बना लिया होता। इस तरह कोई न कभी धार्मिक हुआ है और न हो सकता है। लेकिन जो अपने को धार्मिक होने का धोखा देना चाहता हो, इन तरकीबों से बड़ी आसानी से धोखा पैदा हो जाता है।
धार्मिक होना एक अखंड क्रांति है। पूरे जीवन को, चित्त को, टोटल माइंड को, समग्र मन को बदलना होगा। और उस बदलने के सूत्र समझने होंगे। एक-एक क्षण, एक-एक घड़ी सजग होकर मन को बदलने में संलग्न होना होगा। और इसके लिए अलग से समय की कोई भी जरूरत नहीं है।
आप जो भी करते हैं--उठते हैं, बैठते हैं, भोजन करते हैं, नौकरी करते हैं, रास्ते पर चलते हैं, रात सोते हैं, आप जो भी करते हैं, आपका जो भी व्यवहार है, आपका जो भी संबंध है, सारा जीवन एक इंटररिलेशनशिप, एक अंतर्संबंध है। चौबीस घंटे हम कुछ न कुछ कर रहे हैं--धर्म के लिए अलग से समय खोजने की जरूरत नहीं है। यह जो भी आप कर रहे हैं, अगर शांत, जागरूक

चित्त से करने लगें तो आपके जीवन में धर्म का आगमन हो जाएगा। आप जो भी कर रहे हैं, अगर शांत, जागरूक करने लगें तो।
कैसे शांति से यह हो सकेगा? कैसे यह हो सकेगा?
यह भी बहुत मित्रों ने पूछा हैः कैसे हम शांत हो जाएं?
तो कैसे मनुष्य का चित्त शांत हो सकता है?
मनुष्य के चित्त की अशांति क्या है इस समझ लें, तो शांत होना कठिन नहीं है। मनुष्य के चित्त की क्या है अशांति? कौन कर रहा है अशांत? कोई और कर रहा आपको या कि आप स्वयं? आप स्वयं ही चौबीस घंटे चित्त को अशांत करने की व्यवस्था कर रहे हैं और फिर पूछते-फिरते हैं कि शांत कैसे हो जाऊं? चौबीस घंटे आप ही कर रहे हैं योजना। जीवन को देखने का सारा ढंग गलत है इसलिए अशांति पैदा होती है। जीवन को देखने का हमारा ढंग क्या है? अगर आपका आधा छप्पर उड़ गया हो, तो क्या है आपके जीवन को देखने का ढंग? उड़े हुए छप्पर के लिए रोएगा या बचे हुए छप्पर के लिए धन्यवाद देंगे? उड़े हुए छप्पर के लिए रोएंगे, तो अशांत हो जाएंगे। बचे हुए छप्पर के लिए धन्यवाद देंगे, तो अपूर्व शांत उतर आएगी। कैसे हम जीवन को देखते हैं?
बुद्ध का एक भिक्षु था, पूर्ण। उसकी शिक्षा पूरी हो गई थी। उसने बुद्ध
के पास जाकर आज्ञा मांगी कि अब मैं जाऊं और आपके अमृत संदेश को गांव-गांव पहुंचा दूं।
बुद्ध ने कहाः तू कहां जाना चाहेगा? किस तरफ?
उस पूर्ण ने कहाः बिहार में एक छोटा सा इलाका था, सूखा उसका नाम था। उस पूर्ण ने कहा कि अब तक सूखा की तरफ कोई भी भिक्षु नहीं गया, मैं सूखा जाना चाहता हूं।
बुद्ध ने कहाः छोड़ दे यह इरादा। अब तक कोई नहीं गया, इसी से तुझे सोचना
था कि कोई बात जरूर होगी। उस इलाके के लोग बहुत अशिष्ट, बहुत असय, अत्यंत कटु व्यवहार वाले लोग हैं, बहुत हिंसक, बहुत क्रोधी, इसीलिए कोई वहां नहीं गया।
पूर्ण ने कहाः तब तो मुझे वहां जाना ही पड़ेगा, उनके लिए ही फिर मेरी जरूरत है।
अगर दीये से कोई कहे कि उस तरफ मत जा जहां अंधेरा है, तो दीया क्या कहेगा? मैं न जाऊं उस तरफ जहां अंधेरा है? तो दीया कहेगा, फिर मेरी वहां क्या जरूरत जहां सूरज है? मैं वहीं जाऊंगा जहां अंधेरा है।
मुझे आज्ञा दें कि मैं सूखा जाऊं?
बुद्ध ने कहाः मैं आज्ञा तुझे एक ही शर्त पर दे सकता हूं कि तू मेरे तीन प्रश्नों के उत्तर दे दे।
पूर्ण ने कहाः आप पूछें?
बुद्ध ने कहाः वहां तू जाएगा, लोग गालियां देंगे, अपमान करेंगे, कटु वचन कहेंगे, तेरे मन को क्या होगा?
हंसने लगा वह पूर्ण, उसने सिर रख दिया बुद्ध के चरणों पर और कहाः आप पूछते हैं इतने दिन मुझे जानने के बाद क्या होगा मेरे मन को? यही होगा, कितने भले लोग हैं, सिर्फ गालियां देते हैं, अपमान करते हैं, मारते नहीं, मार भी सकते थे।
बुद्ध ने कहाः पूर्ण यह भी हो सकता है कि कोई तुझे वहां मारे भी, फिर क्या होगा?
पूर्ण ने कहाः जानते हैं फिर भी पूछते हैं आप? होगा यही, कितने भले लोग हैं, सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते, मार भी डाल सकते थे।
बुद्ध ने कहाः अंतिम बात और पूछ लूं, अगर उन्होंने मार ही डाला, तो मरते क्षणों में तुझे क्या होगा?
सोच सकते हैं, क्या कहा होगा पूर्ण ने? आता है खयाल कोई? ठीक था कि गाली देते थे।
तो पूर्ण ने कहाः मार डालेंगे, मारते नहीं, मार डालते नहीं, यह बहुत, यही शुभ है।
लेकिन बुद्ध ने कहाः मार ही रहे हैं, तेरी हत्या कर रहे हैं, क्या होगा तेरे मन को?

पूर्ण ने कहाः जानते हैं भलीभांति आप, फिर भी पूछते हैं? यही होगा, कितने भले लोग हैं, उस जीवन से छुटकारा दिलाए देते, जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी।
ऐसी दृष्टि का फल है शांति। इससे उलटी दृष्टि का फल है अशांति।
एक आदमी फूलों कि बगिया में जाए, गुलाब के फूल के पौधे के पास खड़ा हो--
दो रास्ते हैं, या तो गुलाब के उस पौधे में खिले हुए एक फूल को देख ले। एक फूल बहुत कम है, पत्ते बहुत हैं, कांटे बहुत हैं। यह भी हो सकता है एक फूल न देखे, कांटों की गिनती करे और कहे कि इतने कांटे हैं इस पौधे में? कैसी बुरी है यह दुनिया? इतने कांटे हैं? मुश्किल से खिलता है एक फूल और कांटे ही कांटे, हजार-हजार कांटे हैं, कैसी है यह दुनिया? कैसी दुखपूर्ण? वह आदमी अशांत हो जाए, नहीं तो क्या होगा? कोई दूसरा आदमी यह भी देख सकता हैः कैसी अदभुत है यह दुनिया, इतने कांटे हैं जहां वहां भी एक फूल खिल पाता है! इतने कांटे हैं जहां, इतने कांटों के बीच भी एक फूल खिलता है, कितनी अदभुत है यह दुनिया! कितनी रहस्यपूर्ण! कितने अनुग्रह के योग्य! कितना ग्रेटिट्यूड! कितना धन्यवाद करें किसी का!
एक आदमी देखने जाए जीवन को, तो जीवन में जो-जो अंधेरा है उसे गिन सकता है। जीवन में जो-जो बुरा है उसकी गणना कर सकता है। जीवन में जो-जो दुख है उसकी संख्या का आंकड़ा बांध सकता है। और तब अगर अशांत हो जाए, तो जुम्मा किसका होगा? और फिर रोए और चिल्लाए और फिर ढूंढ़े गुरुओं को और पूछे कि मुझे शांति का रास्ता बताओ। और गुरु भी ऐसे नासमझ कि वे कहें कि राम-राम जप, तो सब ठीक हो जाएगा। जैसे राम-राम न जपने से यह अशांति पैदा हुई हो। यह अशांति पैदा की है इसके जीवन की दृष्टि ने। इसके जीवन की दृष्टि ही भ्रांत और गलत है। इसने गलत को ही चुनने का उपक्रम साध लिया है। इसने व्यर्थ को ही देखने की चेष्टा की है। इसने अंधकार के साथ ही मोह बांध लिया है। इसे प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता। इसे फूल दिखाई नहीं पड़ते। इसे प्रेम दिखाई नहीं पड़ता। इसे तो जो भी दिखाई पड़ता है वही रुग्ण कर देता है इसे और, और अशांत कर देता है।
कैसे धार्मिक चित्त को साधेंगे?
शांति में खिलता है धार्मिक चित्त। और शांति? शांति है जीवन का सम्यक दृष्टिकोण, राइट एटिट्यूड। रोज-रोज चौबीस घंटे में, रोज-रोज प्रतिक्षण ठीक दृष्टि को, सम्यक दृष्टि को, उस सम्यक दर्शन को, वह ठीक-ठीक देखने को, निरंतर-निरंतर प्रतिक्षण साधना है। प्रतिक्षण, एक क्षण भी छुट्टी देने की सुविधा नहीं है। धार्मिक व्यक्ति को कोई छुट्टी नहीं, कोई हॉलिडे नहीं, कि आज छुट्टी दे दें, फिर कल साध लेंगे। एक क्षण भी छुट्टी का अवकाश नहीं है। एक-एक क्षण देखते, जागते, समझते, धीरे-धीरे वह दृष्टि जो भीतर छिपी है प्रकट होने लगती है। और तब, तब सब बदल जाता है, तब सब बदल जाता है। तब नहीं दिखाई पड़ते कांटे, बल्कि जब दृष्टि पूरी उपलब्ध होती है तो हर कांटा फूल में परिवर्तित हो जाता है। और हर अंधकार एक दीया बन जाता है। और हर बुरी घटना में किसी शुभ संकेत की सूचना मिल जाती है। फिर धीरे-धीरे तो सब कुरूपता विलीन हो जाती है, रह जाता है सिर्फ सौंदर्य। सिर्फ सौंदर्य रह जाता है, नहीं रह जाता जीवन में कुछ कुरूप। नहीं रह जाता जीवन में कुछ विकृत, सभी हो जाता है सभी स्वस्थ और संस्कृत। लेकिन वह दृष्टि पर निर्भर है। वह दृष्टि पर ही निर्भर है कि हम कैसे देखते हैं। तो बहुत जल्दी इस बात की न करें कि आप जल्दी से वस्त्र बदल लें, क्रिया बदल लें, उपवास कर लें। इस सबसे नहीं, खोजें अपनी दृष्टि को कि कहां-कहां घाव हैं मेरे? किन-किन घावों से में पीड़ित और परेशान हूं? और तब आपको दिखाई पड़ेगा, आपने ही अपनी छाती में छुरी मारी है रोज-रोज। ये घाव किसी और नहीं किए। जब दिख जाए कि मेरे ही हाथ छुरी मारते हैं, तो छुरी फेंक देना कठिन थोड़े ही है। या फिर छुरी से बहुत मोह हो और घाव में बहुत आनंद हो, तो आपकी मर्जी। फिर तो कोई सवाल नहीं है।
लेकिन मनुष्य स्वयं ही है आत्महंता, कोई और नहीं। और जब तक इस सत्य की स्पष्ट प्रतीति न हो तब तक आप स्वयं को बदल भी नहीं सकते।

एक और मित्र पूछते हैं कि क्या सेवा करना ही पर्याप्त नहीं है? सेवा करें तो क्या परमात्मा की उपलब्धि नहीं हो जाएगी? क्यों पड़ें इन सारी बातों में? उन्होंने पूछा हैः सेवा करें गरीबों की, दीनों की, दुखियों की, तो उसी सर्विस से, उसी सेवा से क्या नहीं मिल जाएगा प्रभु?

नहीं; भूल कर भी कभी नहीं मिलेगा। धर्म से तो सेवा उत्पन्न हो जा सकती है, लेकिन सेवा से धर्म उत्पन्न नहीं होता है। धार्मिक व्यक्ति का जीवन तो सेवक का जीवन होता ही है, लेकिन सेवक का जीवन धार्मिक आदमी का जीवन नहीं होता है। इस तरह उलटा नहीं होता है। दीया जल जाए तो अंधेरा निकल ही जाता है, लेकिन कोई कहे कि हम अंधेरे को निकालने की कोशिश करें तो दीया जल जाएगा? तो फिर दीया नहीं जलता है। अंधेरे को मर जाएं कोशिश कर-कर के निकाल कर, अंधेरा नहीं निकलने वाला और दीया तो जलने वाला नहीं। हालांकि दीया जलता है तो अंधेरा जरूर निकल जाता है, लेकिन अंधेरे के निकलने से दीया नहीं जलता।
चित्त में धर्म का जन्म होता है तो सेवा जरूर आ जाती है। लेकिन सेवा
से कोई धर्म नहीं आता। बल्कि बिना धर्म के जो सेवा है वह भी अंधकार को ही तृप्त करती है, उसका ही साधन बनती है, वह भी कहती है, मैं हूं सेवक! मैंने की है सेवा! मैं हूं बड़ा सेवक! मुझसे बड़ा सेवक कोई भी नहीं! और ऐसा सेवा करने वाला वर्ग, जितनी मिस्चिफ, जितने उपद्रव पैदा करवाता है उसका कोई हिसाब नहीं।
मैंने सुना है, एक चर्च का एक पादरी एक स्कूल के बच्चों को सेवा का धर्म सिखाने गया था। छोटे-छोटे बच्चे थे, उन्हें उस पादरी ने समझाया कि सेवा जरूरी करनी चाहिए, दिन में एक सेवा कम से कम जरूरी है। कोई भी सेवा का कृत्य, कोई भी। कोई भी सेवा का कृत्य अगर तुमने दिन में कर लिया एक, तो हो गई प्रार्थना। जब मैं अगली बार आऊं सात दिन बाद, तो मैं पूछूंगा कि तुमने सात दिन में कुछ सेवा के कृत्य किए।
सात दिन बाद वह वापस लौटा, उसने उन बच्चों से पूछा कि मेरे बेटो, तुमने कुछ सेवा के काम किए? तीन बच्चों ने हाथ हिलाए, वह बहुत प्रसन्न हुआ कि कोई फिकर नहीं, तीस में से केवल तीन ने किया, लेकिन किया तो। बताओ तुम खड़े होकर, ताकि बाकी बच्चे भी जान लें कि तुमने क्या किया? तुम्हें आनंद मिला सेवा करने से?
उन तीनों ने कहाः बहुत आनंद मिला, बहुत आनंद मिला।
पूछा, क्या किया तुमने? कौन सी सेवा की? पहले लड़के को पूछा।
उसने कहाः मैंने, जैसा आपने समझाया थाः कोई डुबता आदमी हो तो बचाना चाहिए, कोई बूढ़ा आदमी रास्ता पार करता हो तो सहारा देना चाहिए। मैंने एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया है।
उसने धन्यवाद दिया, छोटा सा बच्चा था कि ठीक, बहुत ठीक। दूसरे बच्चे
से पूछा, तुमने क्या किया?
उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। थोड़ी हैरानी हुई उसे, लेकिन सोचा, बहुत बूढ़े होते हैं, कोई कम तो नहीं, इसने भी किया होगा। तीसरे से पूछा, तूने क्या किया?
उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया।
उसने कहाः तुम तीनों को तीन बूढ़ी स्त्रियां मिल गईं रास्ता पार करवाने को?
वे तीनों बोलेः तीन कहां, एक ही थी, हम तीनों ने उसी को पार करवाया है।
वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः क्या एक बूढ़ी औरत को पार करवाने में तीन
की जरूरत पड़ी?
उन्होंने कहाः वह पार होना ही नहीं चाहती थी, बामुश्किल हम पार करवा पाए। लेकिन सेवा करनी जरूरी थी, इसलिए हमने सेवा की। वह तो बहुत चिल्लाती थी कि मुझको उस तरफ नहीं जाना।
आज तक पृथ्वी पर ये सेवा करने वाले ऐसे ही उपद्रव करते रहे। क्योंकि
ये सोचते हैं कि हमें तो सेवा करनी है, क्योंकि सेवा करना धर्म है। इसकी फिकर ही भूल जाते हैं कि क्या कर रहे हैं ये सेवा? कौन सी सेवा हो रही है?

जो सेवा जान कर की जाती है वह खतरनाक हो जाती है। सेवा निकलनी चाहिए सहज। सेवक सहज नहीं होता, बहुत सेल्फ-कांशस होता है। उसे बहुत अहसास होता है मैं सेवा कर रहा हूं!
नहीं, सेवा होनी चाहिए सहज, करने वाले को उसका पता नहीं चलना चाहिए। अगर करने वाले को पता चल गया, तो सब सेवा गलत हो गई। अगर यह पता चल गया कि मैं सेवा कर रहा हूं, बात व्यर्थ हो गई, कोई मूल्य न रहा उस सेवा का। लेकिन ऐसी सेवा तो तभी पैदा हो सकती है जब पता न चले उसका। जब चित्त अहंकार से मुक्त होता और धर्म का जन्म हो जाता है, तब सारा जीवन, श्वास-श्वास सेवा बन जाती है। लेकिन उस सेवा से कभी भी यह बोध नहीं होता कि मैं सेवक हूं, मैं सेवा कर रहा हूं। फिर वह सेवा जीवन हो जाती है। वैसी सेवा तो धर्म है, लेकिन यह सेवकों की सेवा धर्म नहीं है। इससे धर्म का कोई संबंध नहीं।

कुछ और मित्रों ने पूछा है कि धार्मिक होने के लिए नैतिक होना तो कम
से कम जरूरी है। आदमी को नैतिक होने की कोशिश तो करनी ही चाहिए। चेष्टा तो करनी चाहिए कि आदमी नैतिक हो जाए। अच्छे काम करे, अच्छी वृत्ति रखे, अच्छा आचरण हो, सत्य बोले, अहिंसक हो, दयालु हो, अपरिग्रही हो, यह तो होना चाहिए, नैतिक तो होना चाहिए।

हजारों साल से यही कहा जाता रहा है कि नीति जो है वह धर्म की सीढ़ी है।
यह बात सौ प्रतिशत झूठ है। नीति धर्म की सीढ़ी नहीं है, नीति धर्म का फूल है, सुगंध है। नीति धर्म की सीढ़ी नहीं है। नीति धर्म का परिणाम है।
धार्मिक व्यक्ति के जीवन में नैतिकता होती है। लेकिन कोई नैतिक हो जाए, तो उसके जीवन में तो नैतिकता भी नहीं होती और धर्म भी नहीं होता। क्योंकि नैतिकता होने की जो चेष्टा है, नैतिक होने का जो प्रयास है, वह इसी बात की खबर है कि आदमी अनैतिक है, और अनीति के ऊपर नीति को थोपने में संलग्न है। भीतर हिंसा है, ऊपर से अहिंसा को थोप रहा है। जिसके भीतर हिंसा नहीं है, क्या वह अहिंसक होने की चेष्टा करेगा? जिसके भीतर चोरी नहीं है, क्या वह चोरी से बचने की कोशिश करेगा? जिसके भीतर असत्य नहीं है, क्या वह सत्य को बोलने का प्रयत्न करेगा? असत्य है भीतर और सत्य को बोलने का जो प्रयत्न है वह उस असत्य को नहीं मिटा सकता, केवल ऊपर से सत्य का एक आवरण खड़ा कर देगा, भीतर असत्य रहेगा मौजूद, सप्रेस, दबा हुआ, भीतर छिपा हुआ। ऊपर हो जाएगा सत्य का आचरण और अंतस हो जाएगा एकदम असत्य। ऐसे व्यक्ति का चित्त द्वंद्व से, कांफ्लिक्ट से भर जाएगा, वह चौबीस घंटे अपने से ही लड़ेगा। दुर्जन, अनैतिक व्यक्ति लड़ता है समाज से और नैतिक व्यक्ति लड़ता है अपने से, लेकिन लड़ाई दोनों की जारी रहती है।
अनैतिक आदमी पकड़ जाता है, तो हम डाल देते हैं कारागृह में और नैतिक आदमी खुद ही अपना कारागृह बना लेता है, उसे किसी कारागृह में डालने की जरूरत नहीं होती। वह खुद अपना इनप्रिजनमेंट है। वह खुद ही चौबीस घंटे मरा जा रहा है, लड़ा जा रहा है अपने आपसे। उसकी नीति सहज नहीं है। वह स्पांटेनियस नहीं है, वह स्वस्फूर्त नहीं है; वह थोपी गई, दबाई गई, जबरदस्ती लादी गई। तब, तब ऊपर से एक रूप, भीतर से दूसरा मनुष्य खड़ा हो जाता। और यह जो भीतर छिपा है यह ज्यादा असली है। क्योंकि जो आपने बनाया है, वह आपका बनाया हुआ है और यह असली आपको उपलब्ध हुआ है, इसको आपने बनाया नहीं। यह जो हिंसक है, यह भीतर बैठा हुआ है, यह आपने बनाया नहीं, यह आपको मौजूद मिला है, और अहिंसक आप बन गए हैं। तो ऊपर से अहिंसा, भीतर हिंसा। और तब यहां तक नौबत आ सकती है कि अहिंसा की रक्षा के लिए जरूरत पड़ जाए, तो ऐसा अहिंसक आदमी तलवार उठा ले और कहे कि अहिंसा की रक्षा के लिए हत्या कर दूंगा तुम्हारी।
अहिंसा की रक्षा के लिए भी वह हिंसा कर सकता है। और फिर उसकी हिंसा नये-नये रास्ते खोजेगी निकलने के। क्योंकि भीतर जो दबा है वह मार्ग खोजेगा, वह जाएगा कहां? तो फिर पाखंड पैदा होता है। नैतिक आदमी की जो जबरदस्ती नैतिक होने की कोशिश है वही पाखंड का जन्म है। फिर पाखंड पैदा

होता है। फिर वह पीछे के रास्ते खोजता है उन्हीं बातों को करने के लिए जिनको सामने के रास्ते उसने अपने हाथ से बंद कर लिए।
लंदन में शेक्सपियर का एक नाटक चलता था। लंदन का जो आर्च-प्रीस्ट था, सबसे बड़ा पादरी था, सबसे बड़ा धर्मगुरु था, अनेक लोगों ने आकर उससे प्रशंसा की, बहुत अदभुत नाटक है, हद्द कुशलता प्रकट की है अभिनेताओं ने। उसके मन में भी लालच हुआ। आखिर पादरी या धर्मगुरु भी तो आदमी ही है, उसके मन में भी रस पैदा होता है। उसके मन में रस हुआ कि मैं भी देखूं। लेकिन वह तो निरंतर लोगों को समझाता था कि नाटक, सिनेमा, यह सब क्या है, यह सब व्यर्थ है, इसमें मत जाओ, यह सब पाप है। अब वह खुद जाना चाहे तो कैसे जाए? उसने नाटक के मैनेजर को एक पत्र लिखा, पूछा पत्र में, देखने आना चाहता हूं मैं भी, लेकिन नहीं चाहता कि कोई मुझे देखे। पीछे का कोई दरवाजा नहीं है? नाटक में पीछे का कोई दरवाजा नहीं है कि मैं चुपचाप आ जाऊं और निकल जाऊं, लोग मुझे न देख पाएं? बड़ी कृपा होगी, अगर पीछे के द्वार कोई हों और मुझे आने की अनुमति मिल जाए।
उस थिएटर के मैनेजर ने उसे वापस पत्र लिखा और कहाः ऐसा पीछे का दरवाजा है। पहले तो नहीं था, लेकिन बनाना पड़ा। सज्जनों के आने के लिए व्यवस्था करनी पड़ी। और अक्सर धर्मगुरुओं को तो आना ही पड़ता है इसलिए रास्ता बना लिया है। आप खुशी से आएं, बड़ा स्वागत है। लेकिन एक बात बता दूं, ऐसा दरवाजा तो है कि आदमियों को पता नहीं चलेगा कि आप आए हैं। लेकिन ऐसा कोई भी दरवाजा नहीं कि परमात्मा को पता न चले। फिर आपकी मर्जी। और अगर आप सोचते हों कि परमात्मा पता नहीं, है भी या नहीं, तो भी ऐसा कोई दरवाजा नहीं कि आपको खुद पता न चले, आपको तो पता चलेगा ही। वैसे आप आएं, हम स्वागत करते हैं।
नैतिक आदमी पीछे का दरवाजा खोजता है। इसलिए नैतिकता के केंद्र पर बने हुए समाज पाखंडी हो जाते हैं, हिपोक्रेट हो जाते हैं। हमारा ही समाज एक उदाहरण है। तीन हजार साल से हम नैतिकता की शिक्षा थोप रहे हैं। नैतिकता की शिक्षा चिल्ला-चिल्ला कर हम परेशान हो गए। पत्थर-पत्थर पर हमने खोद दी है सब धर्म-वाक्य। आदमी-आदमी के दिल पर हमने रामकथा थोप दी है। एक-एक बच्चे को हमने पीला दिए हैं सब पाठ नैतिकता के बिल्कुल दूध के साथ। लेकिन आदमी हमारा? ऐसा आदमी जमीन पर मिलना मुश्किल है इतना अनैतिक आदमी जैसा हमने पैदा किया है। और हम सब एक नाव पर सवार हैं। कोई ऐसा नहीं है कि एक आदमी अनैतिक है। हम सब एक ही नाव पर सवार हैं। इतनी नैतिकता की शिक्षा के बाद यह फल निकला? यह हमारा समाज?
मैंने सुना है, एक स्कूल में एक दिन सुबह-सुबह ही एक इंस्पेक्टर निरीक्षण के लिए आया। भीतर घुसते ही कक्षा में उसने कहा बच्चों से, निरीक्षण करने को आया हूं, तीन प्रश्न मुझे पूछने हैं। तुम्हारी कक्षा में जो सबसे ज्यादा अग्रहणी तीन विद्यार्थी हों, वे क्रमशः खड़े हो जाएं। एक-एक आता जाए, प्रथम नंबर का विद्यार्थी, फिर द्वितीय, फिर तृतीय और प्रश्न को हल कर दे। प्रथम जो उस कक्षा का विद्यार्थी था वह उठा, बोर्ड के पास आया, सवाल लिख दिया गया, उसने उत्तर लिख दिया, अपनी जगह जाकर बैठ गया। फिर नंबर दो का विद्यार्थी आया, उसको भी सवाल दिया गया, उसने भी सवाल हल किया, वह भी अपनी जगह बैठ गया। फिर नंबर तीन का विद्यार्थी उठा, लेकिन तीन नंबर का विद्यार्थी उठते ही थोड़ा झिझका, थोड़ा सकुचाया, पैर भी बढ़ाए तो थोड़े संकोच से। फिर बोर्ड पर आकर डरा-डरा सा चॉक लेकर लिखने को था कि तभी इंस्पेक्टर को खयाल आया कि यह लड़का तो वही है जो नंबर एक आकर सवाल हल कर गया था। उसने उसका कान पकड़ा और कहा कि बेईमान, तू धोखा देने की कोशिश कर रहा है, क्या तू वही नहीं जो पहले भी सवाल हल कर गया? तू फिर से कैसे आ गया? उस विद्यार्थी ने कहाः माफ करिए, निश्चित ही मैं वही हूं, लेकिन आज हमारी कक्षा का जो तीसरे नंबर का विद्यार्थी है वह क्रिकेट का खेल देखने चला गया और वह मुझसे कह गया, मेरी कोई जरूरत पड़ जाए, मेरी जगह कुछ काम पड़ जाए तो कर देना। मैं उसकी जगह आया हुआ हूं।
उस इंस्पेक्टर ने कहाः हद्द हो गई, परीक्षा भी किसी की जगह कोई दे सकता है? यह तो बुरी अनैतिक बात है। और विद्यार्थी को उसने डांटा और समझाया कि ऐसी भूल अब कभी मत करना। और तब, शिक्षक खड़ा था बोर्ड के पास

चुपचाप, इंस्पेक्टर उसकी तरफ मुड़ा और कहाः महाशय, हो सकता था मैं तो न भी पहचान पाता और धोखा हो जाता, लेकिन आप कैसे चुपचाप खड़े देख रहे हैं? आप भी सम्मिलित हैं इस बेईमानी में?
उस शिक्षक ने कहाः माफ करिए, मैं इस कक्षा का शिक्षक नहीं हूं, मैं बगल
की कक्षा का शिक्षक हूं, इस कक्षा का शिक्षक क्रिकेट का खेल देखने चला गया। वह मुझसे कह गया, जरूरत पड़ जाए तो जरा मेरी क्लास देख लेना। तो मैं उसकी जगह खड़ा हुआ हूं। अब तो इंस्पेक्टर के क्रोध का कोई ठिकाना न रहा। उसने कहाः यह तो हद्द हो गई। बच्चे तो बच्चे शिक्षक भी, शिक्षक भी यही कर रहे हैं। एक-दूसरे की जगह खड़े हुए हैं। यह क्या बेईमानी है? यह क्या शिक्षा दी जा रही है? यह क्या अनैतिकता सिखाई जा रही है अभी से? शिक्षक भी थरथर कांपने लगा। बच्चे भी डर आए। नौकरी का भी खतरा था। उसने हाथ जोड़े, पैर पड़े। इंस्पेक्टर उसे लेकर बाहर आ गया। फिर इंस्पेक्टर को दया आ गई, उसने कहाः घबड़ाओ मत, चिंतित मत होओ, तुम्हारे भाग्य, मैं असली इंस्पेक्टर नहीं हूं। असली इंस्पेक्टर क्रिकेट का खेल देखने चला गया, मैं उसका मित्र हूं। हम सब एक नाव पर सवार हैं। इसमें नीचे के आदमी से लेकर राष्टपति तक सब सम्मिलित हैं। एक ही नाव पर सम्मिलित हैं। इसमें गरीब से लेकर अमीर तक; अनुयायियों से लेकर नेताओं तक; गृहस्थियों से लेकर संन्यासियों तक, सब सम्मिलित हैं। हम सब एक नाव पर सवार हैं। और यह सवारी इसलिए पैदा हो गई है कि हम हजारों साल से जबरदस्ती नैतिक होने की कोशिश कर रहे हैं। जबरदस्ती नैतिक होने का यह दुष्परिणाम हुआ है। नैतिक तो हम नहीं हो पाए पाखंडी हम जरूर हो गए हैं।
नीति ऐसे नहीं आती, नीति के आने का रास्ता दूसरा ही है। अनैतिकता लक्षण है, नैतिकता भी एक लक्षण है। आदमी का शरीर गरम हो जाता है, तो हम समझते हैं आदमी बीमार हो गया। बुखार बीमारी नहीं है, केवल बीमारी का लक्षण है। फीवर चढ़ गया, तापमान लक्षण है, केवल सूचना है। आदमी भीतर बीमार है। शरीर का गरम हो जाना खुद कोई बीमारी नहीं है, बीमारी कुछ और है। उस बीमारी के कारण शरीर गरम हुआ है। गर्मी तो केवल सूचक है। खबर देती है कि शरीर कहीं रुग्ण है। इसलिए तापमान बढ़ गया। बढ़े तापमान के कारण हमें पता चलता है कि शरीर कहीं रुग्ण है। लेकिन अगर हम इस बढ़े हुए तापमान को ही बीमारी समझ लें और आदमी को ठंडे पानी से नहलाने लगें कि इसकी गर्मी उतार दें, मामला खतम हो जाएगा, गर्मी बीमारी है। बीमारी तो नहीं खतम होगी, बीमार जरूर खतम हो जाएगा। लक्षण बीमारियां नहीं होते, लक्षण तो सूचनाएं होते हैं।
एक आदमी चोर है, बेईमान है, असत्य बोलता है, हिंसक है, ये सिर्फ लक्षण हैं। तापमान है, भीतर आदमी की आत्मा अस्वस्थ है, ये उसकी खबरें हैं। इनको बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। ये तो केवल सूचनाएं हैं कि आत्मा अस्वस्थ है, अज्ञान में है। एक ही अस्वास्थ्य हैः आत्मा का अज्ञान। अज्ञान के ये लक्षण हैं। अज्ञान होता है भीतर, तो बाहर होती है अनैतिकता। अनैतिकता को नहीं मिटाना है। वह तो केवल लक्षण है। मिटाना है अज्ञान को। अज्ञान के मिटते ही अनैतिकता मिट जाती है। और जब भीतर ज्ञान होता है तो बाहर नैतिकता होती है। अज्ञान का लक्षण है अनैतिकता, ज्ञान का लक्षण होती है नैतिकता। भीतर होता है ज्ञान तो जीवन हो जाता है नैतिक। लेकिन हम जड़ों को नहीं देखते, हम पत्तों पर मेहनत करते हैं, इसलिए सारी मेहनत व्यर्थ हो जाती है। एक व्यक्ति ने अपने बचपन का संस्मरण लिखा है, उसने लिखा हैः जब मैं छोटा था, तो मेरी मां की एक बहुत बड़ी बगिया थी। उस बगिया में ऐसे सुंदर फूल खिलते थे कि दूर-दूर से लोग उन्हें देखने आते और प्रशंसा करते। फिर मेरी मां बूढ़ी हो गई और बीमार पड़ी। एक बार लंबी बीमारी, कोई महीने भर उसे बिस्तर पर रहना पड़ा। वह बहुत चिंतित थी, बीमारी के लिए नहीं, अपने फूलों के लिए। और मैं अकेला ही उसका लड़का था और छोटी मेरी उम्र थी। फिर मैंने अपनी मां को कहाः चिंतित मत होओ, मैं फूलों की सम्हाल कर लूंगा। मैं फिकर कर लूंगा। तुम निश्चिंत रहो। तुम्हारे फूल नहीं मुरझा पाएंगे। और फिर वह युवक दिन-रात मेहनत करता रहा जाकर बगिया में। एक-एक फूल की धूल झाड़ता, एक-एक फूल को चूमता, एक-एक फूल को प्यार करता। महीने भर बाद जब उसकी मां उठी, तब तक बगिया

बर्बाद हो चुकी थी। सब फूल कुम्हला चुके थे, पौधे मरने के करीब आ गए थे। सब पत्ते दीन-हीन हो गए थे।
उसकी मां ने देखा, तो वह हैरान हो गई, उसने कहाः तू क्या करता था सुबह
से सांझ तक? दिन-रात तो तू बगिया में रहता था, तूने किया क्या? वह लड़का रोने लगा, उसकी आंख से आंसू टपकने लगे, उसने कहाः मैंने सब कुछ किया--एक-एक फूल को चूमा, एक-एक फूल को सम्हाला, एक-एक फूल को पानी से नहलाता था, पता नहीं क्या हुआ, यह बगिया तो सूखती चली गई!
उसकी मां हंसने लगी, उसने कहाः पागल, फूलों के प्राण फूलों में नहीं होते, उन जड़ों में होते हैं जो दिखाई नहीं पड़तीं। पानी जड़ों को देना पड़ता है, फूलों को नहीं। जड़ों को पानी मिल जाता है, फूल अपने आप युवा बने रहते हैं। और फूलों को जो पानी देगा, उसके फूल तो मरेंगे ही, जड़ें भी मर जाएंगी। फूलों को पानी देने से जड़ों को पानी नहीं मिलता। जड़ों को पानी देने से जरूर फूलों को पानी मिल जाता है। लेकिन जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं, फूल दिखाई पड़ते हैं। आत्मा दिखाई नहीं पड़तीं, आचरण दिखाई पड़ता है। आचरण सिर्फ फूल है। आत्मा में जड़ें हैं। जो फूलों को सम्हालता है, फूल तो उसके मिट ही जाते हैं। और जब फूल नहीं सम्हल पाते, तो फिर बाजार में कागज के, प्लास्टिक के फूल मिलते हैं, उन्हीं को ले आता है, फिर उन्हीं से खुद को सजा लेता है। फिर पाखंड पैदा हो जाता है।
आत्मा को सम्हालना है, शेष सब अपने से सम्हल जाता है। और शेष सबको जो सम्हालता है, वह शेष सब तो खो ही जाता, आत्मा भी खो जाती है। इसलिए नीति नहीं, धर्म, ताकि नीति का जन्म हो सके। नीति सुगंध है धार्मिक जीवन की। स्वयं को जानना है।

अंतिम एक प्रश्न और फिर मैं अपनी चर्चा पूरी करूंगा।
कुछ और मित्रों ने पूछा है कि संसार में बहुत दुख, बहुत पीड़ा है, दुख
ही दुख है, पीड़ा ही पीड़ा, चिंता ही चिंता, अशांति ही अशांति, कैसे हम शांत हो सकेंगे इसमें? इस इतने उपद्रव में, इस झंझावात में, इस आंधी में कैसे सम्हाल सकेंगे अपने शांति के दीये को?

नहीं, यह उन्हें संभव नहीं मालूम पड़ता है। निश्चित ही जीवन में बहुत उपद्रव हैं। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। और जीवन में उपद्रव हैं इसलिए आप अशांत हैं, यह निदान, यह डायग्नोसिस गलत है। आप अशांत हैं इसलिए जीवन में उपद्रव है। जीवन के उपद्रव के कारण आप अशांत नहीं हैं, आप अशांत हैं इसलिए जीवन में उपद्रव है।
एक छोटी सी घटना, शायद खयाल में आ जाए बात।
टोकियो के एक बड़े होटल में, आज से कोई तीस वर्ष पहले एक घटना घटी। एक सात मंजिल लकड़ी की बड़ी होटल में। एक विदेशी यात्री वहां ठहरा हुआ था। और उसने उस संध्या एक साधु को, साधु की खबरें सुन कर भोजन के लिए आमंत्रित किया था। साधु का नाम था, बोकोजू। वह साधु आया हुआ था। उस विदेशी यात्री ने अपने कुछ दस-पच्चीस मित्र भी साथ में बुलाए थे कि भोजन भी करेंगे, उस साधु से कुछ बात भी करेंगे। फिर बात चली, वे भोजन करते जाते, साधु से कुछ प्रश्न पूछे थे, वह उत्तर दे रहा था। और तभी बीच में आ गया भूकंप। सारा नगर डांवाडोल हो गया। भवन गिरने लगे, त्राहि-त्राहि मच गई, शोरगुल, उत्पात, अराजकता, कुछ समझ में न रहा। सात मंजिल ऊपर बैठे उस मकान पर सब कंपने लगा। फिर वहां कौन रुकता। अभी यहां भूकंप आ जाए तो कौन यहां रुकेगा? किसको खयाल रहेगा, क्या सुन रहे थे? किसको ध्यान रहेगा, आगे और क्या सुनने को था? कोई नहीं रुका। वहां भी कोई नहीं रुका। वे सब भागे। वह जो मेजबान था, जिसने निमंत्रित किया था मित्रों को, वह भी भागा। द्वार पर भीड़ हो गई। सीढ़ियां संकरी थीं। उसे खयाल आया कि मैं भाग रहा हूं, लेकिन जिस साधु को मैंने अतिथि की तरह बुलाया था, वह कहां है? वह भी भाग गया या नहीं? लौट कर देखा, वह साधु आंख बंद किए अपनी ही जगह बैठा है। उसे लगा, मेजबान भाग जाए, होस्ट भाग जाए; गेस्ट, अतिथि घर में बैठा हो, क्या यह शोभा योग्य है? क्या यह उचित है कि मैं भाग जाऊं मेहमान को छोड़ कर? और फिर यह आदमी कैसा है जो चुपचाप

बैठा है भूकंप में? सब गिरा जाता है, किसी भी क्षण भवन गिर सकता है, मौत निकट है, यह चुप क्यों बैठा है? कैसा है यह आदमी? उस आदमी के आकर्षण ने, उस अदभुत आदमी के चुंबक ने जैसे उसे खींच लिया। वह खींच गया उसके पास और चुपचाप बैठ गया यह सोच कर कि जो होना है, इसका जो होना है वही मेरा होगा, लेकिन मैं भागूंगा नहीं। हाथ-पैर कंपे जाते हैं, प्राण कंपित हैं। फिर भूकंप आया और चला गया। कौनसा भूकंप हमेशा रुकता है, सब आता है और चला जाता है।
भूकंप चला गया। साधु ने आंख खोली। बात जहां टूट गई थी भूकंप के आने से, फिर से शुरू करनी चाही। फिर से शुरू की। उसके मेजबान ने कहाः क्षमा करें, अब मुझे कुछ भी पता नहीं कि भूकंप के पहले हम कौनसी बातें करते थे। सब कंप गया, मन भी सब कंप गया, सब अस्त-व्यस्त हो गया। अब फिर कभी फुर्सत से बाद करेंगे। एक दूसरी बात लेकिन जरूर मुझे पूछनी है, हम भागे, प्राणों को संकट था, आप नहीं भागे?
उस साधु ने कहाः भागा तो मैं भी, लेकिन तुम बाहर की तरफ भागे, मैं भीतर
की तरफ भागा। और तुम व्यर्थ ही भाग रहे थे, क्योंकि जहां से तुम भागते थे वहां भी भूकंप था, जहां तुम भागते थे वहां भी भूकंप था। तो भूकंप से भूकंप में भागने का प्रयोजन क्या था? और तुम जहां भाग कर जा रहे थे, वहां जो लोग थे, वे भी कहीं भाग रहे थे। तो मतलब क्या था? भूकंप से भूकंप में ही दौड़ जाने का प्रयोजन क्या था?
मैं उस तरफ भागा जहां भूकंप नहीं था। मैं भीतर की तरफ भागा। भीतर एक ऐसी जगह मिल गई है जहां कोई भूकंप कभी नहीं पहुंचता है। मैं उसी तरफ भाग गया था।
मनुष्य के भीतर एक जगह है जहां कोई बाहर का भूकंप कभी नहीं पहुंचता है। जो उस शरण को खोज लेता है, जो उस मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है, फिर बाहर का भूकंप तो उस तक नहीं पहुंचता, लेकिन उसकी शांति जरूर बाहर जो भूकंप में हैं उन तक पहुंचने लगती है। तब उसके उस मंदिर से एक रोशनी चारों तरफ फैलने लगती है। तब उसके उस शांत शून्य स्थल से, उस केंद्र से एक शांति की वर्षा चारों तरफ होने लगती है।
जरूर जीवन में बाहर संकट हैं, भूकंप हैं, लेकिन इससे ऐसा मत सोच लेना
कि ऐसी कोई भी जगह नहीं है जहां भूकंप न हो, और जहां आप न पहुंच सकते हों। उस स्थल को ही हम आत्मा या परमात्मा कहते हैं। आत्मा या परमात्मा कोई फिलासफिकल, दार्शनिक धारणाएं नहीं हैं। दार्शनिकों ने बड़ा अन्याय किया है। उन्होंने इन सारी धारणाओं को, जो जीवन की अनुभूतियां हैं; धारणाएं नहीं, कंसेप्ट नहीं, सिद्धांत नहीं, जो जीवन की सघन, यथार्थ अनुभूतियां हैं, उन सब पर वाद-विवाद खड़ा करके उन्हें थोथे शब्द बना दिया है।
इन तीन दिनों में बाहर भूकंप है, इसी संबंध में तो मैंने आपसे कहा। और भीतर एक शरण है, उस संबंध में भी मैंने आपसे कहा। अब आपके हाथ में है कि आप भूकंप से भूकंप में भागेंगे या भूकंप से उस तरफ जहां कोई भूकंप नहीं है।

मेरी बातों को तीन दिन तक इतने प्रेम और शांति से सुना, इसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में... हो सकता है मेरी बहुत सी बातों ने किसी के मन को चोट पहुंचा दी हो, चाहा तो कभी नहीं है कि किसी के मन को कोई चोट पहुंच जाए, लेकिन सोए हुए आदमी को कोई जगाने की कोशिश करे, तो नींद में जो है उसे नींद टूटना अच्छी तो लगती नहीं, चोट पहुंच जाती है। सपने देख रहा होता है, कोई हिलाने लगता है कि उठो-उठो, बड़ा बुरा लगता है कि कहां बेवक्त कोई उठाने आ गया। अभी तो नींद ही लगी थी, अच्छा सपना चलता था, कहां-कहां पहुंचे जाते थे, सब गड़बड़ कर दिया। हो सकता है नींद में आपको खूब तीन दिन तक बार-बार मैं धक्के देता रहा हो, कहा कि उठो-उठो, आपके कोई सपने टूट गए हों, दुख हुआ हो, तो अंत में, तो विदा लेने के पहले मुझे क्षमा तो मांग ही लेनी चाहिए। तो मैं क्षमा मांगता हूं, अगर किसी कोई चोट पहुंच गई हो। लेकिन अंत में इतनी प्रार्थना जरूर करता हूं कि जिस दिन नींद को छोड़ने की सामर्थ्य आप जुटा लेंगे, उस दिन, उस दिन ही आपके जीवन में पहली बार आनंद का, आलोक का, अमृत का अवतरण होगा।

परमात्मा से प्रार्थना करता हूं, सबके हृदय में आनंद और अमृत का अवतरण हो सके, सबके हृदय में वह उतर सके। और आपसे प्रार्थना करता हूं कि पुकारना उसे, बुलाना उसे, और अपने मन में जगह देना। जब वह आने को तैयार हो, तो मन के द्वार खुल रखना, ताकि वह अतिथि सीढ़ियों से वापस न लौट जाए। वह तो रोज आता है द्वार पर हरेक के, लेकिन द्वार बंद देख कर वापस लौट जाता है।

अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन की कला
तीसरा प्रवचन

सत्य की झलक

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक राजकुमार था बचपन से ही सुन रहा था कि पृथ्वी पर एक ऐसा नगर भी है जहां कि सभी लोग धार्मिक हैं। बहुत बार उस धर्म नगर की चर्चा, बहुत बार उस धर्म नगर की प्रशंसा उसके कानों में पड़ी थी। जब वह युवा हुआ और राजगद्दी का मालिक बना तो सबसे पहला काम उसने यही किया कि कुछ मित्रों को लेकर, यह उस धर्म नगरी की खोज में निकल पड़ा। उसकी बड़ी आकांक्षा थी, उस नगर को देख लेने की, जहां कि सभी लोग धार्मिक हों। बड़ा असंभव मालूम पड़ता था यह। बहुत दिन की खोज, बहुत दिन की यात्रा के बाद, वह एक नगर में पहुंचा, जो पड़ा अनूठा था। नगर में प्रवेश करते ही उसे दिखाई पड़े ऐसे लोग, जिन्हें देख कर वह चकित हो गया और उसे विश्वास भी न आया कि ऐसे लोग भी कहीं हो सकते हैं। उस नगर का एक खास नियम था, उसके ही परिणाम स्वरूप यह सारे लोग अपंग हो गए हैं। देखो, द्वार पर लिखा है, कि अगर तेरा बांया हाथ पाप करने को संलग्न हो तो उचित है कि तू अपना बायां हाथ काट देना बजाय कि पाप करे। देखो, लिखा है द्वार पर कि अगर तेरी एक आंख तुझे गलत मार्ग पर ले जाए तो अच्छा है कि उसे तू निकाल फेंकना, बजाय इसके कि तू गलत रास्ते पर जाए। इन्हीं वचनों का पालन करके यह गांव अपंग हो गया है। छोटे-छोटे बच्चे, जो अभी द्वार पर लिखे इन अक्षरों को नहीं पढ़ सकते हैं, उन्हें छोड़ दें तो इस नगर में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो धर्म का पालन करता हो और अपंग न हो गया हो।
वह राजकुमार उस द्वार के भीतर प्रविष्ट नहीं हुआ, क्योंकि वह छोटा बच्चा नहीं था और द्वार पर लिखे अक्षरों को पढ़ सकता था। उसने घोड़े वापस कर लिए और उसने अपने मित्रों को कहाः हम वापस लौट चलें, अपने अधर्म के नगरों को, कम से कम आदमी वहां पूरा तो है!
इस कहानी से इसलिए मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं कि सारी जमीन पर धर्मों के तथाकथित रूप ने आदमी को अपंग किया है। उसके जीवन को स्वस्थ और पूर्ण नहीं बनाया बल्कि उसके जीवन को खंडित, उसके जीवन को अवस्था, पंगु और कुंठित किया है। उसके परिणाम स्वरूप सारी दुनिया में, जिनके भीतर भी थोड़ा विचार है, जिनके भीतर भी थोड़ा विवेक है, जो थोड़ा सोचते हैं और समझते हैं, उन सब के मन में धर्म के प्रति एक विद्रोह की तीव्र भावना पैदा हुई है। यह स्वाभाविक भी है कि यह भावना पैदा हो। क्योंकि धर्म ने, तथाकथित धर्म ने जो कुछ किया है, उससे मनुष्य आनंद को तो उपलब्ध नहीं हुआ, वरन उदास, और चिंतित और दुखी हो गया है।
निश्चित ही, मेरे देखे, मनुष्य को कुंठित और पंगु करने वाले धर्म को धर्म नहीं कहता हूं। मैं तो यही कहता हूं कि अभी तक धर्म का जन्म नहीं हो सका है। धर्म के नाम से जो कुछ प्रचलित है, धर्म के नाम से जो मंदिर और मस्जिद और ग्रंथ और शास्त्र गुरु है, धर्म के नाम पर पृथ्वी पर जो इतनी दुकानें है, उन सबसे धर्म का कोई भी संबंध नहीं है। और यदि हम ठीक-ठीक धर्म को जन्म न दे सके तो इसका एक ही परिणाम होगा कि आदमी अधार्मिक होने को मजबूर हो जाएगी।
आदमी विवशता में अधर्म की और गया है धर्म ने आकर्षण नहीं दिया, बल्कि विकर्षण पैदा किया है। धर्म ने बुलाया नहीं, बल्कि दूर किया है। और अगर, इसी तरह के धर्म का प्रचलन भविष्य में भी रहा, तो हो सकता है कि मनुष्य के वचन की को, संभावना भी न रह जाए। धर्मों ने ही धर्म को जन्म लेने से रोक दिया है, और उनके रोकने का जो बुनियादी कारण है, वह यही है कि अब तक हमने, मनुष्य-जाति ने मनुष्य को उसकी परिपूर्णता में स्वीकार करने का साहस नहीं दिखलाया। मनुष्य के कुछ अंगों को खंडित करके ही हम मनुष्य को स्वीकार करने की बात सोचते रहे। समग्र मनुष्य को, टोटल मनुष्य को विचार में लेने की अब तक हमने हिम्मत नहीं दिखाई है। मनुष्य को काट कर, छांट कर, ढांचे में ढालने की हमने कोशिश की है। उसके परिणाम में, मनुष्य तो पंगु हो गया और जिनमें थोड़ा भी विचार है, वे उन ढांचों से दूर रहने के लिए मजबूर हो गए।

मैंने सुना है, एक नगर के द्वार पर एक राक्षस का निवास था। और बड़ी अजीब उसकी आदत थी। वह जिन लोगों को भी द्वार पर पकड़ लेता, उनसे कहता कि मेरे पास एक बिस्तर है, अगर तुम ठीक-ठीक उस बिस्तर पर सो सके तो मैं तुम्हें छोड़ दूंगा। अगर तुम बिस्तर पर छोड़े साबित हुए तो मैं। तुम्हें खींच कर बिस्तर के बराबर करने की कोशिश करूंगा। उसमें अक्सर लोग मर जाते हैं, तुम भी मर सकते हो, और अगर तुम बड़े साबित हुए तो तुम्हारे हाथ पैर काट करके बिस्तर के बराबर करने की कोशिश करूंगा और उसमें भी अक्सर लोग मर जाते हैं! और मैं तुम्हें बताए देता हूं, अब तक एक भी मनुष्य उस बिस्तर से वापस नहीं लौट पाया, फिर मैं उसका भोजन कर लेता हूं।
उस बिस्तर के बराबर आदमी खोजना मुश्किल था। या तो आदमी थोड़ा छोटा पड़ जाता, या थोड़ा बड़ा, और उसकी हत्या सुनिश्चित हो जाती।
धर्मों ने भी मनुष्य को बनाने के ढांचे कर रखे हैं। आदमी या तो उनसे छोटा पड़ जाता है या बड़ा। और तब पंगु होने के अतिरिक्त अंग भंग हो जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रह जाता है। ऐसे पंगु करने वाले धर्मों ने जितना नुकसान किया है उतना जिन्हें हम नास्तिक कहें, अधार्मिक कहें, उन लोगों ने भी नहीं किया है। मनुष्य को सब तरह से जैसे पकड़ दिया गया है जंजीरों में। बात मुक्ति की और स्वतंत्रता की है। लेकिन स्वतंत्रता और मुक्ति की बात करने वाले लोग ही कारागृह को खड़ा करनेवाले लोग भी हों, तो बड़ी कठिनाई हो जाती है।
जीवन की धारा को सब तरह से बांधकर एक सरोवर बनाने की कोशिश की जाती है,
जब कि सरोवर बनते ही सरिता के प्राण सूखने लगते हैं, उसकी मृत्यु होनी शुरू हो जाती है। सरिता का जीवन है अबाध बहे जाने में--नये-नये रास्तों पर, नवीन-नवीन मार्गों पर, अज्ञात की दिशा में खोज करने में सरिता की जीवंतता है, उसकी लिविंगनेस है और उसी अज्ञात के पथ पर, कभी उसका मिलन उस सागर से भी होता है, जिसके लिए उसके प्राण तड़पते हैं। कभी उस प्रेमी से उसका मिलना हो जाता है। सरोवर है सब तरफ से बंद, दीवालें खड़े करके हर जाता है, फिर उसके प्राण सूखते तो जरूर हैं, कचरा उसमें इकट्ठा भी होता है, गंदगी उसमें भरती है, कीचड़ होती है। पानी तो धीरे-धीरे उड़ जाता है, धीरे-धीरे कीचड़ का धर ही वहां शेष रह जाता है। और उस सरोवर को, सागर से मिलने की सारी संभावनाएं फिर समाप्त हो जाती हैं।
जो लोग भी अपने आस-पास कृत्रिम ढांचों की, आर्टिफीशियल पैटर्न की दीवालें खड़ी कर लेते हैं और सोचते हैं कि वे धार्मिक हैं वे भूल में हैं। धर्म का ढांचों से संबंध नहीं। धर्म का तो सहज जीवन के प्रवाह से संबंध है। धर्म सरोवर बनाने को नहीं, एक गतिमान, अबाध गति से बहती हुई स्वतंत्र सरिता बनाने को है, तभी कभी सागर से मिलने हो सकता है।
प्रत्येक मनुष्य की जीवन धारा किसी अनंत सागर की खोज में निरंतर प्यासी है। उसे हम परमात्मा कहें, उसे हम कोई और नाम दें, उसे हम कुछ और शब्द दें, दूसरी बात है। लेकिन हर जीवन की धारा किसी प्रीतम के सागर को पाने को जैसे व्याकुल है और भागी जाना चाहती है। इसे हम जितना बांध लेंगे, जितना सब तरफ से दीवालें खड़ी करके कारागृह में बंद कर देंगे, उतनी ही कठिन यह यात्रा हो जाएगी और असंभव। धर्मों ने अब तक यही कि या है, मनुष्य को स्वतंत्र नहीं किया बल्कि बांधा, मनुष्य को मुक्त नहीं किया, बल्कि जंजीरें और कारागृह बनाए। और हजारों वर्ष से यह क्रम चला। हजारों वर्ष की प्रचारित बातें धीरे-धीरे फिर हमें सत्य भी प्रतीत होने लगती हैं, क्योंकि सामान्य जन प्रचारित असत्य को सत्य मान लेने को सहज ही राजी हो जाता है।
एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि मैंने सत्य और असत्य में एक ही फर्क पाया। ठीक से प्रचारित असत्य सत्य मालूम होने लगता है। और उसे लिखा कि मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि कैसे भी असत्य को ढंग से प्रचारित किया जाए, थोड़े दिन में लोग उसे सत्य मान लेने को राजी हो जाते हैं। तो हजारों वर्ष तक अगर कोई एक असत्य प्रचारित किया जाए तो वह हमें सत्य जैसा दिखाई पड़ने लगता है।

तो जो हमारे बंधन हैं, वे भी हमें ऐसे प्रतीत हो सकते हैं, जैसे हमारी मुक्ति हों। जो हमें रोकते हैं पहुंचने से, प्रतीत हो सकते हैं कि हमारी सीढ़ियां हैं और हमें ले जा सकते हैं।
मैंने सुना है, एक पहाड़ी सराय पर एक युवक एक रात मेहमान हुआ। जब वह पहाड़ी में प्रवेश करता था तो घाटियां उसने किसी बड़ी अदभुत और मार्मिक आवाज से गूंजती हुई सुनी। घाटियां में कोई बड़े मार्मिक, बड़े आंसू भरे, बहुत प्राणों की पूरी ताकत से रोता और चिल्लाता था। यह आवाज गूंज रही थी घाटियों में स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। वह हैरान हुआ कि कौन स्वतंत्रता का प्रेमी इन घाटियों में इतने जोर से आवाज करता होगा। लेकिन जब वह सराय के निकट पहुंचा तो आवाज और निकट सुनाई पड़ने लगी, शायद सराय से ही आवाज उठती थी। शायद कोई वहां बंदी था। उसने अपने घोड़े की रफ्तार आर तेज कर ली। वह सराय पर पहुंचा तो हैरान हो गया। यह किसी मनुष्य की आवाज न थी। सराय के द्वार पर पिंजड़े में एक तोता बंद था और जोर से स्वतंत्रता-स्वतंत्रता चिल्ला रहा था। उस युवक को बड़ी दया आई उस तोते पर। वह युवक भी अपने देश की आजादी की लड़ाइयों में बंद रहा था, कारागृहों में और वहां उसने अनुभव किया था, परतंत्रता का दुख। वहां उसने आकांक्षा अनुभव की थी, मुक्त आकाश की। वहां उसकी आकांक्षा ने, वहां उसके स्वप्नों ने स्वतंत्रता के जाल गूंथे थे। आज उसे तोते की आवाज में अपनी उस सारी पीड़ा से कराहती हुई आत्मा का अनुभव हुआ, और सराय का मालिक अभी जागता था। सोचा उसने रात में इस तोते को स्वतंत्र कर दूं।
राज जब सराय का मालिक सो गया, वह युवक उठा। उसने जाकर पिंजड़े का द्वार खोला। सोचा था स्वतंत्रता का प्रेमी तोता उड़ जाएगा, लेकिन द्वार खोलते ही तोते ने सींखचे पकड़ लिए पैरों से और जोर से चिल्लाने लगाः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। वह युवक हैरान हुआ। द्वार खुले थे, उड़ जाना चाहिए था, न उड़ जाने की कोई बात न थी। लेकिन शायद उसने सोचा, मुझसे भयभीत हो, इसलिए उसने हाथ भीतर डाला लेकिन तोते ने उसके हाथ पर चोट की। पिंजड़े के सीखचों को और जोर से पकड़ लिया। युवक ने यह सोचकर कि कहीं उसका मालिक न जाग जाए, चोट भी सही और किसी तरह बमुश्किल उस तोते को निकाल कर आकाश में उड़ा दिया।
वह युवक बड़ी शांति से सो गया, एक आत्मा को स्वतंत्र करने का आनंद उसे अनुभव हुआ था। लेकिन सुबह, जब उसकी नींद खुली तो उसने देखा, तोता वापस अपने पिंजड़े में आकर बैठ गया है। द्वार खुला पड़ा था और तोता चिल्ला रहा हैः स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। वह बहुत हैरान हुआ, वह बहुत ही मुश्किल में पड़ गया। यह आवाज कैसी, यह प्यास कैसी, यह आकांक्षा कैसी! यह तोता पागल तो नहीं है। वह तोते के पिंजड़े के पास खड़े होकर यही सोचता था कि सराय का मालिक वहां से निकला और उसने कहाः बड़ा अजीब है तुम्हारा तोता। मैंने इसे मुक्त कर दिया था, लेकिन यह तो वापस लौट आया। उस सराय के मालिक ने कहाः तुम पहले आदमी नहीं हो, जिसने इसे मुक्त किया हो। जो भी यात्री यहां ठहरता है, उसकी आवाज के धोखे में आ जाता है। रात इसे मुक्त करने की कोशिश करता है। सुबह खुद ही हैरानी में पड़ जाता है, तोता वापस लौट आता है। उसने कहाः बड़ी अजीब तोता है तुम्हारा। उस बूढ़े मालिक ने कहाः तोता ही नहीं, हर आदमी इसी तरह अजीब है। जीवन भर चिल्लाता है, मुक्ति चाहिए, स्वतंत्रता चाहिए और उन्हीं सींखचों को पकड़े बैठा रहता है, जो उसके बंधन हैं और उसके कारागृह हैं।
मैंने जब यह बात सुनी तो मैं भी बहुत हैरान हुआ। फिर मैंने आदमी को बहुत गौर से देखने की कोशिश की, तो मैंने पाया कि जरूर यह बात सच है। आदमी का पिंजड़ा दिखाई नहीं पड़ता, यह दूसरी बात है, लेकिन हर आदमी उन पिंजड़े के सींखचों को पकड़े हुए हैं, यह भी बहुत ऊपर से दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि तोते का पिंजड़ा बहुत स्थूल है, आदमी का पिंजड़ा बहुत सूक्ष्म है। आंख एकदम से उसे नहीं देख पाती। लेकिन थोड़े ही गौर से देखने पर यह दिखाई पड़ जाती है कि हम एक ही साथ दोनों काम कर रहे हैं कि आकांक्षा कर रहे हैं मुक्ति की, आकांक्षा कर रहे हैं किसी विराट के मिलन की, और क्षुद्र सींखचों को इतने जोर से पकड़े हुए हैं कि हम उन्हें छोड़ने का नाम भी नहीं लेते। और कुछ लोग

हैं, जो हमारे इस विरोधाभास का हमारे इस कंट्राडिक्शन का, हमारे जीवन की इस बहुत अदभुत उलझन का फायदा उठा रहे हैं। तोते के ही मालिक नहीं होते, आदमी के भी मालिक हैं, और वे मालिक भलीभांति जानते हैं कि आदमी जब तक पिंजड़े के भीतर बंद हैं, तभी तक उसका शोषण हो सकता है। तभी तक उसका एक्सप्लाइटेशन हो सकता है। जिस दिन वह पिंजड़े के बाहर हैं, उस दिन शोषण की कोई दीवाल, किसी भांति का शोषण संभव नहीं रह जाएगा। और सबसे गहरा शोषण जो आदमी का हो सकता है, वह उसकी बुद्धि के और उसके विचार का शोषण, उसकी आत्मा का शोषण है।
दुनिया में उन लोगों ने, जिन्होंने आदमी के शरीर को कारागृह में डाला हो, उनका अनाचार बहुत बड़ा नहीं है। जिन्होंने आदमी के आसपास दीवालें खड़ी की हों, उन्होंने कोई बहुत बड़ी परतंत्रता पैदा नहीं की। क्योंकि एक आदमी की देह भी बंद हो सकती है, कारागृह में और फिर भी हो सकता है कि वह आदमी बंदी न हो। उसकी आत्मा, दीवाली के बाहर उड़ान भरे, उसकी आत्मा सूरज के दूर पंथों पर यात्रा करें, उसके सपने दीवालों को अतिक्रमण कर जाए। देह बंद हो सकती है, और हो कसता है, भीतर जो बैठा हो, वह बंद न हो। जिन लोगों ने मनुष्य के शरीर के लिए कारागृह उत्पन्न किए, वे बहुत बड़े जेलर नहीं थे। लेकिन जिन्होंने मनुष्य की आत्मा के लिए सूक्ष्म कारागृह बनाए हैं, वे मनुष्य के बहुत गहरे में शोषक, मनुष्य के जीवन पर आने वाली चिंताओं, दुखों का बोझ डालने वाले, सबसे बड़े जिम्मेवार, वे ही लोग हैं। और वे लोग कौन है? जिन लोगों ने भी धर्म के नाम पर धर्मों को निर्मित किया है, वे सभी लोग, जिन लोगों ने परमात्मा के नाम पर छोटे-छोटे मंदिर खड़े किए हैं और मस्जिद, और चर्च वे सभी लोग। जिन लोगों ने भी धर्म के नाम पर शास्त्र निर्मित किए हैं और दावा किया है, उन शास्त्रों में परमात्मा की वाणी होने को, वे सभी लोग। वे सभी लोग, उन्होंने मनुष्य के अंतस चित्त को बांध लेने की बड़ी सूक्ष्म ईजादें की हैं, वे सभी लोग।
वे कौन सी सूक्ष्मतम जंजीरें हैं, जो आदमी को बांध रखती हैं? उस संबंध में अभी कहूंगा। तीन चर्चाएं यहां मुझे देनी हैं, तीन चर्चाओं में कोशिश करूंगा कि बंधन समझ में आ सकें, हम क्यों बंधन में बंधे हैं, यह समझ में आ सके और हम कैसे बंध से मुक्त हो सकते हैं, यह समझ में आ सके। कौन से बंधन मनुष्य को घेर लिए हैं, इतनी सूक्ष्मता से? शायद खयाल में भी न आए। खयाल में आएगा भी नहीं। उस तोते को भी खयाल में नहीं आ सकता था कि मैं क्या चिल्ला रहा हूं और क्या पकड़े हुए हूं?
पहला बंधन जो मनुष्य के आसपास कारागृह को खड़ा किया है, वह है श्रद्धा का, विश्वास का, बिलीफ का। हजारों वर्षों से यह समझाया जा रहा है, विश्वास करो। यह जहर हम बच्चे को उसके पैदा होने के साथ ही पिलाना शुरू कर देते हैं। दूध शायद बाद में पिलाते हैं, यह जहर पहले पिला देते हैं--विश्वास करो। और जो आदमी विश्वास करने को राजी हो जाता है, उसके भीतर विचार की क्षमता हमेशा के लिए पंगु हो जाती है। उसके भीतर विचार के हाथ पैर टूट जाते हैं, विचार की आंखें फूट जाती हैं, क्योंकि विश्वास, या विचार, दोनों एक साथ संभव नहीं है। क्योंकि विश्वास की पहली शर्त है, संदेह मत करो, और विचार की पहली शर्त है, संदेह करो, ठीक ठीक संदेह करो। विश्वास कहता है, शक मत करो, मान लो। विचार कहता है, मानने की जल्दी मत करना, हेजीटेट करना, थोड़े ठहरना, थोड़े रुकना, थोड़े सोचना। विश्वास कहता है, एक क्षण रुकने की जरूरत नहीं है। विचार कहता है, चाहे पूरा जीवन ही क्यों न रुकना पड़े, लेकिन प्रतीक्षा करना, जल्दी मत करना। सोचना, खोजना, चिंतन करना, मनन करना, और तभी शायद, जो सत्य है, उसकी झलक उपलब्ध हो सके।
लेकिन विश्वास बड़ा सस्ता नुस्खा है, बहुत शॉर्टकट है। बहुत सीधा सा दिखाई पड़ता है। हमें कुछ भी नहीं करना है, कोई हमसे कहता है, विश्वास कर लो, परमात्मा है। कोई हमसे कहता है विश्वास कर लो, परमात्मा नहीं है। कोई हमसे कहता है विश्वास कर लो, आत्मा है। कोई हमसे कहता है, विश्वास कर लो स्वर्ग है, मोक्ष है। दुनिया के ये इतने धर्म--कोई तीन सौ धर्म जमीन पर हैं, इन सबमें आपस में विरोध है। ये एक-दूसरे की बात से राजी नहीं हैं। ये एक दूसरे

के शत्रु हैं। लेकिन एक बात पर ये सब सहमत हैं कि विश्वास करो। इस जहर को पिलाने में इनका कोई विरोध नहीं है। यह इन सबकी बुनियाद है।
तो आप चाहे हिंदू हों, चाहे मुसलमान, चाहे ईसाई। अगर आप विश्वास करते हैं, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है कि आपने आंख पर किस रंग की पट्टियां बांध रखी हैं। वे हरी हैं कि लाल कि सफेद, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आंख पर पट्टियां हैं, बस इतना काफी है। आपके जीवन में विचार का जन्म नहीं हो सकेगा। और नहीं चाहते हैं समाज के न्यस्त स्वार्थ कि मनुष्य में विचार पैदा हो। क्योंकि विचार आधारभूत रूप से विद्रोह है। विचार में रिवेलियन छिपा है, विचार में रिवोल्यूशन छिपी है। वहां क्रांति का बीज है, जो विचार करेगा, वह आज नहीं कल, खुद तो क्रांति से गुजरेगा ही, उसके आस-पास भी वह क्रांति की हवाएं फेंकेगा। क्योंकि विचार झुकने को राजी नहीं होता, विचार अंधा होने को राजी नहीं होता, विचार आंख बंद कर लेने को राजी नहीं होता। मैंने सुना है, एक गांव में एक विचारक तेली के घर तेल खरीदने गया। देख
कर उसे वहां बड़ी हैरानी हुई। तीली तो तेल तौलने लगा। उसके ही पीछे कोल्हू का बैल कोल्हू को चलाए जाता था, बिना किसी चलाने वाले के। कोई चलाने वाला न था। उस विचारक ने उस तेली से पूछाः मेरे मित्र, बड़ा अदभुत है यह बैल। बड़ा धार्मिक, बड़ा विश्वासी मालूम होता है। कोई चलाने वाला नहीं है और चल रहा है? उस तेली ने कहाः थोड़ा गौर से देखो, देखते नहीं, आंखें मैंने उसकी बांध रखी हैं। आंखें बंधी हैं, उसे दिखाई नहीं पड़ता कि कोई चला रहा है कि नहीं चला रहा है। चलता जाता है। इस खयाल में है कि कोई चला रहा है। उस विचार ने कहाः लेकिन यह रुक कर जांच भी तो कर सकता है कि कोई चलाता है या नहीं? उस तेली ने कहाः फिर भी तुम ठीक नहीं देखते। मैंने उसके गले में घंटी बांध रखी है। जब तक चलता है, घंटी बजती रहती है। जब रुक जाता है, घंटी बंद हो जाती है, मैं फौरन उसे जाकर फिर से हांक देता हूं, ताकि उसे यह भ्रम बना रहता है कि कोई पीछे मौजूद है।
उस विचारक ने कहाः और यह भी तो हो सकता है कि वह खड़ा हो जाए और सिर हिलाता रहे ताकि घंटी बजे। उस तेली ने कहाः महाराज, मैं आपके हाथ जोड़ता हूं, आप जल्दी यहां से चले जाएं, कहीं मेरा बैल आपकी बात न सुन ले। आपकी बातें खतरनाक हो सकती है। बैल विद्रोही हो सकता है। आप कृपा करें, यहां से जाएं और आगे से कोई और दुकान से तेल खरीद लिया करें। यहां आने की जरूरत नहीं है। मेरी दुकान भलीभांति चलती है, मुफ्त मुसीबत खड़ी हो सकती है। आदमी के शोषण पर भी धर्म के नाम पर बहुत दुकानें हैं। जिन्हें हम परमात्मा के मंदिर कहते हैं, जरा भी वे परमात्मा के मंदिर नहीं हैं, दुकानें हैं, पुरोहित की ईजाद है। परमात्मा का भी कोई मंदिर हो सकता है, जो आदमी बनाए? परमात्मा के लिए भी मंदिर की व्यवस्था आदमी को करनी पड़ेगी क्या? कैसी छोटी, छोटी अजीब बात है बनाएंगे उसके लिए मंदिर? उसके निवास की व्यवस्था हम करेंगे? और हमारे छोटे-छोटे मकानों में वह विराट समझ सकेगा? प्रवेश पा सकेगा?
नहीं, यह तो संभव नहीं है। और इसीलिए जमीन पर कितने मंदिर हैं, कितने चर्च, कितनी मस्जिद, कितने गिरजे, कितने शिवालय, कितने गुरुद्वारे--लेकिन धर्म कहां है, परमात्मा कहां है? इस ज्यादा धार्मिक और कोई स्थिति हो सकती है, जो हमारी है? और यह मंदिर ही और मस्जिद ही और मस्जिद ही रोज अधर्म के अड्डे बन जाते हैं हत्या के, आगजनी के, बलात्कार के। इनके भीतर से ही आवाजें उठती हैं, जो मनुष्य-मनुष्य को टुकड़ों-टुकड़ों में तोड़ देती हैं। इनके भीतर से ही वे नारे आते हैं, जो आदमी के जीवन में हजार-हजार तरह के विद्वेष, घृणा फैला जाते हैं। हिंसा पैदा कर जाते हैं।
अगर किसी दिन, किसी आदमी ने यह मेहनत उठानी पसंद की और यह हिसाब लगाया
कि मंदिर और मस्जिदों के नाम पर कितना खून बहा है, तो आप हैरान हो जाएंगे, और किसी बात पर इतना खून कभी भी नहीं बहा है। और आप हैरान हो जाएंगे कि आदमी के जीवन में जितना दुख, जितनी पीड़ा इनके कारण पैदा हुई है और किसी के कारण पैदा नहीं हुई है। और आदमी-आदमी के बीच जो प्रेम हो सकता था, वह असंभव हो गया है, क्योंकि आदमी-आदमी के बीच चर्च और मंदिर बड़ी मजबूत दीवाल की तरह आ जाते हैं। और क्या कभी हम सोचते है, कि जो दीवालें आदमी को आदमी से अलग कर

देती हों, वे दीवालें आदमी को परमात्मा से मिलाने का सेतु बन सकते हैं, मार्ग बन सकती हैं? जो आदमी को ही आदमी से नहीं मिला पातीं, वह आदमी को परमात्मा से कैसे मिला पाएंगे?
नहीं, यह मस्जिद और मंदिर कोई भी परमात्मा के मंदिर नहीं हैं। परमात्मा का मंदिर तो तब सब जगह मौजूद है, क्योंकि जहां परमात्मा मौजूद है, वहां उसका मंदिर भी मौजूद है। आकाश के तारों में और जमीन के आस-पास में और वृक्षों में, और मनुष्य की और पशुओं की आंखों में और सब तरफ और सब जगह कौन मौजूद है? किसका मंदिर मौजूद है? इतने बड़े मंदिर को, इतने विराट मंदिर को जो नहीं देख पाते, वे छोटे-छोटे मंदिर में उसे देख पाएंगे? खुद उसके ही बनाए हुए भवन में जो उसे नहीं खोज पाते, वे क्या आदमी के द्वार बनाई गई ईंट चूने के मकानों में उसे खोज पाएंगे? जिनकी आंखें इतने बड़े को भी नहीं देख पातीं, जो इतने ओबियस है, जो इतना प्रकट है और चारों तरफ मौजूद है, चेतना के इस सागर को भी जिनका जीवन स्पर्श नहीं कर पाता, वह आदमी के बनाए हुए ईंटों की दीवालों, कारागृहों में, बंद मूर्तियों में उसे खोज पाएगा? नासमझी है, निपट नासमझी है। जो इतने विराट मंदिर में नहीं देख पाता, वह उसे और कहीं भी देखने में समर्थ नहीं हो सकता।
लेकिन, यह हमने खड़े किए, और हमने दावा किया कि यह परमात्मा के मंदिर हैं। और हमने लोगों से कहा, विश्वास करो, और हमने दावा किया कि आदमियों की लिखी हुई किताबें परमात्मा के वचन है, और हमने लोगों को कहा, विश्वास करो, और हमने जो भी ठीक समझा, वह कहा, और लोगों से कहा विश्वास करो असंदिग्ध, संदेह करना। संदेह भटका देता है संदेह भ्रम में ले जाएगा। संदेह का परिणाम नर्क होगा। हमने भयभीत किया मनुष्य को, डर दिखलाया दंड का। प्रलोभन दिखलाया स्वर्ग का कि मान लोगे तो स्वर्ग है, न मानोगे तो नरक है और ऐसे, हमने मनुष्य के लोभ और भय को उत्प्रेरित किया और हजार-हजार वर्षों से एक शिक्षा ही दी, विश्वास कर लेने की। और विश्वास में फिर हम बड़े होते गए, और परिणाम यह है, कितने लोग हैं, जिन्हें जीवन में परमात्मा की किरण बोध हो पाता है!
पांच हजार या दस हजार साल विश्वास की शिक्षा कितने लोगों को ईश्वर के निकट ले गई? कहां हैं वे लोग? वे तो खोजे से भी दिखाई नहीं पड़ते। क्या दस हजार साल का यह परीक्षण, काफी लंबा परीक्षण नहीं हो गया? क्या यह काफी मौका नहीं था कि विश्वास के द्वार जीवन बदल जाता? और अगर दस हजार वर्षों में यह नहीं हुआ तो यह कब होगा?
मैं आपसे निवेदन करूंगा, विश्वास असफल हो गया हो, पूरी तरह असफल हो गया है। बहुत समय हम दे चुके उसके लिए। उससे कुछ भी नहीं हुआ है, सिवाय इसके कि आदमी और अंधा हुआ हो, आदमी और नीचे गिरा हो, आदमी ने और आत्म बल खो दिया हो। आदमी के जीवन में कोई आनंद की लहर न तो पैदा हुई, न कोई अमृत का दर्शन हुआ, न किसी परमात्मा की सन्निधि मिली।
मैं निवेदन करना चाहता हूं, विश्वास पिंजड़े का सीखचा है। क्योंकि जब
भी हम किसी बिना जाने किसी बात को मान लेते हैं तो हम अपने को अंधा करने को तैयार होते हैं। जब भी हम बिना अनुभव किए किसी बात को स्वीकार कर लेते हैं, तब हम अपने भीतर जो विवेक की ऊर्जा थी, उसकी हत्या कर देते हैं, और यह सवाल नहीं है कि हम क्या मानने को राजी हो जाए। अगर हिंदुस्तान में आप पैदा हुए हैं तो आप मान लेंगे कि ईश्वर है और असर रूस में, पैदा हुए हैं तो वहां का कम्युनिस्ट धर्म लोगों को समझाता है, ईश्वर नहीं है। वहां का बच्चा इसको मान लेता है। तो वह भी कहते है, विश्वास करो। हम कहते है गीता पर, वे कहते हैं दास कैपिटल पर। लेकिन विश्वास के मामले में उनका भी कोई झगड़ा नहीं है। यह कम्युनिज्म सब से नया धर्म है। और यह, चाहे रूस में विश्वास दिलाया जाए कि ईश्वर नहीं है, चाहे भारत में कि ईश्वर है, लेकिन दोनों ही बातों को जो लोग स्वीकार कर लेते हैं, वे लोग अपने जीवन में कभी सत्य की खोज नहीं कर सकेंगे।
सत्य की खोज के लिए पहली जरूरत है कि जो मैं नहीं जानता हूं, जो मेरा अनुभव नहीं है, जो मेरी प्रतीति नहीं है, उसे मैं स्पष्ट रूप से कह सकूं कि मैं नहीं जानता हूं। मैं कह सकूं कि मुझे पता नहीं है। मैं अपने अज्ञान को

स्वीकार कर सकूं। सत्य के खोजी की पहली शर्त, पहला लक्षण है अपने अज्ञान का स्वीकार, लेकिन विश्वासी अज्ञान को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानने को राजी नहीं होता कि मैं नहीं जानता हूं। उसे तो दूसरे लोग जो सिखाते हैं, वह मान लेता है कि यह मेरा जानना है अगर मैं आपसे पूछूं, आप ईश्वर को जानते हैं? और आपके भीतर से कोई कहेगा, हां, ईश्वर है। नहीं तो दुनिया। किसने बनाई? यह बातें सिखाई हुई हैं। यह दलीलें सुनी हुई है और इनको हम पकड़ कर बैठ गए। तो हम रुक गए है, हमारी खोज बंद हो गई है। हमने आगे जाने की फिर कोशिश नहीं की।
विश्वास कभी भी आगे नहीं ले जाता, संदेह आगे ले जाता।
क्योंकि संदेह से पैदा होती है जिज्ञासा, इनक्वायरी और इनक्वायरी गति देती है--प्राणों को--नये-नये द्वार खोलने की, नये-नये मार्ग छान लेने की, दूर-दूर, कोनों-कोनों तक खोज बीन कर लेने की कि कहीं कुछ हो, मैं उसे जान लूं। जो जानना चाहता है धर्म को परमात्मा को, प्रभु को या सत्य को, उसे अपने अज्ञान की स्वीकार कर लेने के लिए तैयार होना चाहिए। लेकिन हम तो झूठे ज्ञान को मान लेने को तैयार है। और फिर उस ज्ञान में, उस विश्वास में यह भ्रम पैदा हो जाता है हमारे भीतर कि हम जानते हैं। और जिसको हम जानते हज, उससे हमारा संबंध समाप्त हो जाता है। क्योंकि उसके प्रति फिर हमारी कोई जिज्ञासा नहीं, कोई खोज नहीं उसके प्रति हमारे भीतर कोई ऊहापोह नहीं, कोई चिंतन नहीं। फिर हमारा बंद हो गया मन वहां, और हमारे भीतर, जो विचार की बड़ी ऊर्जा थी कुंठित पड़ी रह जाएगी।
स्मरण रखें, विचार तो प्रत्येक का जन्मजात हिस्सा है। विश्वास? विश्वास सिखाए जाते हैं। विश्वास लेकर कोई पैदा नहीं होता। बिलिफ्स लेकर कोई पैदा नहीं होता। सब विश्वास सिखाए जाते हैं, लेकिन विचार लेकर हर एक पैदा होता है। विचार परमात्मा से मिलता है, विश्वास धर्म पुरोहित से विश्वास मिलते हैं समाज के अगुओं से, समाज के न्यस्त स्वार्थ शोषकों से, समाज के ढांचे कायम रखने वाले लोगों से।
और विचार? विचारक प्रत्येक की आत्मा की अपनी शक्ति है। जो विचार से चलेगा, वह तो पहुंच सकता है। जो विश्वास पर रुक जाता है, उसका पहुंचना असंभव है।
पहला सींखचा है हमारे बंधन का, वह श्रद्धा।
नहीं, श्रद्धा नहीं चाहिए। चाहिए, सम्यक संदेह, राइट डाउट। चाहिए स्वस्थ संदेह। इन मुल्कों मग हम देखें, जहां श्रद्धा का प्रभाव रहा, वहां विज्ञान का जन्म नहीं हो सका। आगे भी नहीं हो सकेगा, क्योंकि जहां श्रद्धा बलवती है, वहां खोज ही पैदा नहीं होती। जिन मुल्कों में विज्ञान का जन्म हुआ, वह तभी हो सका, जब श्रद्धा के सिंहासन पर संदेह विराजमान हो गया। आज भी जो कौमें विज्ञान की दृष्टि से पिछड़ी हैं, वे ही कौमें हज, जिनका विश्वास पर आग्रह है। और न केवल विज्ञान के लिए यह बात सच है, धर्म के लिए भी उतनी ही सच है, क्योंकि धर्म तो परम विज्ञान है, वह तो सुप्रीम साइंस है।
वैज्ञानिक तो फिर भी हाइपोथीसिस को मान कर चलता है, थोड़ा बहुत। एक अनुमान स्वीकार करता है, एक परिकल्पना स्वीकार करता है। लेकिन धर्म को खोजी परिकल्पना को भी स्वीकार नहीं करता। कुछ भी स्वीकार नहीं करता। निपट, सहज जिज्ञासा को लेकर गतिमान होता है। प्रश्न तो उसके पास होते हैं, उत्तर उसके पास नहीं होते। पूछता है जीवन से। खोजता है, बाहर और भीतर और बिना कुछ स्वीकार किए खोजता चला जाता है, खोजता चला जाता है, जब स्वीकार नहीं करता है तो उसकी खोज की मेधा तीव्रतर होती चलती जाती है, इंटेंस से इंटेंस होती चली जाती है। और एक दिन उसकी यह प्यास और खोज इतनी गहनतम, इतनी चरम तीव्रता को उपलब्ध हो जाती है कि उसी चरम तीव्रता में, उसी चरम तीव्रता के उत्ताप में एक द्वार खुल जाता है और वह जानने में समर्थ होता है।
जिज्ञासा चाहिए, विश्वास नहीं।
और विश्वास हमारा पहला बंधन है, जो हमें चारों तरफ से बांधे हुए हैं।
ठीक उसके साथ ही बंधा हुआ दूसरा बंधन है, जिसने हमारा कारागृह बनाया और वह

है अनुगमन, फालोइंग, किसी दूसरे के पीछे चलना। किसी को मान लेना विश्वास से किसी के पीछे चलना अंधानुकरण है। और इधर हजारों वर्षों से में यह सिखाया जाता रहा है कि दूसरों के पीछे चलो, दूसरे जैसे बनो--राम जैसे बनो, कृष्ण जैसे बनो, बुद्धि जैसे बनो। और अगर पुराने नाम फीके पड़ गए हैं तो हमेशा नये नाम मिल जाते हैं कि गांधी जैसे बनो, विवेकानंद जैसे बनो। लेकिन आज तक किसी ने नहीं कहा कि हम अपने जैसे बनें।
किसी दूसरे जैसा कोई क्यों बने? और क्या यह संभव है कि कोई किसी दूसरे जैसा बन सके। क्या यह आज तक कभी संभव हुआ है कि दूसरा राम पैदा हो? कि दूसरा बुद्ध, कि दूसरा क्राइस्ट। क्या तीन चार हजार वर्ष की नासमझी भी हमें दिखाई नहीं पड़ती? क्राइस्ट को हुए दो हजार साल हो गए, और कितने पागलों ने यह कोशिश नहीं की कि वह क्राइस्ट जैसे बन जाएं। लेकिन क्या कोई दूसरा क्राइस्ट बन सका? नहीं बन सका। क्या इससे कुछ बाप स्पष्ट नहीं होती है? क्या यह स्पष्ट नहीं होता कि हर मनुष्य एक अद्वितीय, यूनीक व्यक्तित्व है? कोई मनुष्य किसी दूसरे जैसा बनने को पैदा भी नहीं हुआ?
परमात्मा के घर कोई कारखाना नहीं है फोर्ड जैसा कि एक सी कारें निकालता चला जाए। परमात्मा कोई कारखाना नहीं है, कोई ढांचा नहीं है। शायद परमात्मा एक कवि है, शायद एक चित्रकार है जो नये चित्र बनाता है, रोज नई कविता लिखता है। शायद इतना जीवंत है उसका उत्पादन, उसका सृजन कि वह रोज नई प्रतिमाएं गढ़ लेता है। पुरानी प्रतिमाओं पर लौटने योग्य अभी तक उसकी नहीं आई। अभी भी नये के सृजन की क्षमता उसकी मौजूद है, इसलिए रोज नया-नया। हर व्यक्ति नया है, और अलग, और पृथक। और जिस दिन यह संभव होगा जमीन कि सारे व्यक्ति एक जैसे हो जाएं, उस दिन आदमी नहीं होगा जमीन पर, मशीनें होंगी। उस दिन से ज्यादा दुर्भाग्य का कोई दिन न होगा।
तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि अंधानुकरण, किसी दूसरे जैसे बनने
की कोशिश में आदमी बहुत गहरे बंधन में पड़ता है। और बंधन में इसलिए पड़ता है कि दूसरे जैसा तो वह कभी बन ही नहीं सकता है, इसलिए कि असंभावना है, यह इंपोसिबिलिटी है। लेकिन इस कोशिश में, अभिनय कर सकता है दूसरे जैसा। उसकी आत्मा अलग हो जाती है, अभिनय अलग हो जाता है। राम तो बन नहीं सकता है कोई, लेकिन रामलीला का राम बन सता है। राम लीला का राम बिल्कुल झूठा आदमी है। ऐसे आदमी की जमीन पर कोई भी जरूरत नहीं है। राम लीला का राम एक अभिनय है, एक एक्टिंग है। ऊपर से हम कुछ ओढ़ ले सकते हैं, भीतर आत्मा होगी पृथक, यह ओढ़े हुए वस्त्र होंगे अलग। इन दोनों के बीच एक द्वंद्व होगा, एक कांफ्लिक्ट होगी, एक सतत कलह होगी, और अभिनय कभी भी आनंद नहीं ला सकता। देखने वालों को लाता हो, यह दूसरी बात है, लेकिन जो अभिनय कर रहा है, वह निरंतर यह पीड़ा अनुभव करता है कि मैं किसी और जगह खड़ा हूं, मैं अपनी जगह नहीं हूं। मैं कोई और हूं, मैं वही नहीं हूं, जो हूं। वैसा आदमी कभी आत्म स्थित नहीं हो पाता, क्योंकि वह निरंतर दूसरे के अभिनय में व्यस्त होता है।
यह भी हो सकता है कि कोई राम का अभिनय इतनी कुशलता से करे कि खुद राम
भी मुसीबत में पड़ जाए, यह हो सकता है। क्योंकि अभिनेता को भूल चूक नहीं करनी पड़ती है, उसका सब पार्ट रटा हुआ तैयार होता है। खुद राम से भूल चूक हो सकती है, क्योंकि पाठ तैयार नहीं है, पहले सब सिखाया हुआ नहीं है। जिंदगी रोज सामने आती है। असली आदमी भूल-चूक कर सकता है, नकली आदमी कभी भूल-चूक नहीं कर सकता इसलिए जो आदमी कभी भूल चूक न करता हो, समझ लेना, उस आदमी में कुछ नकली मौजूद है। वह किसी ढांचे में ढला हुआ आदमी है, जिंदा नहीं है। जिंदगी में भूल-चूकें हैं। यह हो सकता है, रामलीला का अभिनय किसी ने बीस बार किया हो, राम को विचारों को एक ही बार मौका मिला है, बीस बार मौका नहीं मिला। यह हर बार ज्यादा कुशल होता चला जाएगा और ऐसा भी हो सकता है, एक दिन अगर असली राम के सामने उसे खड़ा कर दें, तो जनता उस नकली को पूजे, असली को छोड़ दे। अक्सर ऐसा होता है। क्योंकि यह होगा बहुत कुशल। इसकी एफिशिएंसी, इसकी कुशलता का मुकाबला राम नहीं कर सकते।
ऐसा एक दफा हुआ, ऐसी एक घटना घटी। चार्ली चैप्लिन को उसके जन्म दिन पर,
एक विशेष जन्म-दिन पर, पचासवी वर्षगांठ पर, कुछ मित्रों ने चाहा कि एक अभिनय हो। सारी दुनिया से कुछ अभिनेता आए और चार्ली चेप्लिन का अभिनय

करें और उनमें जो प्रथम आ जाए, ऐसे तीन लोगों को पुरस्कार इंग्लैंड की महारानी दे। सारे यूरोप में प्रतियोगिता हुई। सौ प्रतियोगी चुने गए। चार्ली चैप्लिन ने मन में सोचा, मैं भी किसी दूसरे गांव से जाकर, मैं भी क्यों न सम्मिलित हो जाऊं। मुझे तो प्रथम पुरस्कार मिल ही जाना है। इसमें में कोई शक सुबह की बात नहीं। मैं खुद चार्ली चैप्लिन हूं। और जब बात खुलेगी तो लोग हंसेंगे, एक मजाक हो जाएगी। मजाक हुई जरूर, लेकिन दूसरे कारण से हुई। चार्ली चैप्लिन को द्वितीय पुरस्कार मिला। और जब बात खुली कि खुद चार्ली चैप्लिन भी उन सौ अभिनेताओं में सम्मिलत था तो सारी दुनिया हंसी और हैरान हो गई कि यह कैसे हुआ? एक दूसरा आदमी बाजी ले गया चार्ली चेप्लिन होने की प्रतियोगिता में और चार्ली खुद नंबर दो रह गए।
तो हो सकता है, राम हार जाएं। महावीर के साधुओं से महावीर हार जाएं, बुद्ध के भिक्षुओं से बुद्ध हार जाएं, क्राइस्ट के पादरियों से क्राइस्ट हार जाएं। इसमें कोई हैरानी नहीं। लेकिन यह जानना चाहिए कि चाहे कोई कितना ही कुशल अभिनय करे, उसके जीवन में सुवास नहीं हो सकती, वह कागज का ही फूल होगा। वह असली फूल नहीं हो सकता। और इस चेष्टा से कि वह दूसरे का अंधानुकरण करे, वह एक बहुमूल्य अवसर खो देगा जो स्वयं की निजता को पाने का था। ऐसी ही हो जाएगी बात।
आपकी बगिया में मैं जाऊं और आपके फूलों को समझाऊं गुलाब को कहूं कि तू कमल हो जा, चमेली को कहूं, तू चंपा हो जा। पहली तो बात है, फूल मेरी बात सुनेंगे नहीं, क्योंकि फूल आदमियों जैसे नासमझ नहीं कि हर किसी की बात सुनें। कोई उपदेशक वगैरह उनके बीच नहीं होता। पर हो सकता है, आदमियों के साथ रहते-रहते कुछ फूल बिगड़ गए हों। आदमी के साथ रहकर कोई भी बिगड़ सकता है। जानवर जो जंगल में रहते हैं उनको बीमारियां नहीं होती, आदमी के साथ रहने लगते हैं, उन्हीं बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं। फिर आदमी की नकल में वेटनेरी डाक्टर को भी हमें तैयार करना पड़ता है। हो सकता है, आपके साथ रहते- रहते बगिया के फूल की आदत बिगड़ गई हो, वे सुनने को राजी हो जाए और उपदेश उन पर काम कर जाए। सीधे सादे फूल हैं, हो सकता है, मान लें, और गुलाब कमल होने की कोशिश करने लगे, और चंपा चमेली होने की। फिर क्या होगा?
उस बगिया में फिर फूल पैदा नहीं होंगे। एक बात तय है, और कुछ भी हो, उस बगिया में फिर फूल पैदा नहीं होंगे। क्योंकि गुलाब के भीतर कमल कोने का कोई व्यक्तित्व नहीं। लाख कोशिश करे वह कमल नहीं हो सकता। लेकिन कमल होने की कोशिश में ताकत व्यय हो जाएगी और गुलाब भी नहीं हो सकेगा। गुलाब का फूल भी उसमें पैदा नहीं होगा।
आदमी की बगिया ऐसी ही वीरान हो गई है। सोचें कभी अगर हम बीस पच्चीस लोगों के नाम दुनिया से अलग कर दे, तो आदमी के दस हजार वर्षों में कितने फूल लगे हैं? बुद्ध का महावीर को, कृष्ण को, क्राइस्ट को, लाओत्सु को, कनफ्यूशियस को छोड़ दें। बीस नाम अलग कर दें, मनुष्य-जाति के दस हजार साल में, तो बाकी किन आदमियों के जीवन में फूल लगे हैं? और क्या यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण नहीं है कि अरबों लोग पैदा हों, एक दो आदमी के जीवन में फूल आए और बाकी लोग बिना फूल के बांझ रह जाए?
कौन है इसके लिए जिम्मेवार? मेरी दृष्टि में, अनुकरण इसके लिए किया? क्राइस्ट किसकी कार्बनकापी बनना चाहे थे? क्या कहीं उल्लेख है कि कृष्ण ने किसी का अनुकरण किया हो? क्या कहीं यह लिखा है किसी किताब में और किसी धर्मग्रंथ में कि बुद्ध किसी के पीछे चले हो। नहीं, वे ही थोड़े से लोग इस जमीन पर सुगंध को उपलब्ध हुए जो अपनी निजता की खोज किए किसी के पीछे नहीं गए। लेकिन हम अजीब पागल हैं। हम उन्हीं लोगों के पीछे जा रहे हैं, जो किसी के पीछे कभी नहीं गए। और जब तक हम किसी का अनुसरण करने की कोशिश करेंगे तब तक हमारे व्यक्तित्व में वह मुक्ति, वह स्वतंत्रता पैदा नहीं हो सकती। दूसरे का अनुकरण गहरी से गहरी परतंत्रता है।
मैं बांधता हूं फिर अपने को। दूसरा हो जाता है मेरे लिए आदर्श और उसके अनुकूल मैं अपने को बांधने लगता हूं, फांसने लगता हूं। फिर एक पिंजड़ा हो जाता है और उस पिंजड़े के सीखचों को पकड़ कर मैं चिल्लाता हूं, स्वतंत्रता।
तो बहुत हंसी जैसी बात हो जाती है।

न तो चाहिए मनुष्य में विश्वास और न चाहिए मनुष्य में अंधानुकरण। चाहिए मनुष्य में विचार मनुष्य में निजता की खोज। सवाल बुद्ध और महावीर होने का नहीं है, सवाल जो भी आप है, उसके पूरी तरह खिल जाने का है। और जिस दिन आप पूरी तरह खिलते हैं, उसी दिन आपके जीवन में धर्म का अनुभव शुरू होता है। उसके पहले नहीं। पंगु और कुंठित व्यक्ति, जीवन के सत्य से कोई संपर्क नहीं साध सकता। परिपूर्ण स्वस्थ और खिले हुए फूल की भांति व्यक्तित्व, जो अपने सारे प्राणों को विकसित कर सके, तब जीवन के चारों तरफ के संदेह उसे मिलने उपलब्ध हो जाते हैं।
मैं यह अंत मैं निवेदन करूंगा कि मनुष्य के बंधन, गहरे अर्थों में दो हैं--विश्वास के और अनुकरण के। जो व्यक्ति इन बंधनों से अपने को मुक्त कर लेता है, वह कदम रख रहा है। सत्य की तरफ, वह धार्मिक होने की तरफ कदम रख रहा है। उसके भीतर धार्मिक चित्त पैदा हो गया है। धार्मिक चित्त वह नहीं है, जो किन्हीं मंदिरों में जाकर सिर टेकता हो, किन्हीं शास्त्रों को लेकर सिर पर घूमता हो। नहीं, धार्मिक चित्त वह है जो अपने आसपास अपनी चेतना पर, किसी तरह के बंधनों को, किसी तरह पोषण नहीं देता, सब तरह के बंधनों को शिथिल करता है, तोड़ता है और तक चेतना के भीतर जो छिपा है, उसके प्रकट होने का द्वार खोजता है।
यह मैंने थोड़ी सी बातें आपसे कहीं। यह बातें बिल्कुल नकारात्मक हैं, निगेटिव हैं। लेकिन कोई माली बगीचा बताना चाहे तो पहले पुराने पौधों को निकाल अलग कर देता है, घास पात उखाड़ देता है, जड़ें निकाल कर बाहर फेंक देता है, पत्थर, कंकड़ अलग कर देता है, ताकि भूमि तैयार हो जाए, ताकि फिर नये बीज बोए जा सकें। तो मेरी इस पहली चर्चा में, कुछ चीजों को मैंने तोड़-फोड़ करने की कोशिश की है, उसे अलग कर देने की, ताकि आप तैयार हो सकें उन बातों के लिए, जिन्हें मैं बीज कहता हूं और जो अगर भीतर पहुंचें तो उनसे आपके जीवन में एक अनुकरण हो सकता है, एक पल्लव हो सकता है। कुछ आ सकती है सुवास। हर आदमी पैदा हुआ है एक फूल बन सके, एक सुवास उसके जीवन में आ सके। और जो आदमी बिना ऐसा बने विदा हो जाता है, उसके जीवन में कोई धन्यता, कोई कृतार्थता नहीं होती।
धन्य हैं वे थोड़े से लोग ही, जो जीवन के इस अवसर को सरिता की भांति, सागर तक दौड़ने का अवसर बना लेते हैं। धन्य हैं वे लोग, जो सरिता की भांति, सागर को उपलब्ध हो जाते हैं। जीवन की इस परिपूर्णता का आनंद, जीवन के इस अमृत का बोध केवल उन्हीं को उपलब्ध हो पाता है। यह हम सब का जन्म सिद्ध अधिकार है, अगर हम मांग करें तो। लेकिन अगर हम मांग भी न करें, या हम मांग भी करें, चिल्लाएं स्वतंत्रता, स्वतंत्रता और किन्हीं सींखचों को पकड़े रहें, तो कौन जिम्मेवार हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति ही अपने लिए जिम्मेवार है, अपने बंधन के लिए, अपने कारागृह के लिए। और जिस दिन सोचेगा, तोड़ सकेगा उस कारागृह को। एक अंतिम कहानी और मैं अपनी चर्चा को पूरी करूंगा।
रोम में एक बहुत अदभुत लोहार हुआ। उसकी बड़ी क्रांति थी, सारे जगत में। दूर-दूर के बाजारों तक उसका सामान पहुंचा उसने बहुत धन अर्जित किया। लेकिन जब वह अपनी प्रतिष्ठा के चरम शिखर पर था और रोम के सौ बड़े प्रतिष्ठित नागरिकों में उसकी स्थिति बन गई थी, तभी रोम पर हमला हुआ। दुश्मन ने रोम को रौंद डाला और सौ बड़े नागरिकों को गिरफ्तार कर लिया। उनके हाथ पैरों में बहुत मजबूत जंजीरें पहना दी गईं और उन्हें फिंकवा दिया गया जंगलों में, ताकि जंगली जानवर उन्हें खा जाए। वे जंजीरें बहुत मजबूत, बहुत वजनी थी। उसके रहते एक कदम चलना भी मुश्किल था, असंभव था। वे निन्यानबे लोग तो रो रहे थे छार-छार। उनके हृदय आंसुओं से भरे थे। उनके सामने मृत्यु के सिवाय कुछ भी नहीं था, लेकिन वह लोहार बहुत कुशल कारीगर था। वह हंस रहा था, वह निश्चिंत था। उसे खयाल था, कोई फिकर नहीं, कैसी ही जंजीरें हों, मैं खोल लूंगा। अपने बच्चों को, अपनी पत्नी को विदा देते वक्त उसने कहा, घबड़ाओ मत, सूरज डूबने के पहले मैं घर वापस आ जाऊंगा। पत्नी ने भी सोचा, बात ठीक ही है। वह इतना कुशल कारीगर था। जब उन सब को जंगलों में फिंकवा दिया गया, वह लोहार भी एक जंगली खड्डे में डाल दिया गया। गिरते ही उसने पहला काम किया,

अपनी जंजीरें उठा के देखीं कि कहीं कोई कमजोर कड़ी हो, लेकिन जंजीरों को देखते ही वह छाती पीट पीट कर रोने लगा। उसकी हमेशा से आदत थी, जो भी बनाता था, कहीं हस्ताक्षर कर देता था। जंजीरों पर उसके हस्ताक्षर थे। वह उसकी ही बनाई हुई जंजीरें हैं। उसने कभी सोचा थी न था कि जो जंजीरें मैं बना रहा हूं, वे एक दिन मेरे ही पैरों में पड़ेंगी और मैं ही बंदी हो जाऊंगा। अब वह रोने लगा। रोने लगा इसलिए कि अगर यह जंजीरें किसी और की बनाई हुई होती तो तोड़ भी सकता था। वह भली भांति जानता था, कमजोर चीजें बनाने की उसकी आदत नहीं, यही तो उसकी प्रतिष्ठा थी। जंजीरें उसकी बनाई हुई थीं। उन्हें तोड़ना मुश्किल था, वे कमजोर थी ही नहीं।
उस कुशल कारीगर को जो मुसीबत अनुभव हुई होगी, हर आदमी को, जिस दिन वह जागकर देखता है, ऐसी ही मुसीबत अनुभव होगी। तब वह पाता है, हर जंजीर पर मेरे हस्ताक्षर हैं और हर जंजीर मैंने इतनी मजबूती से बनाई है, क्योंकि मैंने तो इसे स्वतंत्रता सोच कर बनाया था, कभी सोचा भी न था कि यह जंजीर है। तो स्वतंत्रता को खूब मजबूती से बनाया था। मैंने इसे धर्म समझा था, खूब मजबूती से तैयार किया था। मैंने इसे मंदिर समझा था, मैंने कभी सोचा भी न था कि यह कारागृह है। तो खूब मजबूत बनाया था। उस लोहार की जो हालत हो गई, वह करीब-करीब हर आदमी को अनुभव होती है, जो जागकर अपनी जंजीरों की तरफ देखता है। लेकिन, वह लोहार सांझ को घर पहुंच गया। वह कैसे पहुंचा, वह मैं रात आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, इसलिए बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को अंत में प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन की कला
चौथा प्रवचन

आकाश का आनंद

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैं अत्यंत आनंदित हूं, लायंस इंटरनेशल के इस सम्मेलन में कि शांति
के संबंध में थोड़ी सी बातें आपसे कर सकूंगा। इसके पहले कि मैं अपने विचार आपके सामने रखूं, एक छोटी सी घटना मुझे स्मरण आती है, उसे से मैं शुरू करूंगा।
मनुष्य-जाति के अत्यंत प्राथमिक क्षणों की बात है। अदम और ईव को स्वर्ग के बगीचे से बाहर निकाला जा रहा था। दरवाजे से अपमानित होकर निकलते हुए अदम ने ईव से कहा, तुम बड़े संकट से गुजर रहे हैं। यह पहली बात थी, जो दो मनुष्यों के बीच संसार में हुई, लेकिन पहली बात यह थी कि हम बड़े संकट से गुजरे रहे हैं। और तब से अब तक कोई बीस लाख वर्ष हुए, मनुष्य-जाति और बड़े और बड़े संकटों से गुजरती रही है। यह वचन सदा के लिए सत्य हो गया। ऐसा कोई समय न रहा, जब हम संकट में न रहे हों, और संकट रोज बढ़ते चले गए हैं। एक दिन अदम को स्वर्ग के राज्य से निकाला गया था, धीरे-धीरे हम कब नर्क के राज्य में प्रविष्ट हो गए, उसका भी पता लगाना कठिन है।
आज तो यह कहा जा सकता है, इधर तीन हजार वर्षों का इतिहास ज्ञात है। तीन हजार वर्षों में साढ़े चार हजार युद्ध हुए हैं। यह घबड़ाने वाली और आश्चर्य कर देने वाली बात है। तीन हजार वर्षों में मनुष्य ने साढ़े चार हजार लड़ाइयां लड़ी हों तो यह तो जीवन शांति का जीवन नहीं कहा जा सकता। अब तक हमने कोई शांति काल नहीं जाना है। दो तरह के हिस्सों में हम मनुष्य के इतिहास को बांट सकते हैं--युद्ध का समय, और युद्ध के लिए तैयारी का समय। शांति का कोई समय, कोई खंड अभी तक ज्ञात नहीं है। निश्चित ही, कोई बहुत गहरी विक्षिप्तता, कोई बहुत गहरा पागलपन मनुष्य को पकड़े होगा। कोई रास्ता अब खोज लेना जरूरी है। पुरानी लड़ाइयां बहुत छोटी लड़ाइयां थीं और उनके बाद भी हम बचते चले आए हैं। लेकिन अब शायद जो युद्ध होगा, उसमें मनुष्य को बचने का भी। कोई उपाय न हो।
अलबर्ट आइंस्टीन से मरने के पहले किसी ने पूछा, तीसरा महायुद्ध में किन शास्त्रों का उपयोग होगा? आइंस्टीन ने कहाः तीसरे के प्रति कहना कठिन है, लेकिन चौथे के संबंध में कहा जा सकता है। सुनने वाला, पूछने वाला हैरान हुआ। उसने पूछा चौथे में किन शास्त्रों का उपयोग होगा? अगर मनुष्य बचा रहा--क्योंकि बचने की कोई संभावना नहीं है, अगर बचा रहा, तो फिर से पत्थर के हथियारों से लड़ाई शुरू करनी पड़ेगी। चूंकि तीसरा महायुद्ध, बहुत संभावना इस बात की है कि सारी मनुष्य-जाति को ही नहीं, बल्कि समस्त जीवन मात्र को समाप्त कर दे।
पिछले महायुद्ध में पांच करोड़ लोगों की हत्या हुई। पांच करोड़ लोग छोटी संख्या नहीं है। दोनों पिछले युद्धों में मिला कर दस करोड़ लोग मारे गए। शायद हमें खयाल भी नहीं है कि इन दस करोड़ लोगों की हत्या करने में हमारा भी हाथ है। हम जो यहां बैठे हैं, हम जिम्मेवार है। कोई भी मनुष्य इस जिम्मेवारी और उत्तरदायित्व से बच नहीं सकता। जो भी जमीन पर हो रहा है, उस सब में हमारे हाथ हैं। दो महायुद्ध हमारे भीतर से पैदा हुए और हमने इतनी बड़ी हत्या की। और अब तो हमारी तैयारी बहुत बड़ी है। मैं उस तैयारी के संबंध में भी दो शब्द कहना चाहूंगा।
उन्नीस सौ पैंतालीस में हिरोशिमा और नागासाकी पर जो अणु बम गिराए गए,
वे बहुत घातक थे। एक लाख के करीब लोग उन अणु बमों के गिराने से नष्ट हुए। इधर बीस वर्षों में बहुत विकास हुआ है और हिरोशिमा पर जो बम गिराया गया था, बच्चों के खिलौनों से ज्यादा नहीं है, अब। अब हमारे पास उससे बहुत शक्तिशाली बम हैं। ऐसे उदजन बम कोई चालीस हजार वर्ग मील घेरे के समस्त जीवन को नष्ट कर सकता है। और ऐसे उदजन बमों की संख्या हमारे पास में उन्नीस सौ साठ में पचास हजार थी। निश्चित ही छह वर्षों में यह संख्या और बहुत ज्यादा बढ़ गई होगी, हम रुके नहीं हैं।

पचास हजार उदजन बम क्या अर्थ रखते हैं, शायद आपको खयाल न हो। यह जमीन बहुत बड़ी है। पचास हजार उदजन बमों को नष्ट करने के लिए यह जमीन बहुत छोटी है। इस तरह की सात जमीनें हों तो पचास हजार उदजन बम उन्हें नष्ट कर सकेंगे। अभी आदमी की संख्या कोई तीन अरब है। इक्कीस अरब आदमियों को मारने के लिए हमारे पास व्यवस्था है। यह थोड़े हैरानी की बात है कि इतनी बड़ी व्यवस्था से हम क्या करेंगे। शायद यह डर हो कि कोई आदमी मरने से बच जाए तो उसे दुबारा मारा जा सके, तीसरी बार मारा जा सके या सात बार मारा जा सके। हालांकि भगवान का कुछ ऐसा इंतजाम है कि एक आदमी एक ही बार में मर जाता है, लेकिन फिर भी सात बार मरने का हमने इंतजाम कर रखा है कि कोई बच जाए, कोई अपवाद हो जाए तो व्यवस्था पूरी होनी जरूरी है। यह पचास हजार उदजन बस किसी भी दिन, किसी भी एक पागल राजनीतिज्ञ के दिमाग में खराबी आ जाने से खतरा बन सकते हैं। कोई एक आदमी का दिमाग खराब हो जाए तो सारी मनुष्य जाति नष्ट हो सकती है। और जैसे हमारे दिमाग हैं, हम करीब-करीब वैसे ही पागल हैं, इसलिए पागल होने की कोई बहुत ज्यादा जरूरत नहीं है।
आम आदमी इतना अशांत है, इतना दुखी है, इतना परेशान है कि उसके द्वार बहुत डर है कि वह कभी भी युद्ध के खतरे को मोल ले सकता है। हम छोटी-छोटी बात पर लड़ने को तैयार हो जाते हैं, बहुत छोटी-छोटी बात पर लड़ने को तैयार हो जाते हैं, बहुत छोटी-छोटी बातों पर, और हमारे भीतर से हमारा राजनीतिज्ञ भी पैदा होता है। उसकी बुद्धि भी हमसे ज्यादा बड़ी और हमसे श्रेष्ठ नहीं होती है। उसकी आत्मा भी हमसे ज्यादा विकसित नहीं होती है। अक्सर तो यह होता है, जो हमसे निम्नतम है, वे राजनीति में श्रेष्ठतम हो जाते हैं, और तब, तब खतरा और भी बढ़ जाता है। राजनीतिज्ञों के हाथ में दुनिया का होना एक ज्वालामुखी के ऊपर जैसे हम बैठे हों, ऐसी स्थिति में है।
क्या आपको पता है, ट्रूमैन की आज्ञा से हिरोशिमा और नागासाकी में एटम
बम गिरा। दूसरे दिन सुबह पत्रकारों ने ट्रूमैन से पूछाः आप रात को ठीक से सो सके? एक लाख आदमी मर गए थे, स्वाभाविक था कि ट्रूमैन की नींद रात में शराब हुई होती, लेकिन ट्रूमैन ने कहाः मैं बहुत आनंद से सोया। सच तो यह है, उसने कहाः इधर तीन चार वर्षों में इतनी शांति से मैं कभी नहीं सोया। एक लाख आदमियों को मार कर अगर हमारे राजनीतिज्ञ शांति से सो सकते हैं तो इन राजनीतिज्ञों के हाथ में दुनिया का होना शुभ नहीं कहा जा सकता। और राजनीतिज्ञ के हाथ में दुनिया हजारों वर्ष से है और राजनीति बिना युद्ध के न तो जी सकती है और न जी है।
जिस दिन दुनिया से युद्ध समाप्त होंगे, उस दिन राजनीति का भाव भी समाप्त हो जाएगा। इसलिए यह बहुत स्वाभाविक है कि राजनीतिज्ञ युद्ध को जारी रखे, युद्ध को बनाए रखे, उसे जिंदा रखे। इस संबंध में विचार करना इसलिए बहुत-बहुत आवश्यक हो गया है, क्योंकि पिछले दिनों में राजनीतिज्ञ युद्ध से जो नुकसान पहुंचा सकते थे, इतने बड़े नहीं थे, लेकिन अब तो वे पूरी मनुष्य-जाति को नष्ट कर सकते हैं।
एक छोटी सी कहानी कहूं और फिर अपनी चर्चा को शुरू करूं। यह कहानी मैंने मुल्क के कोने-कोने में कही हैं। एक बिल्कुल झूठी कहानी है।
एक बहुत बड़े महल के बाहर बड़ी भीड़ थी। भीतर कुछ हो रहा था, उसे जानने की सैकड़ों बड़ी भीड़ इकट्ठे थे। लेकिन वे साधारण जन नहीं थे। जो बाहर इकट्ठे थे, वे स्वर्ग के देवी और देवता थे और जो महल था वह खुद भगवान का महल था। भीतर वहां कोई बात चली थी, जिसको सुनने के लिए सारे लोग उत्सुक थे। उस बात पर बहुत कुछ निर्भर था। मैंने कहाः कहानी बिल्कुल झूठी है, फिर भी बहुत अर्थपूर्ण है। भीतर ईश्वर का दरबार लगा हुआ था। और तीन आदमी दरबार में खड़े थे। ईश्वर ने उन तीन आदमियों से पूछाः मैं बहुत हैरान हो गया हूं, मनुष्य को बना कर मैं बहुत परेशान हो गया हूं। मैंने सोचा था, मनुष्य को बना कर दुनिया में एक आनंद, एक शांति, एक संगीत पूर्ण विश्व का जन्म होगा। जमीन एक स्वर्ग बनेगी। लेकिन मनुष्य को बना कर भूल हो गई। जमीन एक स्वर्ग बनेगी। लेकिन मनुष्य को बना कर भूल हो गई। जमीन रोज नरक के करीब होती जा रही है और ऐसा वक्त आ सकता है, नर्क में जो लोग पाप करें, उन्हें हमें जमीन पर भेजना पड़े। इसलिए ईश्वर ने कहाः मैं बहुत परेशान हूं और तुम्हें इसलिए बुलाया

है कि मैं तुमसे पूछ सकूं कि क्या कोई उपाय मैं कर सकता हूं जिससे कि दुनिया ठीक हो जाए?
वे तीन लोग तीन बड़े देशों के प्रतिनिधि थे--अमरीका, रूस और ब्रिटेन के। अमरीका के प्रतिनिधि ने कहा, दुनिया अभी ठीक हो जाए। एक छोटी सी आकांक्षा हमारी पूरी कर दें। ईश्वर ने उत्सुकता से कहाः कौन सी आकांक्षा? अमरीका के प्रतिनिधि ने कहाः हे परमात्मा, जमीन तो रहे, लेकिन जमीन पर रूस का कोई निशान न रह जाए। इतनी सी आकांक्षा पूरी हो जाए, फिर और कोई तकलीफ नहीं, फिर और कोई कष्ट नहीं, फिर सब ठीक हो जाएगा और जैसा चाहा है दुनिया वैसी हो सकेगी।
ईश्वर ने बहुत वरदान दिए थे। ऐसे वरदान देने का उसे कोई मौका नहीं आया था। उसने रूस की तरफ देखा, रूस के प्रतिनिधि ने कहा कि महानुभाव, एक तो हम मानते नहीं कि आप हैं। उन्नीस सौ सत्रह के बाद हमने अपने मंदिरों और मस्जिदों और चर्चों से निकाल कर आपको बाहर कर दिया है। लेकिन हम पुनः आपकी पूजा शुरू कर देंगे और फिर आपके मंदिरों में दीये जलाएंगे और फूल चढ़ाएंगे। एक छोटी सी आकांक्षा अगर पूरी हो जाए तो वही प्रमाण होगा ईश्वर के होने का। ईश्वर ने कहाः कौन सी आकांक्षा? उसने कहा, हम चाहते हैं कि जमीन का नक्शा तो रहे, लेकिन अमरीका के लिए कोई रंग न रह जाए। ईश्वर ने हैरानी में और घबड़ा कर ब्रिटेन की तरफ देखा। ब्रिटेन के प्रतिनिधि ने कहा हे परम पिता, हमारी अपनी कोई आकांक्षा नहीं। इन दोनों की आकांक्षाएं एक साथ पूरी हो जाए तो हमारी आकांक्षा पूरी हो जाए।
यह तो बिल्कुल ही झूठी कहानी मैंने आपसे कहीं। लेकिन दुनिया की स्थिति करीब-करीब ऐसी हो गई है। सारी दुनिया के राजनीतिज्ञ एक दूसरे के विनाश के लिए उत्सुक हैं। सारे दुनिया में लोग एक दूसरे की हत्या के लिए तत्पर हैं। सारी दुनिया की शक्ति--इतनी बड़ी शक्ति जिससे हम जमीन को न मालूम क्या बना सकते थे! जिससे जमीन की सारी दरिद्रता मिट सकती थी, सारी अशिक्षा मिट सकती थी, सारे दुख और बीमारियां मिट सकते थे, जिससे मनुष्य एक अदभुत रूप से स्वस्थ, शांत और सुखी संसार का निर्माण कर सकता था। वह सारी शक्ति इस बात में लगी है कि हम एक दूसरे को कैसे नष्ट कर दें। वह सारी शक्ति इस बात में लगी है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की हत्या करने में कैसे समर्थ हो जाए। यह कहानी तो झूठी है, लेकिन यह कहानी करीब-करीब हमारी दुनिया के संबंध में सच हो रही है। हम सारे लोग विनाश के लिए तत्पर हैं। क्यों? इसका जिम्मा, इसका उत्तरदायित्व किस पर है? और यह सारे राजनीतिज्ञों शांति की बातें भी करते हैं। यह भी आपको पता होगा, दुनिया के सारे युद्ध शांति के नाम पर हुए हैं। इसलिए शांति संबंध में भी विचार करना बहुत जरूरी है।
शांति के लिए भी युद्ध हो सकता है। और जब भी कोई लड़ता है तो शांति के लिए ही लड़ता है। अच्छे नाम, बुरे कामों को करने का कारण बन जाते हैं। अच्छे नामों की ओट में दुनिया में बुरे से बुरे पाप, बुरे से बुरे काम हुए हैं। धर्मों की ओट में हत्याएं हुए हैं। शांति के नाम पर युद्ध हुए हैं। इसलिए राजनीतिज्ञ जब शांति की बातें करता हो तो बहुत विचार करना जरूरी है। हो सकता है, शांति की आवाजें उठा कर वह केवल युद्ध की तैयारियां करवाना चाहता हो। अंत में वह कहेगा अब तैयार हो जाओ, शांति के लिए लड़ना जरूरी है। शांति की रक्षा के लिए युद्ध आवश्यक हो गया है।
यह जो सारे राजनीति की भाषा में सोचने वाले लोग हैं, यदि मनुष्य इस भाषा से, इस वृत्ति से सचेत नहीं होता है तो युद्ध से नहीं बचा जा सकेगा। मेरी दृष्टि में कोई राजनीतिक उपाय स्थायी रूप से शांत विश्व को जन्म देने में असमर्थ है। इसलिए असमर्थ है कि राजनीति मूलतः आकांक्षा है, एम्बीशन है। जहां राजनीति है, वहां दूसरे से आगे निकलने की होड़ है। प्रतिद्वंद्विता है और जहां आगे निकलने की दौड़ है, वहां आज नहीं कल, युद्ध अवश्यंभावी है। जब एक राष्ट दूसरे राष्ट से आगे निकलना चाहे, एक राष्ट्र से ऊपर निकलना चाहे तो अंत में युद्ध आ जाना स्वाभाविक है।
पहले महायुद्ध में हेनरी फोर्ड कुछ मित्रों का एक जत्था लेकर युद्ध
की समाप्ति के लिए युरोप की तरफ आया। अमरीका से उसने एक जहाज लिया। कुछ

मित्र इकट्ठे किए जो शांतिवादी थे और उस जहाज में उनको लेकर वह यूरोप की तरफ गया, ताकि वहां शांति की बातें और खबर पहुंचायी जा सके शांति का मिशन लेकर वह आया। लेकिन हेनरी फोर्ड, जैसे ही जहाज शुरू हुआ, पछताने लगा मन में। उससे भूल कर ली थी। जिन लोगों को लेकर वह जहाज में चला था शांति के लिए, वे अब आपस में लड़ने लगे। उसमें कई कई तरह के राजनीतिज्ञ थे। उसमें एक तरह का शांतिवादी था, उसमें दूसरे तरह के शांतिवादी थे। उसमें प्रजातंत्रवादी थे, उसमें साम्यवादी थे। उसमें कैथोलिक थे, उसमें प्रोटेस्टेंट थे। उसमें इन आइडियालॉजी को मानने वाले थे, उस आइडियालॉजी को मानने वाले थे। वह जहाज जैसे ही बंदर से छूटा, वे आपस में लड़ने लगे। हेनरी फोर्ड मन में पछताया और उसने सोचा, इन लोगों को ले जाकर शांति की बात करनी असंभव है। जो आपस में लड़ते हो, वे शांति के लिए क्या कर सकेंगे।
हम सारे लोग, जो मनुष्य के भविष्य के लिए विचार करते हों और जिनके मन में यह खयाल आता हो कि जीवन को बचाना और सुरक्षित करना आवश्यक है, उन्हें कुछ बातों पर विचार करना होगा। सबसे पहली बात तो यह विचार करनी होगी कि हम जो व्यक्ति गत रूप से छोटी छोटी बातों में लड़ते हैं और संघर्ष करते हैं। कहीं वही संघर्ष, कहीं वही लड़ाई अंततः बड़े पैमाने पर राष्ट्रों का युद्ध तो नहीं बन जाती है? हम जो व्यक्तिगत रूप से करते हैं, छोटे-छोटे रूपों में वही इकट्ठे होकर बड़े पैमाने पर युद्ध बन जाता है। कोई राजनीतिक, कोई समाज सुधार मूलतः अंतर नहीं ला सकेगा, अगर व्यक्तियों के चित्त इस बात को समझने में समर्थ न हो जाए कि उनके भीतर जब तक द्वंद्व है, जब तक संघर्ष है, जब तक प्रतियोगिता है, एंबीशन है, महत्वाकांक्षा है, तब तक मनुष्य-जाति युद्ध से मुक्त नहीं हो सकती। इसलिए मैं मनुष्य के, सामान्य के भीतर, जो युद्ध के मूल कारण हैं, उसके संबंध में बात करूंगा और कैसे मनुष्य के चित्त में शांति स्थापित हो सकती है, जिसके द्वारा सारे संसार में शांति स्थापित हो सके, उसकी भी बात करूंगा।
मनुष्य के हृदय में युद्ध का मूल कारण क्या है? यह तो आपने अनुभव किया होगा कि विनाश में हम सबकी उत्सुकता है। रास्ते पर कोई आदमी किसी को छुरा मार दे तो हम हजार महत्वपूर्ण काम छोड़कर उसे देखने को खड़े हो जाते हैं। क्यों? रास्ते पर कोई लड़ रहा हो, हम हजार महत्वपूर्ण काम छोड़ कर उसे देखने को रुक जाते हैं। लोग सुबह से ही अखबार और रेडियो की प्रतीक्षा करते हैं और युद्ध के समाचार पढ़कर उनकी आंखों में चमक आ जाती है। जब युद्ध चलता है तो लोगों में बड़ा उत्साह और बड़ी ताजगी और बड़ी चहल-पहल और बड़ी गति मालूम होती है। उनमें बड़ी जिंदगी मालूम होती है। और जब युद्ध शांत हो जात है, लोग फिर बोझिल हो जाते हैं, फिर उदास हो जाते हैं, फिर ढीले मन चलने लगते हैं। क्या आपको यह पता है, जब पहला महायुद्ध हुआ, तो मनोवैज्ञानिक बहुत परेशान हुए। पहला महायुद्ध जितने दिनों तक चला उतने दिन तक युरोप में चोरियां कम हो गई, हत्याएं कम हो गई, आत्महत्याएं कम हो गई, लोग कम पागल हुए। हैरानी की बात है। मनोवैज्ञानिक समझ नहीं पाए कि इसका क्या कारण है? फिर महायुद्ध हुआ। तब तो और बड़े पैमाने पर यह हुआ। हत्याओं की संख्या एकदम कम हो गई आत्महत्याओं की संख्या कम हो गई। लोगों ने युद्ध के समय में पागल होना बंद कर दिया। कम। लोग पागल हुए। और क्यों? लोग इतने उत्साहित हो गए, लोग इतने आनंदित हो गए कि उन्हें हत्या करने की जरूरत नहीं पड़ी, आत्महत्या करने की जरूरत नहीं पड़ी। ऊब और बोर्डम कम हो गई। उदासी कम हो गई, लोग प्रफुल्लित थे।
युद्ध ऐसी क्या प्रफुल्लता लाता है? अगर युद्ध इतनी प्रफुल्लता लाता
है तो उसका अर्थ है, हमारे भीतर, हमारे मन में युद्ध की कहीं चाह होगी। हम कहीं चाहते होंगे। हमारे भीतर कहीं कोई आकांक्षा होगी, जिससे युद्ध पैदा होता है और अगर सतत युद्ध चलता रहे तो हम बहुत प्रसन्न हो जाएंगे। यह बात अपने खयाल से आप निकाल दें कि युद्ध से आप उदास हो जाते हैं। आप खुद विचार करें--अभी हिंदुस्तान में चीन और पाकिस्तान की लड़ाइयां चलीं, तो आप खयाल करें, आप ज्यादा प्रसन्न थे। आप ज्यादा प्रफुल्लित थे, आप ज्यादा ताजगी से भरे थे। आप खबरों के लिए बड़े आतुर थे। आपकी जिंदगी में एक रस मालूम हो रहा था। क्यों? कुछ कारण है।

जो मनुष्य सामान्य जीवन से ऊबा हुआ है, वह मनुष्य युद्ध को चाहेगा, हिंसा को चाहेगा। बोर्डम जो हमारे जीवन की है, रोज सुबह से सांझ तक हमारे जीवन में न तो कोई रस है, न तो कोई आनंद है, न कोई प्रसन्नता है। जब तक कोई संशेसनल, जब तक कि कोई बहुत तीव्र संवेदना करने वाली बात न घट जाए, हमारे जीवन में कोई प्रफुल्लता, कोई जिंदगी नहीं आती। बर्नार्ड शॉ से किसी ने पूछा कि किस बात को आप समाचार कहते हैं, न्यूज किसे कहते हैं? बर्नार्ड शॉ ने कहाः अगर एक कुत्ता आदमी को काट खाए तो इसे मैं न्यूज नहीं कहता। लेकिन एक आदमी कुत्ते को काट खाए तो इसे मैं न्यूज कहता हूं। इसे मैं समाचार कहता हूं, एक आदमी अगर कुत्ते को काट खाए।
यह हमारी जिंदगी की जो ढीली-ढाली रफ्तार है, वह उसको चौंका देती है बात। हम चौंकाने के लिए उत्सुक है, हम चौंकाए जाएं। इसलिए डिटेक्टिव फिल्में हम देखते हैं, जासूसी उपन्यास और कथाएं पढ़ते हैं जिनमें हत्याओं का जोर हो। जिंदगी में भी युद्ध और लड़ाइयां चाहते हैं, संघर्ष और कलह चाहते हैं, ताकि हमारे भीतर वह जो उदासी, ऊब जिंदगी में छा गई है, वह टुट जाए। केवल वही मनुष्य का समाज युद्ध से बच सकता है, जो मनुष्य का समाज अत्यधिक आनंदित और प्रफुल्लित हो। स्मरण रखें, अगर हम उदास हैं, दुखी हैं, रसहीन हमारा जीवन है तो हम भीतर अनजाने भी, अचेतन, अनकांशस भी युद्ध के लिए तीव्र युद्ध के लिए प्यासे रहेंगे। हमारे भीतर कोई आग्रह कोई आकांक्षा बनी रहेगी कि जीवन को चौंका देने वाली कोई बातें हो जाए। युद्ध सबसे ज्यादा जीवन को चौंका देता है। इसलिए जीवन में एक लहर आ जाती है, एक गति आ जाती है। इसलिए सारी मनुष्य-जाति बहुत गहरे में युद्ध से प्रेम करती है। युद्ध की आकांक्षा करती है।
अभी हिंदुस्तान में जब चीन और पाकिस्तान से उपद्रव चला तो आपने देखा, हिंदुस्तान भर में कविताएं लिखी जाने लगीं, की आंखों में रौनक और चेतना आ गई। कैसा पागलपन है। कैसे पागलपन है! हम कितने उत्साहित हो गए।
हमारा नेता कितने जोर से बोलने लगा और हमारी तालियां कितनी जोर से पिटने लगी और हमारे प्राणों में जैसे गति और एक कंपन आ गया। ऐसा लगा जैसे सब मुर्दे जाग गए हो।
यह सारी की सारी स्थिति यह बताती हैं कि सामान्य जीवन हमारा बहुत दुखी और बहुत पीड़ित है। और यह भी स्मरण रखें, अगर सामान्य रूपेण हम दुखी हैं तो जो आदमी दुखी होता है, वह आदमी दूसरे को दुख देने में आनंद अनुभव करता है। इसे मैं फिर से दोहराता हूं, जो आदमी दुखी होता है वह दूसरे को दुख देने में आनंद अनुभव करता है। जो आदमी आनंदित होता है वह दूसरे को आनंद देने में आनंद अनुभव करता है। जो हमारे पास होता है, उस पे निर्भर होता है, हम दूसरे के साथ क्या करेंगे। चूंकि हम सारे लोग दुखी हैं, इसलिए हमारे जीवन में एक ही सुख है कि हम किसी को दुख दे पाए। इसलिए जब भी हम किसी को दुख देते हैं, सताते हैं, परेशान करते हैं तो हम सुख मिलता है।
एक मुसलमान फकीर था, बायजीद। वह बहुत परेशान था इस बात से कि ईश्वर ने नर्क बनाया ही क्यों? उसे यह परेशानी थी कि ईश्वर जो इतना दयालु है, उसने भी नरक क्यों बनाया उसने एक रात ईश्वर से प्रार्थना की कि मैं तो समझने में असमर्थ हूं, अगर तू ही मुझे बता सके कि तूने नरक क्यों बनाया, इतना बुरा नरक क्यों बनाया। वह रात सोया, उसे एक सपना आया। निरंतर सोचने के कारण ही वह सपना उसे आया होगा। उसने सपना देखा, वह स्वर्ग में गया है। वहां चारों तरफ संगीत ही संगीत है और आनंद ही आनंद है। वहां दरख्तों के ऊपर सुंदर फूल हैं, वहां चारों तरफ सुगंध है। लोग बड़े स्वस्थ है।
वह जब पहुंचा तो स्वर्ग के लोग भोजन कर रहे थे, घरों-घरों में भोजन चल रहा था। उसने कई घरों में झांक कर देखा, एक बात से वह बहुत परेशान हुआ। लोगों के हाथ बहुत लंबे हैं, लोगों के शरीर तो बहुत छोटे हैं, लेकिन हाथ बहुत लंबे हैं, इसलिए भोजन करने में उन्हें बड़ी तकलीफ होती है। उठाते हैं तो उनको मुंह तक ले जाने में बड़ी अड़चन है, मुंह तक खाना जा नहीं पाता। लेकिन फिर लोग स्वस्थ हैं तो वह हैरान हुआ। उसने जाकर देखा, उसने देखा, घर-घर में लोग एक दूसरे को खाना खिला रहे हैं। खुद तो खा नहीं सकते, उनके हाथ बहुत लंबे हैं, तो एक आदमी दूसरे आदमी को खाना खिला रहा है।

फिर वहां से वह नर्क गया। नरक में देखा उसने, वहां भी हाथ उतने ही लंबे हैं, दरख्त उतने ही सुंदर हैं और फूल खिले हुए हैं। वहां भी सुगंध है, वहां भी सब ठीक है, लेकिन लोग बिल्कुल दुर्बल और परेशान और पीड़ित हैं। वह हैरान हुआ। उसने देखा, वहां हर आदमी अपना खाना खाने की कोशिश कर रहा है और बगल वाला न खा पाए, इसकी कोशिश भी कर रहा है। खुद के हाथ लंबे हैं, इसलिए खुद के मुंह तक नहीं पहुंचते इसलिए कोई आदमी खाना नहीं खा पा रहा है और किसी तरह थोड़ा बहुत खाना पहुंच भी जाए तो दूसरे लोग उसे धक्का दे रहे हैं। उसकी वजह से उसके पास खाना नहीं पहुंच पा रहा है। उसने देखा, स्वर्ग और नर्क तो बिल्कुल एक जैसे हैं, लोग थोड़े अलग-अलग हैं। नर्क में कोई आदमी दूसरे आदमी को सुखी देखने के लिए उत्सुक नहीं है। हर आदमी दूसरे आदमी को दुख देना चाह रहा है।
हम सारे लोग भी एक दूसरे को दुख देना चाह रहे हैं। फोसडेग का नाम सुना होगा, एक बहुत विचारशील व्यक्ति हैं। वह एक थियोलॉजीकल कालेज में बच्चों को पढ़ा रहा था, वह स्कूल, जहां ईसाई मिशनरी तैयार किए जाते हैं, उपदेश के लिए। वहां वह कालेज में उन लड़कों को पढ़ा रहा था। उसने पढ़ाते वक्त उनको कहा कि तब तुम स्वर्ग का वर्णन करने लगो; तुम कहीं उपदेश करने जाओ और बाइबिल में स्वर्ग का वर्णन आ जाए तो तुम प्रसन्नता जाहिर करना, चेहरे पर हंसी ले आना, आंखों में ताजगी ले आना, रोशनी ले आना। एकदम प्रफुल्लित हो जाना ताकि लोग समझ सकें कि स्वर्ग के वर्णन से तुम्हारा हृदय प्रफुल्लित हो गया। एक युवक ने खड़े होकर पूछा, और जब नर्क का वर्णन करना पड़े? तो फोसडेग ने कहाः तुम्हारी जो सूरत है, उससे ही काम चल जाएगा और कुछ सूरत बनाने की कोशिश मत करना।
हम सबकी सूरतें जैसी हैं, वैसी से नर्क का काम चल जाएगा। उसके लिए कोई
और विशेष सूरत बनाने की जरूरत नहीं है। जमीन करीब-करीब दुखी, उदास, पीड़ित उस स्थिति में पहुंच गई है कि किसी मनुष्य को भीतर जीवन में न तो कोई रस है, न कोई आनंद है। फिर एक ही रस है कि वह दूसरे को सताए, दूसरे को परेशान करे। चंगेज दिल्ली आया उसने आते से, दस हजार बच्चों के सिर कटवा दिए और और उनको भालों पर लगवाकर जुलूस निकलवाया आगे। लोगों ने पूछा, यह तुम क्या करते हो? उसने कहाः ताकि दिल्ली में लोगों को याद रहे कि कोई आया था। वह खुश था दस हजार बच्चों के सिर कटवा कर।
यह आदमी जरूर बहुत दुखी रहा होगा। इसके दुख का अंत न होगा। इसके भीतर नर्क ही रहा होगा, तभी तो इसे खुशी मिल सकी। जब हिंदुस्तान से वापस लौटा, बीच के एक गांव मग रुका। कुछ वेश्याएं, रात को उसके दरबार में नाचने आई। आधी रात में, दो बजे जब वेश्याएं लौटने लगी तो उन्होंने कहा, हमें डर लगता है, रास्ते में अंधेरा है। चंगीज ने कहाः अपने सैनिकों को, रास्ते में जितने गांव पड़ते हैं, सबमें आग लगा दो ताकि इन वेश्याओं को याद रहे कि चंगीज के दरबार में नाचने गई थीं तो आधी रात में भी उसने दिन करवा दिया। सारे गांव में आग लगा दी गई, कोई बीस गांव जला दिए गए। उसमें सोए लोग वहां जल गए। लेकिन वेश्याओं के रास्ते पर प्रकाश कर दिया।
यह आदमी जरूर भीतर गहरे नर्क में रहा होगा। चंगेज सो नहीं सकता था। हिटलर भी नहीं सो सकता था, स्टैलिन भी नहीं सो सकता था। भीतर एक गहरी पीड़ा रही होगी, कितना गहरा दुख रहा होगा कि दूसरे के दुख का दुख तो अनुभव नहीं हुआ, बल्कि दूसरे को दुख देने में एक खुशी अनुभव हुई। हम सारे लोग दुखी हैं। अगर आप दुखी हैं, तो आप स्मरण रखिए, आपका हाथ युद्ध में है। अगर आप दुखी हैं तो आप युद्ध की आकांक्षा कर रहे हैं। अगर आप दुखी हैं तो आप दूसरे के लिए दुख पैदा कर रहे हैं। हम सार लोग मिलकर दुख पैदा कर रहे हैं-- सामूहिक रूप से, व्यक्तिगत रूप से, राष्टरें के रूप से। और जब सारी दुनिया बहुत दुख से भर जाती हैं, दस पंद्रह वर्ष में, दुख के सिवाय हमारे दुख के रिलीफ का, निकास का कोई रास्ता नहीं रह जाता। युद्ध राजनैतिक घटना मात्र नहीं है, हमारे पूरे मानसिक नरक का निकास है, रिलीफ है। जब भीतर बहुत पीड़ा इकट्ठी हो जाती है, एक दुख सारी दुनिया में हम पैदा कर देते हैं, पागलपन पैदा कर देते हैं। दस पंद्रह वर्ष के लिए फिर एक हल्की शांति छा जाती है। दस पंद्रह वर्ष में हम फिर इकट्ठे कर लेते हैं।

अगर कोई व्यक्ति इस बात के लिए उत्सुक है कि दुनिया में शांति हो और युद्ध न हो, हिंसा न हो तो सबसे पहले उसे इस बात पर विचार करना होगा कि उसके स्वयं के जीवन में दुख न हो। यह पहली बात है जो मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं। अगर आप प्रफुल्लित और आनंदित हैं, अगर आप अपने जीवन में चौबीस घंटे खुशी बिखेर रहे हैं, फूल बिखेर रहे हैं, खुशबू और सुगंध बिखेर रहे हैं तो आप युद्ध के खिलाफ काम कर रहे हैं। आप एक ऐसी दुनिया के बनाने के काम में लगे हुए हैं, जहां युद्ध नहीं हो सकेंगे। अगर दुनिया में अधिक लोग खुश हो तो युद्ध असंभव हो जाएगा। युद्ध को रोकने के लिए और कोई रास्ता नहीं है, सिवाय इसके कि दुनिया में आनंद की गहरी पर्ते बिखेरी जाएं।
मैडम ब्लावटस्की जिस गांव में गई, जिस रास्ते में निकली, अपने साथ हमेशा एक झोले में बहुत से फूलों के बीज लिए रहती थी। बस में बैठी हो, कार में बैठी हो, ट्रेन में बैठी हो, रास्तों के किनारे, खेत में फूल के बीज फेंकती जाती थी। लोगों ने पूछा, तुम पागल हो। उसने लाखों रुपयों के फूलों के बीज अनजान रास्तों पर फेंक दिए। लोगों ने कहाः तुम पागल हो इन बीजों को फेंकने से फायदा? उस महिला ने कहाः जरूर वर्षा आएगी जल्दी ही, यह बीज फूटेंगे, इनमें फूल लगेंगे और कोई उन फूलों को देख कर खुश होगा। लोगों ने कहाः लेकिन तुम दुबारा इस रास्तों से न निकल सकोगी, और न उन लोगों को खुश देख सकोगी। उसने कहा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर एक बेहतर दुनिया बनानी है तो उसमें मुस्कुराहट बिखेरना जरूरी है, बहुत फूल फैला देने जरूरी हैं। तो मैं आपसे कहूंगा, अगर आप प्रसन्न हैं और आपके जीवन से कांटे नहीं, फूल गिरते हैं, अगर आपके व्यवहार से, आपके विचार से, आपके संबंधों में खुशी बिखरती है तो आप एक ऐसी दुनिया में निर्माण में भागीदार हो रहे हैं, जिसमें युद्ध नहीं हो सकेंगे। जिसमें हिंसा नहीं हो सकेगी। यह बात अजीब लगेगी कि मैं युद्ध के रोकने के लिए यह कहूं। लेकिन मैं जानता हूं, सिवाय इसके कोई उपाय नहीं है। दुखी लोग युद्ध से नहीं बच सकते। दुखी लोग हिंसा से नहीं बच सकते, क्योंकि दुखी लोग दूसरों को दुख देने से नहीं बच सकते हैं। यह तो पहली बात है। और यह प्रत्येक व्यक्ति को स्मरण रखनी जरूरी है तो उसके जीवन से एक आनंद की फुआर, आनंद की गंध निरंतर उठती रहे। उसके सोते, उठते, बैठते उसके जीवन में एक आनंद प्रकट हो।
लेकिन यह आनंद कैसे प्रकट हो?
अगर यह भीतर न हो तो यह प्रकट कैसे होगा? झूठी खुशियों का कोई अर्थ नहीं है और झूठी मुस्कुराहटें बेमानी हैं। अगर मैं झूठा मुस्कराऊं, कोशिश करके हंसू और कोशिश करके सुखी और प्रसन्न दिखने की चेष्टा करूं तो वह सब झूठ होगा, वह अभिनय होगा, वह सब एक्टिंग होगी। उसका कोई बहुत अर्थ नहीं हैं। मेरे प्राणों से आनंद उठना चाहिए। लेकिन मेरे प्राण तो उदास और अंधकार में डूबे हुए हैं। उससे आनंद कैसे उठेगा?
जरूर कोई रास्ता है कि सारा जीवन आनंद का एक संगीत हो जाए, एक गीत हो जाए और प्राणों की धड़कनें निरंतर सतत एक अपूर्व आनंद में धड़कने लगें। रास्ता है। मार्ग है। कुछ लोगों ने इसी जीवन में वैसे आनंद को उपलब्ध किया है। कुछ लोगों ने वैसे जीवन में संगीत को उपलब्ध किया है। और तब फिर--तब फिर उनके जीवन से जो प्रकट हुआ प्रेम, उनके जीवन से जो प्रकट हुई अहिंसा, उसके वे आधार रखे हैं, जिससे मनुष्य का--नये मनुष्य का जन्म हो सके।
बुद्ध एक पहाड़ के करीब से गुजरते थे। एक हत्यारे ने वहां प्रतिज्ञा
कर रखी थी, एक हजार लोगों को मारने की उसने नौ सौ निन्यानबे लोग मार डाले थे, लेकिन अब रास्ता चलना बंद हो गया था। लोगों को पता हो गया था और रास्ता चलना बंद हो गया था। अब उस रास्ते पर कोई भी नहीं निकलता था। बुद्ध उस रास्ते पर गए। गांव के लोगों ने, जो अंतिम गांव था। उन्होंने कहा मत जाओ क्योंकि हत्यारा वहां अंगुलीमाल है। वह आपका भी सिर काट डालेगा। वह रास्ता निर्जन है, वहां कोई भी नहीं जाता।
बुद्ध ने कहाः अगर वहां कोई भी नहीं जाता तो वह बेचारा हत्यारा, अकेला बहुत दुख में और पीड़ा में होगा। मुझे जाना चाहिए। अगर मेरी गर्दन कट जाए तो भी उसे खुशी होगी, उसका एक हजार का व्रत पूरा हो जाएगा। दूसरी बात, जो आदमी एक हजार आदमियों को मार कर भी दुखी नहीं हुआ है। उसके प्राण पत्थर हो

गए होंगे। उसके पत्थर प्राण उसे कितनी पीड़ा नहीं देते होंगे। बुद्ध ने कहाः मुझे उन नौ सौ निन्यानबे लोगों के मर जाने की उतनी पीड़ा नहीं जितनी उस आदमी के हृदय की पीड़ा है, उसके हृदय पर कितना बड़ा पत्थर होगा। मुझे जाने दें। बुद्ध वहां गए। वहां एक छोटी सी घटना घटी।
बुद्ध को आते देख कर, उनकी सीधी और शांत आकृति देख कर अंगुलीमाल को थोड़ी सी दया आई। सोचा, भिक्षु है, भूल से आ गया। और तो कोई आता नहीं है। उसने दूर से चिल्ला कर कहा कि भिक्षु, वापस लौट जाओ। क्या तुम्हें पता नहीं, अंगुलीमाल का नाम नहीं सुना? और सभी हत्यारे चाहते हैं कि उनका नाम सुना जाए, उसी के लिए हत्या करते हैं। उसने चिल्लाकर कहाः अंगुलीमाल का नाम नहीं सुना। बुद्ध ने कहाः सुना है, और उसी की खोज में मैं भी आया हूं। अंगुलीमाल थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहाः क्या तुम्हें पता नहीं कि मैं तुम्हारी गर्दन काट दूंगा? नौ सौ निन्यानबे लोगों को मैंने मारा है। बुद्ध ने कहाः मैं भी मरूं, क्योंकि मृत्यु निश्चित है। आज नहीं कल मर जाऊंगा। लेकिन तुम्हें अगर थोड़ी खुशी मिल सके और तुम्हारा व्रत पूरा हो जाए तो मृत्यु मेरी सार्थक हो जाएगी। अंगुलीमाल थोड़ा परेशान हुआ। इस तरह की बातें उसने जीवन में कभी नहीं सुनी थी।
उसने दो तरह के लोग देखे थे--वे जो उसकी तलवार को देख कर भाग जाते हैं
और वे जो उसकी तलवार को देख कर तल वार निकाल लेते थे। इस आदमी के पास न तो तलवार थी और न यह आदमी भाग रहा था, क्योंकि आ रहा था। यह बिल्कुल तीसरी तरह का आदमी था जो अंगुलीमाल ने नहीं देखा था। बुद्ध करीब आए, अंगुलीमाल से उन्होंने कहा कि तुम इसके पहले कि मुझे मारो, क्या एक छोटा सा काम मेरा कर सकोगे? और एक करते हुए आदमी की याचना कौन इनकार करेगा? अंगुलीमाल भी इनकार नहीं कर सका। बुद्ध ने कहाः यह जो सामने वृक्ष है, इसके थोड़े से पत्ते तोड़ कर मुझे दे दो। उसने अपनी तलवार से एक शाखा काटकर बुद्ध के हाथ में दे दी। बुद्ध ने कहा, तुमने मेरी बात मानी। क्या एक छोटी सी बात और मान सकोगे? इस शाखा को वापस जोड़ दो।
वह अंगुलीमाल हैरान हुआ। उसने कहाः यह तो असंभव है। वापस जोड़ देना असंभव है। बुद्ध हंसने लगे और उन्होंने कहाः फिर तोड़ना तो बच्चे भी कर सकते थे, पागल भी कर सकते थे। इसमें कोई बहादुरी नहीं, इसमें कोई पुरुषार्थ नहीं कि तुमने तोड़ी। जोड़ो तो कुछ बात है। तोड़ना तो कोई भी कर सकता है। और बुद्ध ने कहाः स्मरण रखना, जो तोड़ता है, वह निरंतर दुखी होता जाता है। और जितना ज्यादा दुखी होता है, उतना ज्यादा तोड़ता है और जितना ज्यादा तोड़ता है, उतना ज्यादा दुखी होता जाता है। अंगुलीमाल ने पूछाः सच, मैं तो बहुत दुखी हूं। क्या कोई रास्ता भी है कि मनुष्य आनंदित हो सके? बुद्ध ने कहाः जो जोड़ता है, वह आनंद को उपलब्ध होता है। अंगुलीमाल ने वह तलवार फेंक दी। उसने कहा कि मैं जोड़ने का विज्ञान सीखूंगा।
मैं आपसे यह कहना चाहता हूं, जीवन में जो भी जोड़ता है, वह आनंद को उपलब्ध होता है। जो भी क्रिएट करता है, जो भी सृजन करता है, जो भी बनाता है, वह आनंद को उपलब्ध होता है। अगर आप दुखी हैं तो उसका अर्थ है, आपने केवल तोड़ना सीखा होगा, जोड़ना नहीं। अगर आप दुखी हैं तो आपने मिटाना सीखा होगा, बनाना नहीं। आपने जीवन में कुछ बनाया, कुछ सृजन किया, कुछ क्रिएट किया? आपके जीवन से कुछ निर्मित हुआ? कुछ सृजित हुआ, कुछ बना, कुछ पैदा हुआ? कोई एक गीत, जो आपके मरने के बाद भी गाया, जा सके, कोई एक मूर्ति जो आपके बाद भी स्मृति बनी रहे, कोई एक पौधा, जो आपके न होने के बाद भी छाया दे? आपने कुछ बनाया, कुछ निर्मित किया? जो आपसे बड़ा हो, जो आप मिट जाएं और रहे, जो आप न हों और फिर भी हो। जो मनुष्य सृजन करता है, वही मनुष्य शांति को और आनंद को उपलब्ध होता है। जिसके जीवन में जितनी सृजनात्मकता, जितनी क्रिएटिविटी होती है, उसके जीवन में उतनी ही शांति और उतना ही आनंद होता है। जो लोग केवल मिटाते और तोड़ते हैं, वे आनंदित नहीं हो सकते।
क्यों सृजन करने से मनुष्य को आनंद उपलब्ध होता है? जो व्यक्ति जितने दूर तक सृजन करता है, वह उतने दूर तक ईश्वर का भागीदार हो जाता है। ईश्वर है सृष्टा, और जब भी हम कुछ सृजन करते हैं, ईश्वर का एक अंश हमसे काम करने लगता है और जो व्यक्ति सारे जीवन को सृजनात्मक बना देता है, सारे जीवन को

एक सृजनात्मक सेवा में समर्पित कर देता है, उसके जीवन में संपूर्ण रूप से ईश्वर प्रकट होने लगता है। उसका जीवन आनंद से प्रेम से भर जाता है।
सुख के लिए, आनंद के लिए सृजनात्मकता चाहिए।
कुछ निर्मित करें, कुछ बनाएं, जो आपसे बड़ा हो। आपका जीवन केवल समय का गुजरना न हो, बल्कि एक सृजन हो। वह सृजन चाहे छोटा सा क्यों न हो, वह आपके प्रेम का कृत्य हो। जो लोग जीवन में सृजनात्मक हो जाते हैं, जो लोग भी जीवन में छोटे से प्रेम के कृत्य को निर्माण दे पाते हैं, उनके प्राण आह्लादित हो उठते हैं, वे आनंद से भर जाते हैं। फिर वह आनंद ऊपर से थोपा हुआ नहीं होगा। फिर वह आनंद उनके प्राणों के अंतिम केंद्र से उठता है, फिर उनके प्राणों के केंद्र से उठता है और उनके सारे जीवन का भर देता है।
जो व्यक्ति निर्मित करने में संलग्न हो, स्मरण रखना होगा... क्योंकि सामान्यतया, हमें इस बात का स्मरण भी नहीं है कि सुख केवल उनका भाग्य बनता है, जो सृजन करते हैं। सुख तो हम सब चाहते हैं, लेकिन सृजन हम कोई भी नहीं करते। इसलिए सुख से हमारा भी कभी भी कोई संबंध नहीं हो पाता। कोई संबंध नहीं हो पाता सुख से हमारा। यदि हम सृजन कर पाए, तो सुख बाई प्रोडक्ट है सृजन की। सुख सीधा नहीं मिलता।
आनंद सीधा उपलब्ध नहीं होता। जो सृजन करता है, उसे उपलब्ध होता है। जैसे फूल सीधे नहीं मिलते। जो पौधा लगाता है, बीज बोता है, पानी डालता है, पौधे की रक्षा करता है, पौधे पर श्रम करता है, उसे फूल उपलब्ध होते हैं। फूल सीधे उपलब्ध नहीं होते। वैसे आनंद के फूल भी सीधे उपलब्ध नहीं होते। जो सीधा फूल ही चाहता हो, फूलों को बिना बोए, फूलो को बिना पानी डाले, उसे फूल नहीं मिलेंगे, उसके हाथ के फूल भी सड़ जाएंगे। फूल तो उपलब्ध होते हैं, बीज को बोने से। वैसे ही जो सृजन के बीज बोता है, उसे आनंद के फूल उपलब्ध होते हैं। कभी सृजन का कोई काम करके देखें, और स्मरण रखें, सृजन करने की शर्त क्या है? कौन लोग सृजन कर सकते हैं? एक आदमी मंदिर बनाता है और अपना नाम उसके ऊपर लगा देता है। बस फिर वह एक्ट क्रिएटिव नहीं रहा। फिर वह मंदिर का बनाना सृजनात्मक नहीं रहा, वह अहंकार का हिस्सा हो गया। उसे फिर कोई आनंद नहीं मिलेगा।
एक आदमी दान करता है और भागा हुआ अखबार के दफ्तर में जाता है, फिर वह कृत्य सृजनात्मक नहीं रहा, फिर वह केवल अहंकार की तृप्ति हो गई। और स्मरण रखें, अहंकार से ज्यादा डिस्ट्रक्टिव और कुछ भी नहीं है। अहंकार से ज्यादा विनाशात्मक कुछ भी नहीं है। अहंकार से ज्यादा हिंसात्मक, वायलेंट और कुछ भी नहीं है। अहंकार की पूर्ति के लिए किए गए काम सृजनात्मक नहीं रह जाते। अहंकार के द्वारा, ईगो के द्वारा मैं की तृप्ति के लिए मैं कुछ हूं। दिखाई पड़े, उसके लिए जो कुछ किया जाता है, वह सृजन नहीं है। सृजन तो तभी है जब मैं भूल जाता है। तब मैं कोई भी हनीं रह जाता। रवींद्रनाथ मर हरे थे। एक मित्र मिलने गया। और उसने पूछा कि रवि बाबू, आपके छह हजार गीत गाए। अब तक मनुष्य-जाति में किसी कवि ने गीत नहीं गाए, जो संगीत में बांधे जा सकें। शैली, जो कि महाकवि है उसके भी दो हजार सानेट हैं, जो संगीत में बांधे जो सकते हैं। रवींद्रनाथ ने छह हजार गीत गाए, जो सभी संगीत में बद्ध हो सकते हैं। किसी मित्र ने पूछा, मरते वक्त रवींद्रनाथ को, आपने छह हजार गीत गाए। रवींद्रनाथ ने कहा, क्षमा करो। जब उन्हें गाता था, तब मैं मौजूद ही नहीं था। जब वे पैदा हुए, तब मैं नहीं था। बाद में मेरा नाम उनसे जुड़ गया, लेकिन जब वे पैदा हुए, तब मैं बिल्कुल भी हनीं था। जब मैं बिल्कुल मिट जाता था और भूल जाता था, जब मुझे स्मरण भी नहीं रहता था कि मैं कौन हूं तब उसका जन्म हुआ। तब वे पैदा हुए। तब वे मेरे भीतर से गाए और फैले, इसलिए मेरा... हां, कोई भूल-चूक हुई होगी तो मेरी होगी। लेकिन गीत परमात्मा के हैं, मेरे नहीं हैं।
जिसने भी जीवन में कुछ सृजन किया है, उसे सदा ऐसा लगेगा कि वह उससे आया, लेकिन उसका नहीं है। वह माध्यम बना। वह रास्ता बना, कोई चीज उससे पैदा हुई, लेकिन वह उसकी नहीं है। अहंकार की छाप और हस्ताक्षर उस पर हनीं होंगे। जहां-जहां अहंकार जुड़ जाता है, वहीं-वहीं सृजन भी विनाशात्मक हो जाता है। इसीलिए तो इतने सारे मंदिर हैं दुनिया में, इतनी मस्जिद हैं,

इतने चर्च हैं, लेकिन मंदिर, मस्जिद और चर्च अगर सृजन से पैदा होते तो मनुष्य की दुनिया मग प्रेम भर गया होता। लेकिन मंदिर और मस्जिद और चर्च घृणा, से पैदा हुए तो घृणा के अड्डे बने हुए हैं। इनसे ज्यादा खतरनाक तो अड्डे नहीं हैं दुनिया में। इन्होंने तो मनुष्य को लड़ाने में और हत्या करवाने में भाग लिया। निश्चित ही यह प्रेम से पैदा नहीं हुए होंगे। निश्चित ही यह अहंकार से आए होंगे और अहंकार लड़ाता है, इसलिए मंदिर और मस्जिद लड़ते हैं। वह अहंकार पर निर्मित हैं। उनके भीतर सृजनात्मक, पवित्रता, सृजनात्मक प्रेम प्रकट नहीं हुआ। तो एक अंतिम बात यह कहना चाहता हूंः
पहली बात मैंने यह कही कि यदि आप दुखी हैं तो दुनिया से हिंसा का अंत नहीं होगा। आपका आनंदित होना जरूरी है। दूसरी बात मैंने आपसे यह कही कि अगर आप आनंदित होना चाहते हैं तो आपका सृजनात्मक होना जरूरी है और तीसरी और अंतिम बात मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि अगर आप सृजनात्मक होना चाहते हैं तो आपका अहंकार शून्य होना जरूरी है। आपको यह जो खयाल हमारे भीतर पैदा हुआ है कि मैं कुछ हूं, यह भ्रम टूट जाना चाहिए, छूट जाना चाहिए। यह भ्रम मनुष्य को अंत तक पीड़ा ही देता है और इस भ्रम के कारण ही वह सत्य को भी नहीं जान पाता, जो उसके भीतर छिपा था। और उस स्वर से भी वंचित रह जाता है, जिसके वह द्वार पर ही खड़ा था।
यह मैं का अहंकार अदभुत है। श्वास पर भी हमारा कोई वश नहीं लेकिन हम कहते हैं, मैं श्वास लेता हूं। अगर मैं श्वास लेता हूं तो फिर तो मुझे मरने की कोई जरूरत नहीं है। मैं जब श्वास लेना चाहूंगा, लेता चला जाऊंगा। लेकिन एक दिन पाया जाता है, श्वास बाहर गई और अंदर नहीं आई, और फिर नहीं ले पाता हूं। तो यह कहना पागलपन ही होगा कि मैं श्वास लेता हूं। श्वास आती है, जाती है। यही तक ठीक है। उसके साथ मैं को जोड़ देना गलत है।
हम कहते हैं, मेरा गलत जन्म--मेरा जन्म-दिन, जैसे उस पर ही हमारा कोई अधिकार हो। न हमारा जन्म पर कोई अधिकार है, न मृत्यु पर हमारा कोई अधिकार है, न हमारे श्वासों पर हमारा कोई अधिकार है, फिर यह मैं को ठहरने की जगह कहां है? इस मैं को बड़े होने का स्थान कहां है? लेकिन जीवन भर इस मैं को खड़ा करते हैं। अनेक-अनेक रूपों मग इस मैं को मजबूत करते हैं। और फिर जब यह मैं मजबूत हो जाता है, जितना मजबूत हो जाता है, उतना बगल वाले मैं से इसकी टक्कर शुरू हो जाती है। व्यक्तियों के मैं लड़ते हैं, राष्ट्रों के मैं लड़ते हैं।
यह सारे झंडे जो हर राष्ट्र अपना ऊंचा किए हुए हैं, यह सब राष्ट्रों
के अहंकार के झंडे है और लड़ाते हैं। यह टक्कर करवाते हैं। व्यक्तियों के झंडे हैं, वे लड़ाते हैं, राष्ट्रों के झंडे हैं, वे लड़ाते हैं। हम कहते हैं, हमारे मुल्क में कहते हैं कि भारत बड़ा महान देश है, पागलपन की बात हैं। जब तक कौमें इस तरह की बातें पत्थर पड़ रहे हैं। क्या कहते! उन सबने कहाः तुम अपनी आत्म-कथा लिखो। ऑटो-बायोग्राफी लिखो। तुम जैसा पत्थर हमारे पत्थरों में कभी पैदा ही नहीं हुआ। तुम तो जरूर ईश्वर पुत्र हो। तुम तो महात्मा हो। तुम तो धन्य हो, जरूर कोई ईश्वरीय शक्ति काम कर रही है। तभी तो तुम आकाश में उड़े शत्रु का विनाश किया, राजमहलों के अतिथि बने।
फिर ऑटो-बायोग्राफी लिखनी पड़ती है। आदमी को, और पत्थर से ज्यादा उनकी कहानी नहीं है। एक पत्थर से ज्यादा, यह जो पत्थर ने यात्रा की, इससे ज्यादा हमारी यात्रा है? इस पर थोड़ा विचारें, इसे थोड़ा सोचें। इस पत्थर से ज्यादा कथा नहीं दिखेगी और अब आत्म-कथाएं बचकानी और चाइल्डिश मालूम होंगी, सब मनुष्य की अहंकार मालूम होंगी।
यह अहंकार सबसे बड़ी डिस्ट्रेक्टिव फोर्स है, सबसे बड़ी विनाशात्मक शक्ति है। अगर यह सोच विचार आपको दिखाई पड़े, मैं तो कुछ भी ही हूं, अगर यह अनुभव में आए, मैं तो न कुछ हूं। प्रकृति के हाथ का खेल, या परमात्मा के द्वारा फेंका गया एक पत्थर, और सारी यात्रा और सारी कथा, और फिर पत्थर का वापस गिर जाना, इससे ज्यादा मैं कुछ भी नहीं हूं। ऐसा अगर दिखाई पड़े तो आपके जीवन में अहंकार विलीन हो जाएगा। और जैसे ही अहंकार विलीन हुआ वैसे ही, उसका जन्म होता है, जो प्रेम है, जो आनंद है। उसका जन्म होता है, जो

आत्मा है। उसकी प्रतीति होती है, जो भीतर छिपा हुआ सत्य है, जो वास्तविक हमारी सत्ता है। और उसकी उपलब्धि होते ही सारे जीवन की दृष्टि कुछ और हो जाती है। फिर होता है सृजन। फिर आप उठते हैं तो सृजन होता है, फिर आप श्वास लेते हैं तो सृजन होता है, फिर आप प्रेम करते हैं तो सृजन होता है। आपका गुजर जाना, आपका होना मात्र एक सृजनात्मक सेवा हो जाती है।
यह तीन छोटी सी बात मैंने कहीं। हैरानी होगी कि इनको मैं विश्वशांति
से कैसे जोड़ता हूं। निश्चित ही, इन्हें मैं विश्वशांति से जोड़ता हूं। इसलिए जोड़ता हूं कि एक-एक व्यक्ति से मिल कर हमारा यह सारा मनुष्य का विश्व बना है। एक-एक छोटे-छोटे व्यक्ति का जोड़ है। विश्व कहीं है नहीं। हम सारे लोग मिल कर इस विश्व को बनाते हैं, बनाए हुए हैं। हम सारे लोगों ने इसे निर्मित किया है। हम सारे लोगों को प्राण यदि बदले हमारे चित्त यदि बदलें, हमारे सोचने और जीने का ढंग यदि बदले तो ही यह संभव है कि हम एक दूसरे तरह की मनुष्यता को जन्म देने में समर्थ हो सकें। और स्मरण रखें, यह जिम्मा प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर है, उसे टाला नहीं जा सकता। इसे किसी और पर टाला नहीं जा सकता। अगर मनुष्य की समाप्ति होगी तो मैं जिम्मेवार रहूंगा, आप जिम्मेवार रहेंगे। और अगर मनुष्य को बचाना है तो मुझे कुछ करना होगा, आपको कुछ करना होगा।
यह तीन छोटी सी बातें, अगर थोड़े से लोग जमीन पर करने में समर्थ हो जाए
तो थोड़े से दिए जल जाएंगे अंधकार में थोड़े से प्रकाश के पैदा हो जाएंगे। और जब एक दिन जलता है तो दूसरे बुझे हुए दिए के प्राणों में भी जलने की आकांक्षा पैदा होने लगती है। और जब एक दिया जलता है तो उसके आलोक में अनेक दीयों को जलने की उत्प्रेरणा मिलनी शुरू हो जाती है। ईश्वर करे, आपके भीतर संकल्प पैदा हो, ईश्वर करे, आपके भीतर एक सृजनात्मक ऊर्जा पैदा हो, आपके भीतर एक प्रेम पैदा हो। ईश्वर करे, आपके भीतर उस प्रार्थना का जन्म हो जिसे हम एक नई तरह की दुनिया बना सकें। अब तक मनुष्य जैसा जीया है वह एकदम गलत है और अब तक मनुष्य ने जो भी किया है उससे हित नहीं हुआ। बिल्कुल ही एक बड़ी क्रांति से गुजरे बिना कोई मार्ग नहीं है। और अगर राजनीतिज्ञों पर, राजनेताओं पर बात छोड़ दी गई तो दुनिया डूबेगी, दुनिया को बचने का फिर कोई मार्ग नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन अगर एक-एक व्यक्ति अपने ऊपर बात ली तो कुछ हो सकता है। वह आशा करता हूं कि कुछ हो सकेगा। हम सारे छोटे-छोटे लोग भी उस बहुत बड़े के भागीदार बन सकते हैं।

मेरी इन बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है। उससे बहुत-बहुत आनंदित हूं, और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन की कला
पांचवां प्रवचन

नये मनुष्य का जन्म

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैं एक छोटी सी कहानी से अपनी आज की बात प्रारंभ करूंगा।
एक बहुत काल्पनिक कहानी आपसे कहूं और उसके बाद आज की बात आपसे कहूंगा। एक अत्यंत काल्पनिक कहानी से प्रारंभ करने का मन है। कहानी तो काल्पनिक है लेकिन मनुष्य की आज की स्थिति के संबंध में, मनुष्य की आज की भाव-दशा के संबंध में उससे ज्यादा सत्य भी कुछ और नहीं हो सकता।
मैंने सुना है कि परमात्मा ने यह देख कर कि मनुष्य रोज से रोज विकृत होता जा रहा है, उसकी संस्कृति और संस्कार नष्ट हो रहे हैं। उसके पास शक्ति तो बढ़ रही है लेकिन शांति विलीन हो रही है। उसके पास बाहर की समृद्धि तो रोज बढ़ती जाती है लेकिन साथ ही भीतर की दरिद्रता भी बढ़ती जा रही है और यह देख कर कि मनुष्य इन सारी घातक स्थिति में उलझ कर कहीं स्वयं का नाश न कर ले, दुनिया के तीन बड़े राष्ट्रों को अपने पास बुलाया--यह मैंने कहा, बिल्कुल काल्पनिक कहानी है। कोई परमात्मा इस भांति बुलाने को नहीं, लेकिन फिर भी इस कहानी में कुछ है, जिसकी वजह से आपसे कहना चाहता हूं। उसने अमरीका, रूस और इंग्लैंड के प्रतिनिधियों को अपने पास बुलाया और उनको कहा कि तुम्हारे पास इतनी समृद्धि है, इतनी शक्ति है कि यदि चाहो तो जमीन स्वर्ग बन सकती है। लेकिन मैं देख रहा हूं कि जमीन रोज से रोज नरक बनती जा रही है।
और यह भी संभावना है, यह भी भय है कि तुम्हारी इस युद्ध की, घृणा की और हिंसा की दौड़ में सारी मनुष्यता नष्ट न हो जाए। इसलिए मैंने आज तुम्हें बुलाया है इस खयाल से कि मैं एक-एक वरदान तुम्हें दे दूं, तुम मांग लो, जो भी तुम्हें मांगना हो, जो भी तुम्हारी कामना हो, और उस वरदान को मांग कर, उस वरदान को लेकर तुम तृप्त हो जाओ और शांत हो जाओ, ताकि युद्ध की संभावना समाप्त हो जाए। उसने अमरीका के प्रतिनिधि की तरफ देखा। उस प्रतिनिधि ने कहाः हे परमात्मा, हमारी एक ही आकांक्षा है, अगर वह पूरी हो जाए तो हमें कुछ भी नहीं चाहिए, हमारी सारी दौड़ समाप्त हो जाएगी। ईश्वर ने बहुत प्रसन्नता से देखा और कहाः मांगो, मैं पूरा कर दूंगा। उस अमरीकी प्रतिनिधि ने कहाः एक ही हमारी आकांक्षा है, जमीन तो रहे, लेकिन जमीन पर रूस का कोई निशान न रह जाए।
परमात्मा ने पीछे के इतिहास में, पुराणों में बहुत से वरदान दिए हैं, ऐसा वरदान कभी उससे मांगा नहीं गया था। उसने बहुत हैरानी से रूस के प्रतिनिधि की तरफ देखा। उस प्रतिनिधि ने कहाः महानुभाव एक तो हमारा विश्वास नहीं कि आपकी कोई सत्ता है। हम मानते नहीं कि आपका कोई होना है, और कोई चालीस वर्ष हुए, हमने अपने मंदिरों से, अपने गिरिजों से आपको निकाल कर बाहर कर दिया है। लेकिन हम आपकी पुनः प्रतिष्ठा कर देंगे। फिर मंदिर में आपकी पूजा होगी और दीए जलाए जाएंगे। अगर एक छोटी सी बात पूरी हो जाए तो हम स्वीकार कर लेंगे की परमात्मा है और उसकी पूजा भी प्रारंभ कर देंगे। ईश्वर ने कहा, वह कौन सी बात है? रूस के प्रतिनिधि ने कहाः एक ही हमारी धारणा, एक ही हमारी आशा, एक ही कामना है, एक ही हमारी इच्छा है, जो पूरी हो जाए, और वह यह है कि जमीन का नक्शा तो हो लेकिन नक्शे पर अमरीका के लिए कोई रंग, कोई रेखा न बचे।
ईश्वर ने बहुत हैरानी से ब्रिटेन की तरफ देखा और ब्रिटेन ने कहा वह मन में रख लेने जैसा है। ब्रिटेन ने कहाः हे प्रभु, हमारी अपनी कोई आकांक्षा नहीं। इन दोनों की आकांक्षाएं एक साथ पूरी हो जाएं, हमारी आकांक्षा पूरी हो जाती है।
यह कहानी मैंने देश के कोने-कोने में कही। सभी जगह लोग इसको सुनकर हंसते हैं। अभी मुझे ऐसे लोग नहीं मिले जो यह सुनकर रोने लगें। लेकिन यह हंसने की बात नहीं है। इसमें हंसने जैसा क्या है? यह तो मनुष्य के ऊपर रोने की बात है। और यह कहानी झूठी है, मैंने कहा। यह कहानी झूठी नहीं है।

हमारे मन की ऐसी ही स्थिति है। हम सब जैसे यही चाह रहे हैं कि दूसरे विनष्ट हो जाएं। और जो समाज, जो सभ्यता, इस भांति विनाश की, दूसरे की मृत्यु की कामना से भर गई हो, उसे हम स्वस्थ नहीं कह सकते। उसे कहना होगा, वह विक्षिप्त हो गई है। वह पागल हो गई है। कुछ मनुष्य के भीतर अनिवार्य अंग टूट गया है, उसके बोध का कोई हिस्सा टूट गया है, उसके भीतर समझ की कोई बात समाप्त हो गई है, कोई न कोई दीया मनुष्य के भीतर बुझ गया है तभी विनाश की ऐसी तीव्र आकांक्षा मनुष्य में प्रकट हो रही है।
विनाश, या विनाश की आकांक्षा स्वस्थ मन का प्रतीक नहीं है। तो यह बात रोने जैसी है और यह जो मैंने कहा ब्रिटेन की मनःस्थिति ऐसी है, ऐसा नहीं है, हम सबकी मनःस्थिति भी वैसी ही है। प्रत्येक व्यक्ति आज ऐसी ही घातक और विषाक्त धारणाओं से भर गया है, और इसके परिणाम हो रहे हैं। इसके परिणाम यह हो रहे हैं कि जमीन पर कोई तीन अरब लोग हैं, और ये तीन अरब लोग एक दूसरे की विनाश की कामना से भरे हों, अगर इन तीन अरब लोगों में ऐसे भाव उठते हों, जो दूसरे के लिए घातक हैं, जो दूसरे की प्रतिहिंसा में हैं, जो दूसरे के प्रति क्रोध और प्रतिशोध से भरे हैं, जिनकी सारी चेष्टा यह है कि वे दूसरे लोगों को दुख पहुंचाने में सफल हो जाएं, तो यह कैसे संभव है कि मनुष्य का समाज सुख और शांति को अनुभव कर सके?
यह कैसे संभव है कि जमीन पर हम एक बेहतर मानवता की सृष्टि कर सकें? यह संभव नहीं होगा। इन धारणाओं और इन भावनाओं के साथ यह संभव नहीं होगा। ये विचारणीय हैं और ये चिंतनीय हैं और इस पर आंसू आने चाहिए, हंसी आने का तो कोई भी कारण नहीं है, कि मनुष्य को क्या हो गया है? ऐसा इसके पूर्व कभी हुआ था, ऐसा ज्ञात नहीं होता। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इतनी तीव्र हिंसा ने पूर्णता पाई हो। मनुष्य ने युद्ध किए हैं, मनुष्य लड़ा है, मनुष्य ने हिंसा की है, लेकिन हमारी युग की हिंसा पूर्ण हिंसा है। और हम जिस युद्ध की तैयारी में हैं, वह कोई साधारण युद्ध नहीं होगा, वह तो टोटल वार होगी, वह तो समग्र युद्ध होगा।
समग्र युद्ध का अर्थ होता है कि उसमें युद्ध करने वाले कोई भी पक्ष शेष नहीं रह जाएंगे। आंशिक युद्ध का अर्थ होता है, एक जीतेगा और एक हारेगा। पूर्ण युद्ध का अर्थ होता है, कोई जीतेगा नहीं, कोई हारेगा नहीं। दोनों समाप्त हो जाएंगे।
पिछले दस पंद्रह वर्षों में हिरोशिमा और नागासाकी के ऊपर अणुबम को गिराने के बाद हमारी विनाश की शक्तियों ने आकाश छू लिया है। अगर उनकी गणना मैं आपको दूं तो आप हैरान होंगे कि ये किन बातों की सूचनाएं हैं। नागासाकी और हिरोशिमा में जो अणुबम गिराया, वह आज हमारे पास जो अणुबम और उदजन बम हैं उनकी दृष्टि में बिल्कुल बच्चों का खिलौना था। लेकिन उस खिलौने ने भी एक लाख लोगों की बस्ती को थोड़ी ही देर में समाप्त कर दिया। नागासाकी और हिरोशिमा एक ही रात्रि में समाप्त हो गए, और जब रात्रि के ग्यारह बजे, उन दिनों अमरीका के प्रेसिडेंट ट्रूमैन थे, उनको खबर मिली कि नागासाकी और हिरोशिमा ध्वस्त हो गए हैं, उनमें कोई भी प्राण शेष नहीं रहा। पत्रकारों ने उनसे दूसरे दिन सुबह आकर पूछा, क्या आप रात को ठीक से सोए? ट्रूमैन ने कहाः पिछले तीन चार वर्षों के बाद कल ही मैं ठीक से सो पाया। ट्रूमैन ने कहाः कल जब मुझे खबर मिल गई कि नागासाकी और हिरोशिमा नष्ट हो गए और जापान की रीढ़ टूट गई, और जापान आज नहीं कल समर्पण कर देगा तो मैं परिपूर्ण शांति से सो पाया। एक पत्रकार ने ट्रूमैन को कहा कि बड़ी हैरानी की बात है, एक लाख लोग मर गए हों, आपकी आज्ञा से, आम शांति से सो पाए।
और ट्रूमैन अगर शांति से सो सके हैं, तो यह न सोचें कि वह बुरे मनुष्य हैं। वह सब हमारे प्रतीक हैं। हमारी सबकी दशा भी, हमारी सबकी मनःस्थिति भी वैसी ही है, उससे भिन्न नहीं है। इस बीस वर्षों में पैंतालीस के बाद विनाश की साधना और भी तीव्र हुई है, और अब हमारे पास--मैं सुनता हूं--कोई पचास हजार उदजन बम तैयार हैं। जब कि पचास हजार उदजन बम इस छोटी सी जमीन को मिटाने के लिए जरूरत से बहुत ज्यादा हैं। वैज्ञानिकों का खयाल है कि अगर इस तरह की जमीनें सात हों तो वे पचास हजार उदजन बम उन सात दुनियाओं को नष्ट कर देंगे। या हम ऐसा भी सोच सकते हैं कि मनुष्यों की संख्या तीन अरब है,

अगर इक्कीस अरब मनुष्य हों तो हमारे पास इतने साधन हैं कि इक्कीस अरब मनुष्य नष्ट हो सकेंगे। इसे वैज्ञानिक यों भी कहना पसंद करते हैं कि अगर हम एक आदमी को सात-सात बार मारना चाहें तो भी मार सकते हैं। हालांकि कोई आदमी को दोबारा मारने की जरूरत नहीं पड़ती, क्योंकि एक बार में मर गया, उसे दुबारा मारने का प्रश्न नहीं उठता।
तब यह पूछा जा सकता है कि यह विनाश की इतनी तीव्रता, बढ़ती हुई साधना,
यह विनाश के लिए इतना आयोजन कौन कर रहा है, और किसलिए कर रहा है? इस जमीन को मिटाने के लिए बहुत ज्यादा हो गया। लेकिन फिर भी दौड़ आगे है। यह दौड़ अंधी है। और इस दौड़ के पीछे राजनैतिक या सामाजिक या आर्थिक कारण नहीं है, इस दौड़ के पीछे मूलतः आध्यात्मिक कारण है। जो मनुष्य, जो मनुष्यों का समाज धर्म से और अध्यात्म से टूट जाएगा, जिसकी जड़ें परमात्मा में और आत्मा में अपना स्थात खो देंगी, जिन समाजों की, जिन लोगों की जमीन से ऊपर आकाश की तरफ देखना बंद कर देंगी। जो लोग अपने शरीर के अतिरिक्त स्वयं के भीतर और कुछ भी नहीं पा सकेंगे उन लोगों का, उन लोगों के जीवन का, उनकी चर्या का, उनके मस्तिष्क का यह अनिवार्य परिणाम होगा। यह हमारे भीतर धर्म के साथ संबंध टूट जाने का परिणाम है।
नीत्शे ने कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले कहा था कि दुनिया के कोने-कोने में यह खबर कर दी जाए कि ईश्वर मर गया है। गाड इज नाउ डैड। उसने कहा था, कोने-कोने में दुनिया को खबर कर दो कि ईश्वर अब मर गया है। डेढ़ सौ वर्षों में ईश्वर तो नहीं मरा, लेकिन यह खबर हमारे सामने आ गई है सब के, कि आदमी बहुत दिन जिंदा नहीं रह सकेगा। ईश्वर मरा या नहीं, लेकिन आदमी निरंतर मरने से मरने की तरफ चला जा रहा है।
मैंने कहना शुरू किया है, जो कौम, जो समाज ईश्वर संबंध को तोड़ लेगी वह बहुत ज्यादा दिन जी नहीं सकती। उसका जीवन, गुलदस्तों में लगे फूलों की तरह हो जाएगा, उसका जीवन जमीन पर उगे हुए पौधों के फूलों की भांति नहीं होगा। उसकी जड़ें खो जाएंगी और उसे जबरदस्ती सम्हाल कर रखना होगा। कितनी देर सम्हाल कर रखा जा सकता है? यह मैं बहुत जोर से आपसे कहना चाहूंगा कि मनुष्य के भीतर यदि दुख हो तो वह मनुष्य दूसरों को दुख देना शुरू कर देता है। जो मनुष्य भीतर पीड़ित और परेशान हो वह मनुष्य किसी दूसरे आदमी को सुखी और सम्पन्न नहीं देखना चाहता। दुखी मनुष्य की एक आकांक्षा होती है, एक ही आकांक्षा, कि शेष सारे लोग भी दुखी हो जाएं।
जो लोग धर्म से संबंध छोड़ देंगे, उनके भीतर दुख के सिवाय कुछ भी न रह जाएगा। क्योंकि धर्म का कोई संबंध परलोक से उतना नहीं है, स्वर्ग और नरक की धारणाओं से उतना नहीं है, ईश्वर के विश्वास-अविश्वास से उतना नहीं है जितना मनुष्य के भीतर एक शांतिपूर्ण संगीत को उत्पन्न करने से है। धर्म एक वैज्ञानिक पद्धति है जिसके द्वारा व्यक्ति आंतरिक स्वास्थ्य को उपलब्ध हो सकता है। जब मैं धर्म को उपयोग कर रहा हूं तो जैन, हिंदू, मुसलमान या ईसाई शब्दों से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। और इन शब्दों ने बहुत नुकसान पहुंचाया है। इन शब्दों के कारण धर्म से हमारी दृष्टि हट गई। मैंने सुना है, एक और काल्पनिक कहानी आपको कहूं। मैंने सुना है, एक फकीर हुआ। उस फकीर से किसी व्यक्ति ने पूछा कि आप तो अक्सर जाकर स्वर्ग के दर्शन करते होंगे, वहां के संबंध में कुछ खबर सुनाएं। उस फकीर ने कहा। एक दफा स्वर्ग के स्वप्न में दर्शन हुए थे तबसे फिर मैंने वापस स्वर्ग जाने की हिम्मत नहीं की। उस आदमी ने पूछाः आप यह क्या कहते हैं? उसने कहाः उस घटना को हुए बीस वर्ष हो गए। बीस वर्षों से मैं रो रहा हूं कि वह मैंने क्यों स्वर्ग को जाकर देख लिया। वह आदमी और भी हैरान हुआ। उसने कहाः स्वर्ग में क्या देखा? तो उसने कहाः एक रात्रि मैं सोया और मैंने देखा मैं स्वर्ग में खड़ा हूं। बहुत बड़ा जुलूस निकल रहा है। करोड़ों लोग मालूम होते हैं। मैंने पूछाः यह क्या है? तो लोगों ने कहाः यह परमात्मा का जन्म-दिवस मनाया जा रहा है। इस भीड़ में ऊपर घोड़े पर एक व्यक्ति सवार है। मैंने पूछाः यह कौन हैं? तो पता चला, ये ईसा मसीह हैं और ये उनके साथ उनके भक्त जा रहे हैं। करोड़ों के जुलूस के बाद दूसरा जुलूस आता था और उससे पूछाः यह कौन है? तो पता चला, ये मोहम्मद हैं। करोड़ों लोग उनके साथ भी हैं। फिर महावीर थे,

फिर बुद्ध थे। ऐसा जुलूस चलता गया, और सारा जुलूस जब निकल गया तो बिल्कुल आखिर में एक अत्यंत वृद्ध घोड़े पर एक वृद्ध आदमी सवार था, जिसके साथ कोई भी नहीं था। उससे पूछाः यह कौन है? तो पता चला यह परमात्मा हैं।
मोहम्मद के साथ हैं लोग, ईसा के साथ हैं, महावीर के साथ हैं, बुद्ध के साथ हैं, परमात्मा के साथ कोई नहीं है। नामों ने, धर्मों के संप्रदायों ने धर्म को सबसे बड़ा नुकसान पहुंचाया है। परिणाम यह हुआ कि लोग ईसाई हो सकते हैं, हिंदू हो सकते हैं, जैन हो सकते हैं, धार्मिक होने की सुविधा किसी को भी नहीं रह गई है। और एक गलतफहमी पैदा होती है कि जो आदमी जैन हो जाए, हिंदू हो जाए, ईसाइ हो जाए, उसे जैसे वह विश्वास आ जाता है कि इतना होने से वह धार्मिक हो गया। इन शब्दों के नाम जन्म के साथ मिल जाते हैं। और तब हमें बड़े भ्रम पैदा हो जाते हैं।
कोई व्यक्ति जन्म से धार्मिक नहीं होता। धार्मिक होना उपलब्धि है, अर्जन है, अचीवमेंट है। वह पैदाइशी बात नहीं है कि मैं एक हिंदू घर में पैदा हो गया तो हिंदू हो जाऊंगा या मुसलमान के घर पैदा हो गया तो मुसलमान हो जाऊंगा। पैदाइश से किसी के धार्मिक होने का क्या संबंध हो सकता है? पैदाइश से कोई संबंध नहीं हो सकता। एक डाक्टर का लड़का डाक्टर नहीं होता, इंजीनियर का लड़का इंजीनियर नहीं होता। खून में बाप का ज्ञान नहीं आता, न खून में बाप की अनुभूतियां आती हैं। तो कोई व्यक्ति पैदाइश से धार्मिक नहीं हो सकता। सारी दुनिया में यह भ्रम है कि हम पैदाइश से धर्मों में बंट गए और धार्मिक हो गए। इससे बड़ी घातक बात पैदा हुई है।
धर्म एक व्यक्तिगत उपलब्धि है जिसे मां-बाप से नहीं पाया जाता है, जिसे खुद साधना होता है। इन नामों के कारण, इस बंटाव के कारण धर्म के प्रति हमारा ध्यान नहीं रहा है। और तब ईसा, मोहम्मद और गांधी, बुद्ध, महावीर इनके साथ लोग बंटते जाएंगे, लेकिन सीधा परमात्मा के पक्ष में कोई नहीं रह जाता। यह मैं आपसे कहना चाहता हूं कि मैं जिस धर्म की बात कर रहा हूं, वह किसी विशेषण वाले धर्म की नहीं, बल्कि इस धर्म की बात कर रहा हूं जिसके साथ किसी विशेषण की कोई जरूरत नहीं है। और वह धर्म, वैसा धर्म मनुष्य के भीतर एक आंतरिक परिवर्तन के विज्ञान से ज्यादा कुछ भी नहीं है।
आंतरिक परिवर्तन का विज्ञान जब मैं आपसे कहता हूं तो मेरा प्रयोजन यह
है कि हम मनुष्य को जैसा पाते हैं जन्म के बाद, वैसा मनुष्य पर्याप्त नहीं है। मनुष्य जैसा पैदा होता है, वह मनुष्य की पूर्णता नहीं है। मनुष्य जैसा जन्मता है, वह मनुष्य की अंतिम परिणति नहीं है, वह केवल प्रारंभ है। और यह बात विचारणीय है। सारी प्रकृति में मनुष्य को छोड़ कर सारे जानवर पूरे के पूरे पैदा होते हैं। कोई जानवर अधूरा पैदा नहीं होता। अधूरा पैदा होने वाला मनुष्य अकेला प्राणी है।
किसी कुत्ते को आप यह नहीं कह सकते कि तुम कम कुत्ते हो। लेकिन किसी आदमी से आप कह सकते हैं कि तुम कम आदमी हो। किसी और जानवर को आप नहीं कह सकते कि तुम अधूरे हो। वे सब पैदाइश के साथ पूरे हैं। मनुष्य पूरा नहीं है। और यह दुर्भाग्य नहीं है, यह सौभाग्य है। क्योंकि जो पूरा पैदा होता है उसे विकास की कोई गुंजाइश नहीं होती। मनुष्य अधूरा है। मनुष्य बीज की भांति पैदा होता है, विकास उसे स्वयं करना होता है।
धर्म की स्वीकृति इस बात से प्रारंभ होती है कि हम यह बात, इस तथ्य को विचार कर लें कि मनुष्य पैदाइश के साथ पूरा नहीं है, अत्यंत अधूरा है। उसकी सारी संभावनाएं मात्र हैं, वास्तविक कुछ भी नहीं है। पाटेंशियलिटीज हैं, उन सारी बीजरूप संभावनाओं को परिवर्तित करना होगा। व्यक्ति को स्वयं अपनी सारी संभावनाओं को विकसित करना होगा। और तब यह हो सकता है कि ठीक अर्थों में उसके भीतर मनुष्य का जन्म हो सके। एक जन्म मां-बाप से मिलता है, दूसरा जन्म धर्म से मिलता है। जो पहले जन्म पर रुक जाते हैं वे वास्तविक जन्म से वंचित रह जाते हैं।
ईसा से एक अंधेरी रात में एक युवक ने जाकर पूछा था, मैं क्या करूं, सत्य को पाने के लिए मैं क्या करूं? आनंद को पाने के लिए क्या करूं? तो क्राइस्ट ने कहा था, तुझे फिर जन्म लेना होगा। वह व्यक्ति बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः फिर से जन्म लेने का अर्थ क्या है? क्राइस्ट ने कहाः फिर से

जन्म लेने का अर्थ है, एक जन्म मां-बाप के पेट में मिल जाता है, वह जन्म प्रारंभ है। दूसरा जन्म स्वयं की साधना, स्वयं के अर्जन से उपलब्ध होता है, स्वयं की चेष्टा से उपलब्ध होता है। जो उस दूसरे जन्म को नहीं पाता वह ठीक अर्थों में मनुष्य नहीं हो पाता है। वह मनुष्य हो सकता था, लेकिन हो नहीं पाया।
धर्म के विचार की शुरुआत इस भावना, इस धारणा, इस दृष्टि से होती है कि
हम यह समझें कि हम जैसे हैं, उस पर ही तृप्त हो जाना काफी नहीं है। जो लोग अपने प्राकृतिक होने से तृप्त हो जाते हैं वे लोग विकास नहीं कर पाते। धर्म बड़ी गहरी अतृप्ति है, एक बहुत डिवाइन डिसकंटेंट, जिसे हम कहें एक बहुत दिव्य प्यास, अतृप्ति, असंतोष है। दूसरे लोग आपसे कहेंगे, धर्म संतोष सिखाता है। मैं आपसे कहूंगा, ऐसा नहीं है, धर्म असंतोष सिखाता है। जो संतुष्ट हैं वे धार्मिक हो ही नहीं सकेंगे। जिनकी बड़ी गहरी असंतुष्टि है, जो अपने होने से असंतुष्ट हैं, जैसा अपने को पाते हैं उसमें कुछ भी वैसा नहीं पाते कि उससे तृप्त हो जाएं, ऐसे लोग ही धार्मिक हो सकते हैं।
धर्म की शुरुआत एक आंतरिक असंतोष से होती है। और वह आंतरिक असंतोष इस तथ्य के अस्वीकार से पैदा होता है कि हम जैसे हैं, वही होना हमारी नियति और भाग्य नहीं है, उससे बहुत भिन्न, उससे बहुत ऊपर मनुष्य को अतिक्रमण किया जा सकता है। मनुष्य अपना अतिक्रमण कर सकता है। अशांत है तो शांत हो सकता है। दुखी है तो आनंद को उपलब्ध हो सकता है। अंधकार में है तो प्रकाश को पा सकता है। कैसे दुख आनंद में परिणत होगा, कैसे अशांति शांति बनेगी, कैसे विसंगति, अराजकता संगीत में पैदा होगी, इसके विज्ञान का नाम ही धर्म है। ऐसे धर्म के संबंध में थोड़ी सी बातें, आज की संध्या में आपसे कहना चाहूंगा। स्वाभाविक है कि ऐसे धर्म का कोई भी संबंध अंधविश्वास से नहीं होगा। आपसे मैं नहीं चाहूंगा कि कुछ बातों पर विश्वास करें। जो लोग आपसे कहते हैं कि कुछ बातों पर विश्वास कर लें, परमात्मा पर, आत्मा पर, स्वर्ग पर या नरक पर, वे लोग आपसे गलत बात कहते हैं। विश्वास का कोई सवाल नहीं है। किसी अंधे आदमी को यह कहना कि प्रकाश का विश्वास कर लो, अत्यंत गलत बात है। प्रकाश पर विश्वास नहीं किया जाता। या तो प्रकाश को जाना जाता है या नहीं जाना जाता है।
धर्म का संबंध भी अंधविश्वासियों से नहीं है। कोई संबंध नहीं है इस बात से कि आप विश्वास करें। संबंध है इस बात से कि आप विवेक के लिए चेष्टा करें। मैंने आपको कहाः धर्म का संबंध अंधविश्वासों से नहीं है। और जो लोग धर्म के नाम से अंधविश्वासों का प्रचार कर रहे हैं, या करते हैं, या किया है, उन सारे लोगों ने धर्म को नुकसान पहुंचाया है। दुनिया में जो नास्तिकता पैदा हुई है वह धर्म के विरोध में नहीं, अंधविश्वासों के विरोध में पैदा हुई है। दुनिया में जो अधार्मिक लोगों को बल मिला है, वह विज्ञान से नहीं मिला, न विज्ञान की खोजों से मिला बल्कि धर्म के नाम पर चलते हुए अंधविश्वासों की प्रतिक्रिया से मिला है। और जब तक धर्म के नाम पर अंधविश्वास होंगे तब तक विचारशील लोग धर्म के पक्ष में खड़े नहीं हो सकते हैं। धर्म के पक्ष में अनिवार्यतया तब अविचारशील लोग रह जाएंगे।
और आज ऐसा हुआ है, यह दुखद घटना घटी है कि जितने विचारशील लोग हैं वह धर्म के विरोध में खड़े होते जा रहे हैं और जितने विचारहीन लोग हैं वे धर्म के पक्ष में रहते जा रहे हैं। यह खतरनाक है स्थिति। और जहां विचारहीन लोग रह जाएंगे, वह पक्ष जीत नहीं सकता, उसकी हार तो निश्चित है। और इसके पीछे धर्म की कोई कमजोरी नहीं है। दुनिया में बढ़ती हुई नास्तिकता धर्म का मुकाबला नहीं कर सकती, लेकिन अंधविश्वासों का मुकाबला कर सकती है। और अंधविश्वासों का खंडन कर सकती है।
इसलिए मैं आपसे कहूं, यह कहना चाहता हूं कि इस वैज्ञानिक युग में आए दिन रोज-रोज विज्ञान का विकास होगा और केवल वही शुद्ध धर्म टिक सकेगा और रह सकेगा जिसकी आधारशिला विवेक पर और ज्ञान पर रखी हो; अंधविश्वासों और अंधश्रद्धाओं पर नहीं। फिर मैंने आपसे कहा कि कोई मनुष्य बिना जाने कैसे विश्वास कर सकता है? मैंने आपसे कहाः किसी अंधे को हम प्रकाश पर विश्वास करने को कहें तो वह गलत बात होगी।

एक दफा बुद्ध एक गावं से निकलते थे और कुछ लोग एक अंधे आदमी को लेकर उनके पास गए और उन्होंने बुद्ध को कहाः हम इस आदमी को बहुत समझाते हैं कि प्रकाश है, लेकिन यह आदमी मानने को तैयार नहीं है। विपरीत यह ऐसी दलीलें देता है और यह सिद्ध करने की कोशिश करता है कि प्रकाश है ही नहीं, तुम झूठ बोलते हो। बुद्ध ने कहा, इसकी दलीलें क्या हैं? उन लोगों ने कहाः यह हमारा अंधा मित्र कहता है कि अगर प्रकाश है तो मैं छूकर देखना चाहता हूं क्योंकि जो भी चीज है वह छूकर देखी जा सकती है। फिर यह कहता है, अगर प्रकाश है तो उसे ठोको, बजाओ, कुछ आवाज पैदा हो क्योंकि जिसकी भी सत्ता है, उसको ठोका और बजाया जा सकता है। फिर यह अंधा आदमी कहता है, यह भी न सही, मैं थोड़ा उसका स्वाद लेकर देखूं। यह भी न हो सके तो प्रकाश की गंध लेकर देखूं।
ये चार इंद्रियां उसके पास हैं, ये चार ही उसके लिए प्रमाण हैं और वे
इन चार के भीतर प्रकाश के प्रमाण चाहता है। बुद्ध ने कहाः इसमें गलती उसकी नहीं, जो समझते हैं उनकी है वह तो ठीक ही कहता है। गलती तुम्हारी है कि उसे तुम प्रकाश को समझाते हो। प्रकाश को समझाने की जरूरत नहीं है। उसके आंख के उपचार की आवश्यकता है। बुद्ध ने कहाः इसे किसी विचारक के पास नहीं, किसी वैद्य के पास ले जाओ। इसे किसी विचार की, किसी उपदेश की नहीं उपचार की जरूरत है। आंख ठीक हो तो प्रकाश है आंख ठीक न हो तो प्रकाश नहीं है। प्रकाश के होने का सिवाय आंख के और कोई प्रमाण नहीं है।
उसे चिकित्सक के पास ले जाया गया, और संयोग की बात कि कुछ ही दिनों के प्रयोग से उसकी आंख की जाली थी, वह कट गई। एक दिन आकर वह बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा, और उसने कहा कि धन्य हैं आप। प्रकाश तो है, मैं ही अंधा था। और यही सत्य धर्म के संबंध में भी है। तो वह समझाने की बात नहीं है, उपचार की बात है। यदि हमारे भीतर आंख खुल सके विवेक की और ज्ञान की, तो हम अनुभव करेंगे कि धर्म के सत्य हैं। वे हमें नहीं मालूम होते थे, क्योंकि हमारे पास उन्हें ग्रहण करने की क्षमता, रिसेप्टिविटी, ग्राहकता नहीं थी। आंख नहीं थी जो उन्हें देखे।
तो जब मुझसे कोई पूछता है, ईश्वर है तो मैं उससे ईश्वर की बात नहीं करता क्योंकि वह तो फिजूल है। जब मुझसे कोई पूछता है, आत्मा है? तो मैं उससे आत्मा की बात नहीं करता, यह तो फिजूल है। इसका कोई अर्थ नहीं है। मैं तो उससे यही बात करता हूं कि क्या उसके पास इन दो आंखों के अलावा कोई तीसरी आंख नहीं है, न आत्मा है, न परमात्मा है, कुछ भी नहीं है। हम सब दो ही आंखों पर समाप्त हो जाते हैं।
वह लोग, जो तीसरी आंख को उपलब्ध होते हैं, वे ही लोग केवल ठीक अर्थों में धार्मिक हो पाते हैं। वह तीसरी आंख कैसे खुले वह शांति की अंतदृष्टि कैसे उपलब्ध हो उसके संबंध में थोड़ी सी बात आपसे कहूंगा।
तीन तो भूमिका के सूत्र हैं--इन तीन सूत्रों को स्मरण रखने जैसा है। अगर इन सूत्रों को कोई साधे तो भूमि साफ हो जाएगी। और चौथा सूत्र है, उसे कोई साधे तो उसकी आंख खुलेगी और तब वह जानेगा कि जिस जगत को हम देखते थे वही पूर्ण नहीं है जगत और बहुत है जो उसके पीछे छिपा है। और जिन लोगों को हम देखते थे उनकी देहें सब कुछ नहीं हैं, देहों के पीछे और बहुत कुछ है। और तब उसे दिखाई पड़ेगा कि जो दिखाई पड़ता है वह ना कुछ है जो नहीं दिखाई पड़ता वह सब कुछ है। दृश्य तब ना कुछ और अदृश्य तब सब कुछ हो जाता है। तब आंख और हाथ से जो पकड़ में आता है वह अत्यंत क्षुद्र मालूम होता है। हम जो दो आंखों के ही केवल मालिक हैं, पुदगल पर, पदार्थ पर, प्रकृति पर समाप्त हो जाएंगे। जो तीसरी आंख के मालिक होते हैं वे परमात्मा को अनुभव कर पाते हैं। वह तीसरी आंख कैसे खुल सकती है, उसके तीन तो भूमिका के सूत्र आपसे मैं कहूं और एक केंद्रीय सूत्र--ऐसे चार बातों पर हम विचार करेंगे।
पहली बात--जैसा मैंने कहा, मनुष्य जितना भीतर शांत हो जाए, उसके भीतर जितना कोलाहल विलीन हो जाए, उसके भीतर अराजकता, स्वरों की भीड़ जितनी कम हो जाए, उसके भीतर जितनी संगीतमयता, हार्मनी पैदा हो, जितनी एकरागता पैदा हो, जितनी तल्लीनता उपलब्ध हो उतनी ही ज्यादा संभावना उसके भीतर आंखों के अंतस के आंखों के खुलने की होगी। यह संगीत की स्थिति तीन बातों से पैदा होती है। हम अपने हाथ से विसंगीत पैदा करते हैं। अपने हाथ से टैंशन और

तनाव पैदा करते हैं, अपने हाथ से कलह और विग्रह पैदा करते हैं। जब मैं क्रोध करता हूं तो अपने भीतर असंगीत पैदा करता हूं और जब मैं किसी को प्रेम करता हूं तो अपने भीतर संगीत पैदा करता हूं। मैं जो भी कर रहा हूं, उसका परिणाम मेरे भीतर होगा। हर कर्म के दोहरे परिणाम हैं। एक परिणाम तो है जो जगत में दिखाई पड़ेगा और एक परिणाम है जो मेरे भीतर होगा। चूंकि मैं कर रहा हूं इसलिए यह असंभव है कि मेरा कोई कर्म मुझे न छुए। मेरा प्रत्येक कर्म मुझे छुएगा। जब मैं किसी को गाली दे रहा हूं, तब मेरे भीतर जरूर कुछ होगा।
एक फकीर एक गांव से निकलता था। कुछ लोगों ने उसे गालियां दीं। बीच बाजार में रोका और अपशब्द कहे। उस फकीर ने कहाः मुझे जल्दी है और दूसरे गांव जाना है। अगर तुम्हारी बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं। उन लोगों ने कहाः यह कोई बात न थी, हमने बहुत बुरी गालियां दी हैं, तुम्हारा अपमान किया है। इसका उत्तर चाहिए। वह फकीर हंसने लगा और वह बोलाः हम केवल इन बातों का उत्तर देते हैं जो बातें हमारे भीतर संगीत लाती हों। हम उन बातों का उत्तर नहीं देते जो हमारे भीतर विसंगीत पैदा करे। उस फकीर ने कहाः पिछले गांव में कुछ लोग मुझे भोजन भेंट करने आए थे, बहुत फल और मिष्ठान्न लाए थे। मैंने कहा, मेरा पेट भरा है। वे उन्हे वापस ले गए। तुम गालियां लाए हो, मैं अगर कहूंगा, मैं नहीं लेता; फिर तुम क्या करोगे? इन्हें वापस ले जाने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। उस फकीर ने कहाः गाली वही केवल आती है जो ले ली जाए, जो न ली जाए वह वापस लौट जाती है।
हम जगत में कुछ भी ले रहे हैं। और तब वह कुछ भी हमारे भीतर जाकर बहुत विसंगीत पैदा करता है। और हम जगत में कुछ भी दे रहे हैं, और वह दिया हुआ दूसरों में भी विसंगीत पैदा करता है और हमारे भीतर भी विसंगीत पैदा करता है। जिस व्यक्ति को सत्य की, शांति की और आलोक की तलाश हो, उसे जानना होगा कि वह क्या लेता है और क्या देता है। उसे स्मरण रखना होगा लेते समय कि केवल वे ही स्वर भीतर लिए जाएं जो उसके भीतर कलह को नहीं, विग्रह को नहीं पैदा करेंगे। वे ही स्वर भीतर लिए जाएं जो उसके भीतर के संगीत में सहयोगी होंगे, उसे और समृद्ध करेंगे। और केवल वे ही कर्म किए जाएं जो उसकी आंतरिक शांति को, उसकी आंतरिक समृद्धि को नष्ट करने वाले न हों। ऐसा व्यक्ति यह सम्यक बोध रखेगा। तो क्या हम कर रहे हैं और क्या हम ले रहे हैं ये दोनों बातें विचारणीय हैं। इन दोनों बातों में तीन सूत्र आपको कहूं।
पहला सूत्र--वे लोग प्रेम को नहीं साधते हैं, और हममें से बहुत कम लोग प्रेम को साधते हैं। हमे याद ही नहीं कि प्रेम को कैसे साधा जाए। हमें पता नहीं है कि प्रेम भी साधा जा सकता है। हमें स्मरण भी नहीं है कि प्रेम फैलाया जा सकता है। जो व्यक्ति जितना ज्यादा अपने बाहर के जगत के प्रति प्रेम से भरता है, यह जगत उसके भीतर उतने ही कम विरोधी स्वर और विसंगीत पैदा करता है। अगर कोई व्यक्ति सारे जगत के प्रति अनंत प्रेम से भर जाए तो इस जगत से उसके भीतर कोई भी कांटे नहीं फेंक पाएंगे। इस जगत से उसके भीतर ऐसे स्वर नहीं फेंके जाएंगे जो वहां जाकर खलल पैदा करते हों।
मैं एक पहाड़ पर था और वहां हम एक चोटी को देखने गए। मेरे साथ कुछ मित्र थे। उस चोटी का नाम था इको प्वाइंट। वहां जो भी हम जोर से चिल्लाते थे, उस तरफ से पहाड़ दोहरा देते थे। मेरे मित्र ने संगीत गाए तो उस तरफ से गीत लौट आए और मेरे मित्रों ने जोर से आवाजें कीं तो वे आवाजें लौट आईं। जब हम वहां से लौटते थे तो वे सारे लोग कहने लगे, बहुत अदभुत जगह है। मैंने कहा, यह जगह सारी दुनिया का प्रतीक है। यह सारी दुनिया इको प्वाइंट है। यह सारी दुनिया प्रतिध्वनि करती है। हम जो बोलते हैं, वह हम पर वापस लौट आता है। हम अगर घृणा फेंकते हैं तो घृणा वापस लौट आती है। हम अगर कांटे फेंकते हैं तो कांटे वापस लौट आते हैं।
हम अगर प्रेम फेंकते हैं, प्रेम लौटता है। हम अगर गीत फेंकते हैं तो गीत लौट आता है। वे लोग जो अपने भीतर शांति को पैदा करना चाहते हैं, इस जगत के किसी भी मनुष्य के जीवन में कोई अशांति पैदा करने की चेष्टा नहीं करेंगे। क्योंकि अशांति फेंकी जाए तो अशांति वापस लौटने लगती है। यही शाश्वत नियम है। हम जो देते हैं, उसके अतिरिक्त हमें कुछ भी नहीं मिलेगा।

यह असंभव भी है कि हमें कुछ और मिल जाए। तो जिन्हें प्रेम चाहिए वे दूसरों को प्रेम दें और जिन्हें फूल चाहिए वे दूसरों के रास्तों पर फूल बिछा दें। एक बहुत पुराना उल्लेख है। एक आश्रम से तीन विद्यार्थी अपनी अंतिम परीक्षा देकर वापस लौटने को थे। उनके गुरु ने बहुत कहा था, अंतिम परीक्षा भी होगी। जब वे अंतिम दिन जाने लगे तो उनके गुरु ने कहा, गुरु से उन्होंने कहाः अंतिम परीक्षा नहीं हुई। उस गुरु ने कहाः छोड़ो भी। समय हुआ, हो जाएगी। फिर अंतिम विदा का दिन भी आ गया और परीक्षा नहीं हुई। वे तीनों विद्यार्थी पैर छूकर, प्रणाम करके गुरु से विदा लेकर गांव के बाहर जाने लगे।
सांझ होने लगी, सूरज ढलने को था। वे एक पगडंडी के रास्ते से गांव के बाहर होते थे। उन्होंने पाया कि रास्ते के किनारे बहुत से कांटे पड़े हुए हैं। एक तो छलांग लगाकर निकल गया, दूसरा किनारे से निकल गया। एक विद्यार्थी रुका, उसने वे कांटे बीने और झाड़ी में डाले। और जब वह झाड़ी में डालता था तो तीनों ने आश्चर्य से देखा। उनका गुरु झाड़ी के बाहर आया। और उसने कहाः दो विद्यार्थी, जो कांटों को छोड़ कर आगे बढ़ गए हैं, वे वापस लौट आएं। उनकी शिक्षा अभी पूरी नहीं हुई। यहां अंतिम परीक्षा थी। जिसने कांटे बीन कर डाल दिए हैं वह जा सकता है। क्योंकि उनके गुरु ने कहाः जो व्यक्ति दूसरों के रास्ते पर कांटे देख कर निकल जाए, उन्हें उठाए नहीं उस व्यक्ति के जीवन में शांति उपलब्ध नहीं होगी। क्योंकि जो व्यक्ति दूसरे के रास्ते पर कांटे पड़े देख कर निकल जाता है वह आज नहीं कल यह भी कर सकता है कि दूसरों के रास्ते पर कांटे डाल दे। और जो व्यक्ति दूसरे के मार्ग से कांटे उठा लेता है, यह व्यक्ति हो सकता है, कल विकसित हो तो दूसरों के रास्ते पर फूल भी डाल दे। और जो हम दूसरों के रास्ते पर करेंगे, वही हमारे रास्ते पर हो जाता है।
यह स्मरणीय है--जिस व्यक्ति को अंतस चक्षु खोलने हों उसे प्रेम की विस्तीर्णता करनी होगी, उसे अपने प्रेम को फैलाना होगा। उसे अपने प्रेम को दूर-दूर के कोने छू सकें, इतना विस्तार देना होगा। इस प्रेम के विस्तार का नाम ही अहिंसा है, या करुणा है, या दया है, या प्रेम है। ये शब्दों के भेद होंगे लेकिन बात यही है कि हमारी दृष्टि में यह हो। हमें यह स्मरण हो प्रतिक्षण कि मेरे द्वारा किसी को भी दुख न पहुंच पाए। अगर दुख पहुंचता है तो आज नहीं कल, दुख मुझ पर वापस लौटेगा। और तब यह असंभव होगा कि मैं अपने भीतर के अंतश्चक्षु को खोज लूं।
अहिंसा या प्रेम का विस्तार--यह कैसे हम करें? सबसे पहले प्रेम का विस्तार करना चाहिए प्रकृति पर, चांद-तारों पर, फूलों पर, आकाश पर। इसलिए सबसे पहले प्रकृति पर विस्तार साधना चाहिए क्योंकि प्रकृति आपका प्रतिरोध नहीं करती, प्रकृति अपनी शत्रु नहीं होती। लेकिन हम तो ऐसे अंधे लोग हैं कि हममें से शायद ही कुछ लोग होंगे जो रात को चांद-तारों को देखते हों। और जो अपने को धार्मिक समझते हैं, वह तो बिल्कुल ही नहीं देखते होंगे। जो व्यक्ति चांद-तारों को देख कर प्रेम से नहीं भरता, जिसके हृदय में उनका सौंदर्य आंदोलन नहीं पैदा करता, जो व्यक्ति समुद्र के किनारे बैठ कर थोड़ी देर के लिए समुद्र की लहरों के साथ एक नहीं हो जाता, जो व्यक्ति दरख्तों के पास बैठ कर थोड़ी देर को भूल नहीं जाता कि मैं भी दरख्त हूं या मनुष्य हूं, वह व्यक्ति परमात्मा को अनुभव नहीं कर सकता।
एक साधु के आश्रम में एक युवक ने जाकर पूछा था, परमात्मा में कहां से प्रवेश करूं? उस साधु ने कहाः तुम पास में पहाड़ पर झरने की आवाज सुनते हो? उस युवक ने सुना, पीछे ही पहाड़ से एक प्रपात गिरता था, जलप्रपात होता था। जोर की आवाज थी, उसने कहाः सुनाई पड़ती है। उस फकीर ने कहाः सुनाई पड़ती है। उस फकीर ने कहाः यही दरवाजा है, इससे ही प्रवेश कर जाओ। बोलाः इससे कैसे प्रवेश करूंगा? उस फकीर ने कहाः उस जल के धारा के पास बैठो और इतने शांत, इतने प्रेम से बैठो कि तुम्हें यह भूल जाए कि तुम धारा हो या धारा से अलग हो। जिस क्षण तुम्हें स्मरण न रह जाए कि तुम और धारा में कोई भेद है, उस क्षण तुम जानना कि तुम प्रभु के बहुत निकट हो।

सबसे पहले प्रेम का विस्तार प्रकृति पर करने की जरूरत है। चारों तरफ
जो अनंत प्रकृति है, जो अनंत रहस्यमय प्रकृति है, उस पर प्रेम को फैलाने की बात है। जब प्रेम उस पर फैलेगा, जब उसका स्पंदन अनुभव होगा, जब हम अपने को आत्मसात कर सकेंगे उसके साथ, जब हमें प्रतीत होगा, हम उसके साथ एक हैं... और यह मैं आपसे कहूं, अगर आप चौबीस घंटे में घड़ी दो घड़ी के लिए प्रकृति के पास बैठ कर अपनी अहंता को भूल जाएं थोड़ी देर के लिए पहाड़ों की चट्टानों के साथ एक हो जाएं, थोड़ी देर के लिए चांद-तारों के साथ एक हो जाएं, पानी के झरने के साथ एक हो जाएं तो आपके जीवन में बड़ी गहरी शांति का अवतरण होना शुरू होगा। जो व्यक्ति घंटे भर को भी चौबीस घंटे प्रकृति के सान्निध्य को अनुभव करता है उसके तेईस घंटे बदलने शुरू हो जाएंगे।
मनुष्य प्रकृति से रोज टूटता जा रहा है। हमारी सारी... सारे संबंध मनुष्य-कृत चीजों से होते जाते हैं, प्रकृति से हमारे संबंध विच्छिन्न होते जा रहे हैं। बहुत कम लोग हैं जो आंख उठाकर आकाश को देखते हैं। बहुत कम लोग हैं जो सूरज को उगते देखते हैं और बहुत कम लोग हैं, जो अपने चारों तरह अनंत रहस्यमय प्रकृति है, उससे कोई संबंध रखते हों। हमारे सब संबंध मनुष्य से हैं, मनुष्य के द्वारा बनाई चीजों से हैं--मशीनों से, मकानों से, रास्तों से और आदमियों से हमारे संबंध हैं। यह घातक स्थिति है। जिसे अंतश्चक्षु खोलने हों, उसके लिए सहयोगी नहीं हैं।
पहली बात है, प्रेम प्रकृति पर विस्तीर्ण हो। और दूसरी बात है, जिस भांति प्रकृति पर उसे फैलाया उसी भांति मनुष्य समाज पर उसे फैलाना। हम सब प्रेम करते हैं। धार्मिक लोग हैं, जो आपसे कहेंगे, यह प्रेम बुरा है, इसे छोड़ दें। मैं नहीं कहता। मैं आपसे कहता हूंः आप थोड़े से घेरे में प्रेम करते हैं। घेरे में प्रेम का होना बुरा है। प्रेम को छोड़ें नहीं घेरे को तोड़ दें। प्रेम के घेरे को इतना बड़ा बनाएं कि उस घेरे के बाहर कोई न रह जाए।
दक्षिण में आचार्य हुए, रामानुज। वे एक गांव में गए। एक व्यक्ति ने उनसे कहा कि मैं परमात्मा को पाना चाहता हूं। रामानुज ने उससे पूछाः तुम किसी को प्रेम करते हो? वह व्यक्ति बोलाः आप कैसी बात करते हैं? मेरा किसी से कोई प्रेम नहीं है। मैं संन्यासी होना चाहता हूं। मुझे परमात्मा को पाना है। रामानुज ने दुबारा पूछाः खोज कर, सोच कर देखो। किसी को थोड़ा-बहुत प्रेम करते हो? वह व्यक्ति बोलाः बिल्कुल भी प्रेम नहीं करता। रामानुज ने तीसरी बार पूछा। उसने पुनः कहाः मैं किसी को प्रेम नहीं करता। मुझे तो परमात्मा को पाना है। रामानुज ने कहाः बहुत मुश्किल है। अगर तुम किसी को प्रेम करते होते तो परमात्मा पाने का कोई रास्ता हो सकता था क्योंकि प्रेम को बढ़ाना है, मिटाना नहीं है।
अगर आप अपने मित्र को प्रेम करते हैं और एक पति अपनी पत्नी को प्रेम करता है, एक भाई अपनी बहन को प्रेम करता है, एक मित्र एक मित्र को प्रेम करता है, पिता पुत्र को प्रेम करता है--इस प्रेम के विरोध में परमात्मा नहीं है, इस प्रेम के विस्तार में परमात्मा है। यह प्रेम जो अभी एक दो के प्रति मालूम होता है, इसे फैलाना है और बढ़ाना है। इसका घेरा गिरा देना है और प्रेम को बढ़ने देना है। और जिस प्रेम के बाहर कोई भी नहीं रह जाएगा उस दिन प्रेम का अनुभव ही परमात्मा का अनुभव हो जाता है।
जिन लोगों ने प्रेम के विरोध में धर्म को खड़ा किया है उनका धर्म संसार
के विरोध में खड़ा हो गया, और जो धर्म संसार के विरोध में खड़ा होगा, वह धर्म जीवित नहीं रह सकता। और संसार में और सत्य में विरोध नहीं है। संसार और सत्य में विकास है। प्रेम और परमात्मा में विरोध नहीं है। संसार और सत्य में विकास है। प्रेम और परमात्मा में विरोध नहीं है। प्रेम का ही विकास परमात्मा है। जीवन में जो भी थोड़ा-बहुत शुभ है, उस शुभ को विस्तीर्ण करना, उसे अनंत की सीमाओं तक ले जाना है। प्रेम की प्रकृति पर विस्तीर्ण करें और प्रेम को मनुष्य पर फैलने दें। ऐसे अहिंसा का बोध पैदा होता है। और जिस व्यक्ति में अहिंसा का बोध पैदा हो जाता है वह असमर्थ होता है किसी को दुख देने में, किसी को पीड़ा पहुंचाने में, किसी के मार्ग पर कांटे गिराने में। और जो व्यक्ति असमर्थ हो जाता है किसी पर दुख पहुंचाने में, यह जगत उसे दुख

पहुंचाने में असमर्थ हो जाता है। और तब स्वभावतः उसके भीतर एक शांति की स्थापना होनी शुरू होती है।
दूसरा सूत्र है, अपरिग्रह। पहला सूत्र हुआ अहिंसा, दूसरा सूत्र है अपरिग्रह। जो व्यक्ति जितना ज्यादा इकट्ठा करता जाता है उतना बोझ से और भार से भरता जाता है। और जिस व्यक्ति को ऊंची पहाड़ियां चढ़नी हों उसे निर्भार होना जरूरी है। जो व्यक्ति अंतश्चक्षु को खोलना चाहता हो, उसके पास जितना कम भार हो उतना योग्य है। हम जितना इकट्ठा करते जाते हैं उतने ही हम छोटे होते जाते हैं और दबते जाते हैं। इस जमीन पर सबसे दरिद्र वे ही हैं जिनके पास सबसे ज्यादा परिग्रह है।
एक फकीर ने एक दफा कुछ लोगों को कहा था कि मेरे पास कुछ रुपये हैं, यह मैं गांव के सबसे दरिद्र आदमी को देना चाहता हूं। गांव के दस दरिद्र लोग इकट्ठे हो गए। उन्होंने कहाः वह रुपये हमें दे दो। वह फकीर बोलाः दरिद्रतम आ जाए तो दूंगा। भिखमंगे से भिखमंगे लोग आए लेकिन फकीर यह कहता रहा कि उस दिन की प्रतीक्षा में हूं जिस दिन अंतिम दरिद्र आदमी आएगा, उसको मैं दूंगा। लोग थक भी गए, समझ में भी नहीं आता कि वह किस दरिद्र की तलाश में है।
फिर एक दिन राजा की सवारी निकली और उसने वह रुपये राजा के पास फेंक दिए। राजा हाथी पर बैठा था, उसने रुपये ऊपर फेंक दिए। राजा को पता था इस फकीर के इस वचन का कि वह अपने रुपये दरिद्रतम आदमी को देगा। राजा ने सवारी रोकी और उसने कहाः यह क्या पागलपन करते हो? कहते थे दरिद्रतम को दोगे, और मुझे दे रहे हो? उस फकीर ने कहाः मेरी नजरों में इस गांव में तुमसे ज्यादा दरिद्र और कोई भी नहीं है। वह राजा बोलाः मैं समझा नहीं। उस फकीर ने कहाः जिसकी मांग सबसे बड़ी है वह सबसे बड़ा भिखमंगा है। जो सबसे ज्यादा मांग रहा है, फिर भी तृप्त नहीं होता और मांगता चला जाता है वह उतना ही बड़ा भिखमंगा है। जिन्हें भिखमंगा नहीं होना है उन्हें मांग कम करनी होगी। जो जितनी मांग को क्षीण करता है उतना मालिक होता जाता है। जिसकी कोई मांग नहीं रह जाती वह सम्राट हो जाता है। जिसकी जितनी ज्यादा मांगें होती चली जाती हैं वह उतना क्षुद्र होता जाता है। अंत में मांगे ही मांगे रह जाती हैं। वह मांगने वाला ही रह जाता है। और तब वह भिखमंगे की हालत में होता है।
जिनका परिग्रह ज्यादा है, वे भिखमंगे हैं। और जो परिग्रह को बढ़ाने की फिकर में हैं वे भिखमंगे की स्थिति में हैं। जो उसे क्षीण करते हैं और जिनकी दृष्टि सदा यह है कि मैं निर्भार हो जाऊं और मुक्त हो जाऊं... क्यों? क्योंकि जितनी चीजें आपके पास होंगी, यह मत सोचें कि आपने उसको बांधा है। यह भी स्मरण रखें, जिसे आप बांधते हैं, वह आपको बांध लेता है।
सुकरात के संबंध में उल्लेख है। एक दिन गांव की सड़क पर एथेंस में एक आदमी एक गाय को बांधे हुए जाता था। सुकरात ने उससे पूछा, मित्र, यह गाय तुम्हें बांधे हुए है या तुम इस गाय को बांधे हुए हो? यह फिजूल की बात थी। उस आदमी ने कहाः क्या फिजूल की बातें आप कर रहे हैं? मैं गाय को बांधे हुए हूं। सुकरात ने कहाः मैं ऐसा नहीं देखता। मैं ऐसा नहीं देखता कि तुम गाय को बांधे हुए हो। लाओ, मैं गाय को छोड़ दूं, फिर देखूं कौन किस के पीछे भागता है? उसने कहाः लाओ मैं गाय का बंधंन छोड़ दूं सुकरात ने कहाः फिर देखूं गाय तुम्हारे पीछे भागती हैकि तुम गाय के पीछे भागते हो। उसने बंधन छोड़ दिया, गाय भागी, और वह आदमी गाय के पीछे भागा। तो सुकरात ने कहाः यह मत सोचो कि तुम गाय को बांधे हुए हो तुम भी गाय से बंधे हुए हो। जो जिसे बांधता है उससे बंध भी जाता है। जिसके जितने परिग्रह हैं उसके उतने गहरे बंधन हो जाते हैं। और जो बहुत ज्यादा बंधन से घिरा हो वह मुक्ति के आकाश में नहीं उड़ सकता। जिसे अपनी नाव सागर में छोड़नी हो उसे किनारे से नाव की जंजीरें खोल देनी होंगी। यह दृष्टि भीतर होनी जरूरी है।
यह दृष्टि का एक उल्लेख मुझे स्मरण आता है। गांधी जी बंद थे जेल में
और सरदार पटेल भी उनके पास थे। गांधी जी उन दिनों सुबह दस छुहारे फुला कर लेते थे। सुबह का नाश्ता दस छुहारे लेते थे। वल्लभ भाई ने सोचा, दस तो बहुत कम होते हैं, इसमें क्या नाश्ता होगा? और गांधी जी का शरीर ऐसा कमजोर है कि थोड़ा नाश्ता ज्यादा हो तो अच्छा है। तो उन्होंने दस की जगह पंद्रह छुहारे

फुला दिए। गांधी जी ने देखा कि छुहारे कुछ ज्यादा हैं। उन्होंने पूछाः तो वल्लभ भाई ने कहाः कुछ ज्यादा नहीं हैं। दस और पंद्रह में क्या कोई भेद होता है? जैसे दस वैसे पंद्रह। गांधी जी ने कहाः वल्लभ भाई तुमने मेरी आंखें खोल दीं। वल्लभ भाई समझे, यह तो बड़ा अच्छा हुआ। लेकिन गांधी जी ने उस दिन पांच ही छुहारे खाए और बोलेः जब दस और पंद्रह में कोई फर्क नहीं तो पांच और दस में भी कोई फर्क नहीं रह जाएगा।
यह अपरिग्रही की दृष्टि है। वह वहां तक बन सके, जितने कम से बंधे उतना सिकोड़ता जाता है। और यह बड़े आश्चर्य की बात है, जिसके पास परिग्रह की पकड़ ज्यादा होती है, उसकी आत्मा उतनी छोटी हो जाती है, और जिसके पास परिग्रह की पकड़ जितनी कम होती है, उसकी आत्मा उतनी बड़ी हो जाती है। जो परिपूर्ण परिग्रह को उपलब्ध होता है वह परिपूर्ण आत्मा को उपलब्ध हो जाता है। जो परिपूर्ण परिग्रह को लाद लेगा, वह पाएगा, उसकी आत्मा उसी मात्रा को सिकुड़ कर छोटी होती चली जाती है। यह दूसरा सूत्र है, जिसे शांति की आंख खोलनी हों उसके लिए, कि वह अपरिग्रह की दृष्टि रखे। अहिंसा का भाव हो, अपरिग्रह की दृष्टि हो, और तीसरा सूत्र है निर-अहंकारिता--निर-अहंकार का बोध हो।
जो व्यक्ति जितने अहंकार से भरा है, जिस व्यक्ति को निरंतर जितना मैं
का स्वर मालूम होता है अपने भीतर, वह उतना ही अंतर्दृष्टि को नहीं खोल पाएगा। सबसे बड़ा धुआं और सबसे बड़ा अंधकार, और सबसे बड़ा ताला मनुष्य के ऊपर अहंकार का है। हम इतने ज्यादा मैं से भरे हैं कि हम मैं के ऊपर नहीं उठ पाते। जिसे मैं के ऊपर उठना है और आत्मा को जानना है, उसे मैं को क्षीण करना होगा, गलाना होगा। और पिघलाना होगा। उठते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, काम करते यह स्मरण रखना जरूरी है कि मेरी क्रिया अहंकार से तो नहीं निकल रही है? मैं जो कर रहा हूं, वह मेरी अहंता का विस्तार तो नहीं है? अगर यह ध्यान में हो कि मैं जो मंदिर बना रहा हूं, वह मेरे अहंकार का मंदिर तो नहीं है? वह मंदिर मैं इसलिए तो नहीं बना रहा कि लोग जानें कि मैंने बनाया? और जमीन पर अधिकतम मंदिर ऐसे लोगों ने बनाए हैं, तो उन मंदिरों में भगवान की प्रतिष्ठा नहीं है, उन मंदिरों में अहंकारों की प्रतिष्ठा है। वह मंदिर मंदिर नहीं रह जाते।
अगर आप किसी को दान करते वक्त यह खयाल रख रहे हैं कि मैं कैसा दे रहा हूं। मैं देने वाला कैसा अदभुत हूं, तो आपका दान व्यर्थ हो जाता है, उसमें कोई अर्थ नहीं रह जाता। वह मैं के कारण सब विनष्ट हो जाता है। आपकी प्रत्येक क्रिया में राह पर चलते उठते-बैठते आपका ध्यान रखने की जरूरत है कि मैं खड़ा न हो, मैं साथ न हो। जो चर्या, जितनी मैं-शून्य हो जाती है, जो व्यक्ति अपने जीवन व्यवहार में जितना मैं से शून्य हो जाता है, उतना ही अधिक, उतना ही ज्यादा आत्मा की तरफ उसकी गति हो जाती है।
स्मरण रखें, मैं की दिशा आत्मा के विपरीत है। जिसे आत्मा की तरफ जाना हो, उसे मैं की तरफ जाने का कोई उपाय नहीं है। उसे मैं के विपरीत जाना होगा। उसे अपने ही हाथों अपने अहंकार को गिरा और गला देना होगा। उसे अपने ही हाथों चोट करनी होगी और आग लगा देनी होगी। और जब उसका मैं मर जाएगा तो वह हैरान होगा। वह देखेगा, कैसा अदभुत, कैसे अदभुत सत्य का दर्शन इस मैं की मृत्यु में छिपा हुआ है। और आप खयाल रखें, कोई सोचता हो कि धन को इकट्ठा करने से मैं बढ़ता है तो हम धन को छोड़ दें तो वह गलती में है।
मैं एक साधु के पास गया। वह मुझसे रोज बोलते थे। तीन दिन उनके पास था।
वह मुझसे बार-बार कहते थे, मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। जब मैंने बार-बार सुना तो मैंने उनसे पूछा कि यह लात आपने कब मारी? वह बोलेः कोई बीस वर्ष हुए। मैंने उनसे कहाः लात पूरी तरह मार नहीं पाए आप। क्योंकि यह स्मरण कि मैंने लाखों रुपये पर लात मार दी है, यह स्मरण इस बात की सूचना है कि लात मारी नहीं गई। यह खयाल वही का वही है। मैंने उनसे कहाः जब लाखों रुपये आपके पास रहे होंगे तो आप जिस अकड़ से चलते होंगे कि मेरे पास लाखों रुपए हैं, उसी अकड़ से आप उन लाखों रुपयों को छोड़ कर भी चल रहे हैं कि मैंने लाखों पर लात मारी है। वह मैं वहीं का वहीं खड़ा है। धन में भी मैं हो सकता है, धन के त्याग में भी मैं हो सकता है। अभिमानी में अहंकार हो सकता है, विनीत में भी अहंकार हो सकता है।

अहंकार के रास्ते सूक्ष्म हैं। जब आप कहते हैं मैं तो अत्यंत विनयी हूं मैं तो बहुत विनीत हूं, मेरा कोई अहंकार नहीं, तब भी ध्यान करें भीतर तो आपको अहंकार खड़ा हुआ मालूम होगा। जो कह रहा है मैं बिल्कुल विनीत हूं, वह भी यह कह रहा है कि मैं विनीत हूं। उसकी भी मैं की धारणा प्रबल है। विनीत को तो पता भी नहीं चलेगा कि मेरे में विनय है। सरल को पता भी नहीं चलेगा मुझमें सरलता है, कपट शुरू हो गया, कठिनता शुरू हो गई। मैं ही तो कठिनाई है। इसलिए सवाल ऊपर से छोड़ने-पकड़ने का नहीं है, सवाल भीतर दृष्टि रखने का है कि मेरी चर्या में मैं तो नहीं है?
और कोई दूसरा यह नहीं कर सकता है। प्रत्येक को स्वयं ही निरीक्षण करना होता है। मैं तो सूक्ष्म घटना है प्रत्येक के भीतर; वह अहंकार है। वह इगो हरेक के भीतर है। उस पर ध्यान रखना होगा। अगर उस पर ध्यान हो, अगर उस पर दृष्टि हो, अगर उसका सतत निरीक्षण हो, अगर सम्यक विवेक हो तो अहंकार पर सम्यक विवेक की चोट क्रमशः उसे तोड़ने लगती है। अगर बार-बार उसका ध्यान बना रहे और हम जागरूक रहें तो अहंकार गलने लगता है। जैसे सूर्य निकलने पर ओस-कण भाप बन कर उड़ जाते हैं या सूर्य निकलने पर बर्फ पिघल कर पानी हो जाती है, वैसा ही सतत विवेक की ज्योति में सतत विवेक के उताप में अहंकार गलता है और क्षीण हो जाता है।
तीसरा सूत्र हैः निर-अहंकार चर्या। पहला सूत्र हैः अहिंसा भाव। दूसरा सूत्र हैः अपरिग्रह दृष्टि। तीसरा सूत्र हैः निर-अहंकार चर्या। ये तीन सूत्र अगर कोई साधे, अगर इन तीन सूत्रों पर जीवन क्रियमान हो
तो शांति का अवतरण प्रारंभ होता है। तो उसके भीतर अशांति विलीन होने लगती है और शांति उतरने लगती है। और जब शांति उतरने लगे, और जब-जब भीतर शांति का एक घनापन एहसास होने लगे, जब भीतर लगने लगे कि शांति भर रही है तब आंख बंद कर लेना जगत के प्रति, बाहर के प्रति आंख बंद कर लेना। बाहर के प्रति आंख बंद कर लेना।
आप मुझे दिखाई पड़ते हैं, आंख बंद कर लूं तो भीतर आपके चित्र दिखाई पड़ेंगे। उन पर भी आंख बंद कर लेना है। जब शांति घनी होने लगे और बाहर पूरी आंख बंद कर ली जाए, दृष्टि बाहर न जाती हो और शांति भीतर हो तो शांति और दृष्टि के बाहर जाने का अभाव--जहां इन दोनों का मिलन होता वहीं सत्य का साक्षात है। बाहर दृष्टि न जाती हो और भीतर शांति हो। शांति के और दृष्टि के अंतर्गमन का जहां मिलन होता है वहीं सत्य का साक्षात होता है। बाहर से आंख बंद कर लेना आसान है।
इसलिए चौथा सूत्र आपसे कहता हूं, भीतर पूरी आंख कैसे बंद हो जाए। मैं
जब भी आंख बंद कर लेता हूं, आप मिट जाते हैं, लेकिन दुनिया नहीं मिटती। भीतर, आपके द्वारा पैदा हुआ चित्र, आपकी कल्पनाएं, स्मृतियां, स्वप्न, वे सब मेरे भीतर चलते जाते हैं।
भीड़ भीतर भी है, बाहर भी है। बाहर पर तो आंख बंद कर लेना आसान है, भीतर सवाल है। भीतर भी बंद कर लेने का उपाय है। भीतर जो विचारों की भीड़ है, अगर उसका कोई सम्यक, जागरूक होकर साक्षी बन जाए... मैंने कहा शांति भीतर आ जाए, तब उस शांति के बीच में स्थापित होकर अपने विचारों का, बाहर से आई हुई कल्पनाओं का, बाहर से आए हुए इमेजस का, चुपचाप मात्र दर्शन, सिर्फ देखना। जैसे कोई आदमी नदी के किनारे नदी को बहते देखता हो, या कोई आदमी आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देखता हो, या मैं यहां बैठा हूं और आपको देख रहा हूं, तटस्थ भाव से केवल देखना मात्र... शांत मन से, तटस्थ भाव से, विचारों को देखने से, विचार शून्य हो जाते हैं। विचार क्षीण हो जाते हैं। भीड़ भीतर से ही समाप्त हो जाती है। आंख बाहर बंद हो जाती है और भीतर शांति होती है, उसी शांति में आंख अंतरा में प्रवेश कर जाती है। आप स्वयं के सहारे खड़े हो जाते हैं।
और तब जो आप जानते हैं वह देह नहीं है, तब जो आप जानते हैं वह पदार्थ नहीं है, तब जो आप जानते हैं उसकी कोई मुत्यु नहीं है, कोई जन्म नहीं है। उसे जान कर सब जान लिया जाता है। उसे पाकर सब पा लिया जाता है। वैसा व्यक्ति ही केवल धन्यभागी है। वैसे ही व्यक्ति ने ठीक-ठीक जीवन का उपयोग किया, वैसे ही व्यक्ति ने जीवन के सत्य को, सौंदर्य को, जीवन के अमृत को

जाना। वैसा व्यक्ति इस जगत को परमात्मा में परिणत हुआ देखता है। वैसा व्यक्ति इस जगत को चिन्मय सत्ता में परिणत हुआ देखता है। वैसे व्यक्ति की अनुभूति का नाम ईश्वर है। वैसे व्यक्ति की चर्या का नाम धर्म है। वैसे व्यक्ति की चेतना तक पहुंचने का जो मार्ग है, उसका नाम योग है।
ये चार सूत्र मैंने आपसे कहे। तीन शांति को साधने को, चौथा विचार के प्रवाह को विलीन करने को। निर्विचार चित्त हो, शांत भाव की दशा हो तो उस संगम पर सत्य का दर्शन होता है। वहां विवेक मिलता है। वहां ज्ञान मिलता है। वैसा ज्ञान पाने का प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी है। जो इस अधिकार की मांग नहीं करते वे स्वयं जिम्मेवार हैं, कोई दूसरा नहीं है। कोई दूसरा आपको सत्य को नहीं देगा। किसी की कृपा और प्रसाद से वह नहीं मिलेगा। स्वयं की चेष्टा, स्वयं के प्रयत्न, स्वयं की साधना उस फलश्रुति की तरफ ले जाती है, उस उपलब्धि तक ले जाती है। जिनमें थोड़ा भी पुरुषार्थ हो जिनमें अपने मनुष्य होने का थोड़ा भी गौरव और गरिमा हो, उन्हें अपने श्रम और संकल्प को, अपनी साधना को सत्य की इस दिशा में संलग्न करना चाहिए। पुरुषार्थ हीन ही केवल सत्य से वंचित रह जाते हैं। तामस और आलस्य में घिरे हुए लोग ही केवल संगीत को उपलब्ध करने से वंचित रह जाते हैं। वे लोग जो जीवन को दिशा नहीं देते, मार्ग नहीं देते, दृष्टि नहीं देते वे ही लोग केवल सत्य को जानने से वंचित रह जाते हैं।
इस संध्या कुछ सूत्रों की मैंने आपसे बात की है इस आशा में कि शायद किसी के पुरुषार्थ को चोट लगे, किसी के भीतर सोया हुआ यह महिमा का, मनुष्य की गरिमा का भाव पैदा हो जाए, किसी को ऐसा लगे कि मुझे सच में मनुष्य होना है, किसी को यह खयाल पकड़ जाए, यह भावना भर जाए कि मुझे अपने मनुष्य के जन्म को सिद्ध करना है और मनुष्य जन्म की जो भी परिपूर्ण संभावना है उसे उपलब्ध करना है तो मैं समझूंगा, मैंने जो कहा, वह सफल हुआ। किसी के मन में ऐसी चुनौती, ऐसा चैलेंज पैदा हो जाए, यही चाहता हूं। सारी जमीन पर हर आदमी के भीतर यह चुनौती पैदा हो जाए कि उसे अपने भीतर प्रत्येक बीज संभावना को अंत तक विकसित करना है। और जब तक वह विकसित नहीं कर लेगा तब तक वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। ऐसा भाव प्रभु करे, सबमें भर जाए, इस आशा से ये थोड़ी सी बातें कही हैं।

इतने प्रेम और इतनी शांति से उनको सुना है, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। प्रभु आपको मार्ग दे, प्रकाश दे, यह कामना करता हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन की कला
छठवां प्रवचन

जीवन की कला के तीन सूत्र

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं।
एक महानगरी में एक नया मंदिर बन रहा था। हजारों श्रमिक उस मंदिर को बनाने में संलग्न थे, पत्थर तोड़े जा रहे थे, मूर्तियां गढ़ी जा रही थीं, दीवालें उठ रही थीं। एक परदेशी व्यक्ति उस मंदिर के पास से गुजर रहा था। पत्थर तोड़ रहे एक मजदूर से उसने पूछाः मेरे मित्र क्या कर रहे हो? उस मजदूर ने क्रोध से अपनी हथौड़ी नीचे पटक दी, आंखें ऊपर उठाईं जैसे उन आंखों में आग की लपटें हों, ऐसे उस मजदूर ने उस अजनबी को देखा और कहाः अंधे हैं, दिखाई नहीं पड़ता है, पत्थर तोड़ रहा हूं, यह भी पूछने और बताने की जरूरत है। और वापस उसने पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया।
वह अजनबी तो बहुत हैरान हुआ। ऐसी तो कोई बात उसने नहीं पूछी थी कि इतने क्रोध से उत्तर मिले। वह आगे बढ़ा और उसने मशगूल दूसरे मजदूर से, वह मजदूर भी पत्थर तोड़ता था, उससे भी उसने यही पूछा कि मेरे मित्र क्या कर रहे हो, जैसे उस मजदूर ने सुना ही न हो, बहुत देर बाद उसने आंखें ऊपर उठाईं, सुस्त और उदास हारी हुई आंखें, जिनमें कोई ज्योति न हो, जिनमें कोई भाव न हो, और उसने कहा कि क्या कर रहा हूं, बच्चों के लिए, पत्नी के लिए रोजी-रोटी कमा रहा हूं। उतनी ही उदासी और सुस्ती से उसने फिर पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया। वह अजनबी आगे बढ़ा और उसने तीसरे मजदूर से पूछा, वह मजदूर भी पत्थर तोड़ता था। लेकिन वह पत्थर भी तोड़ता था और साथ में गीत भी गुनगुनाता था। उसने उस मजदूर से पूछाः मेरे मित्र क्या कर रहे हो? उस मजदूर ने आंखें ऊपर उठाईं जैसे उन आंखों में फूल झड़ रहे हों खुशी से, आनंद से भरी हुई आंखों से उसने उस अजनबी को देखा और कहाः देखने नहीं भगवान का मंदिर बना रहा हूं। उसने फिर गीत गाना शुरू कर दिया और पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया।
वे तीनों व्यक्ति ही पत्थर तोड़ रहे थे, वे तीनों व्यक्ति ही एक ही काम में संलग्न थे, लेकिन एक क्रोध से तोड़ रहा था, एक उदासी से तोड़ रहा था, एक आनंद के भाव से। जो क्रोध से तोड़ रहा था उसके लिए पत्थर तोड़ना सिर्फ पत्थर तोड़ना था, और निश्चय ही पत्थर तोड़ना कोई आनंद की, कोई अहोभाग्य की बात नहीं हो सकती और जो पत्थर तोड़ रहा था स्वभावतः सारे जगत के प्रति क्रोध से भर गया हो तो आश्चर्य नहीं। जिसे जीवन में पत्थर ही तोड़ना पड़ता है, वह जीवन के प्रति धन्यता का, कृतज्ञता का भाव कैसे प्रकट कर सकता है। दूसरा व्यक्ति भी पत्थर तोड़ रहा था, लेकिन उदास था, हारा हुआ था। जो जीवन को केवल आजीविका बना ले, जो जीवन को केवल रोजी-रोटी का अवसर बना ले, वह स्वभावतः ही उदास और हारा हुआ हो जाने को है। जीवन आजीविका बन कर आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकता, तब जीवन होगा एक बोझ, तब जीवन होगा एक हारा हुआ उपक्रम, जिसमें प्रतिपल मृत्यु निकट आती चली जाती है, जिसे किसी तरह ढोना है और पूरा कर लेना है। वह आनंद का एक गीत नहीं, उदासी की एक कथा है; वह आनंद का एक उत्सव नहीं, कर्तव्य का एक बोझ है, जिसे निपटा देना है। तीसरा व्यक्ति आनंद से तोड़ता था, पत्थर को वह भी तोड़ रहा था। वे पत्थर भी ठीक वैसे ही पत्थर थे जैसे दूसरे मजदूर तोड़ रहे थे। उसके पत्थर तोड़ने के क्रम में भी कोई भेद न था, लेकिन वह भगवान का मंदिर बना रहा था, जीवन वह अगर आनंद को उपलब्ध हो जाए तो आश्चर्य कैसा।
जीवन वही हो जाता है जिस भाव को लेकर हम जीवन में प्रविष्ट होते हैं। जीवन वही हो जाता है जो हम उसे बनाने को आतुर, उत्सुक और प्यासे होते हैं। जीवन मिलता नहीं, निर्मित करना होता है। जीवन बना-बनाया उपलब्ध नहीं होता, सर्जन करना होता है। जन्म के साथ मिलता है अवसर, जीवन नहीं।
केवल जीवन पैदा हो सके, ऐसा अवसर उस अवसर को हम खो भी सकते हैं, साधारणतः खो ही देते हैं। उस अवसर को हम विकृत भी कर सकते हैं, साधारणतः कर ही देते हैं। वह अवसर दुर्भाग्य भी बन सकता है, साधारणतः बन ही जाता है। लेकिन उस अवसर को एक आनंद उत्सव में भी परिणत किया जा सकता था। किया जा

सकता है शायद लेकिन उसके सूत्र बहुत स्पष्ट नहीं, पहली बात--इसलिए जीवन की कला में पहली बात आपसे कहना चाहूंगा, वह यह कि जो व्यक्ति ऐसा समझ लेता है वह यह कि जीवन इसे मिल गया है--जन्म के साथ वह जीवन की कला को कभी भी नहीं सीख पाएगा। कला तो उसकी सीखनी पड़ती है जो मिला नहीं है, जिसे अर्जित करना होता है, कला तो उसकी सीखनी होती है जो हाथ में नहीं है, लेकिन हाथ में आ सकता है। कला तो उसकी सीखनी होती है जो वास्तविक नहीं है, केवल संभावना है। लेकिन वास्तविक बन सकता है। लेकिन सारे जगत में हजारों वर्षों से हमारे मन में यह भाव सुदृढ़ हो गया है कि जीवन हमें उपलब्ध है। जन्म के साथ जीवन हमें मिल गया है, यह भ्रांति है। यह प्रथम से ही गलत आधार है। अगर जीवन मिल गया है तो जीवन को निर्मित और सजग करने का प्रश्न कहां जीवन? मिला नहीं है।
मैं किसी व्यक्ति को एक वीणा देख कर कह रहा था और वह व्यक्ति समझ ले कि संगीत मिल गया तो भूल हो जाएगी। वीणा संगीत है। संगीत के जन्म का एक अवसर जरूर है। एक मौका है कि वीणा संगीत बन सकती है, लेकिन वीणा संगीत नहीं है। और जो वीणा को ही संगीत समझ ले, वह फिर वीणावादन की कला सीखने को क्यों जाने को है। कोई खास कारण नहीं। फिर तो वीणा को ही ढोता फिरेगा, कभी उससे संगीत पैदा नहीं होगा। और कभी तार छू भी जाएंगे अनजाने में, तो विसंगीत पैदा करेंगे। तो आनंद नहीं, मन की शांति भंग करेंगे और वीणा को ढोना एक बोझ हो जाएगा और वीणा से छूटने की आकांक्षा मन में गहरी होने लगेगी। वीणा से मुक्ति पाने का उपाय और चेष्टा करने लगे तो वह भी स्वाभाविक है। जीवन को भी हमने वीणा की तरह कंधे पर रख लिया है, लेकिन उससे संगीत पैदा करने की कला न प्रश्न है, न विचार है और इसलिए जीवन धीरे-धीरे बोझ हो गया है।
सारे जगत में हजारों शिक्षक पैदा हुए, जिनकी शिक्षा का मूल आधार इतना
ही है कि जीवन से मुक्त कैसे हुआ जा सकता है? जिनकी शिक्षा का कुल सूत्र, कुल केंद्र इतना ही है कि जीवन से छुटकारा कैसे पाया जा सके। मोक्ष कैसे मिल सकता है, मुक्ति कैसे मिल सकती है, आवागमन के बाहर कैसे हो सकते हैं, मनुष्य-जाति हजारों साल से इसी दुर्भाग्यपूर्ण विचार से नीचे जी रही है। जीवन से कैसे छूटा जाए? और यह बात इसलिए पैदा हो सकी, क्योंकि हम जीवन की कला को विकसित नहीं कर पाए। जीवन की कला विकसित हो, जीवन का अनुभव हो, वह जीवन ही मोक्ष है। जीवन के बिना कहीं कोई मोक्ष नहीं। जीवन का पूर्ण अनुभव हो तो जीवन ही परमात्मा है, जीवन से अन्यथा कोई परमात्मा नहीं।
लेकिन जीवन में हारे हुए लोग, जीवन में असमर्थ पराजित जीवन के विरोध में एक परमात्मा नहीं। लेकिन जीवन में हारे हुए लोग, जीवन में असमर्थ पराजित जीवन के विरोध में एक परमात्मा की कल्पना कर लिए हैं। वह परमात्मा मृत्यु का ही साकार रूप है। जीवन को न जीने में, जीवन को जी पाने में, जीवन की खोज में जो थक गए हैं, हार गए हैं, उन्होंने मोक्ष की कल्पना एक धारणा बना रखी है। वह मोक्ष की कल्पना परिपूर्ण मृत्यु के अतिरिक्त और भी नहीं है। चूंकि हम जीवन की कला विकसित नहीं कर पाए, इसलिए हमने मरने के ढंग विकसित किए और यही वजह है कि आज तक पृथ्वी के सारे धर्म जीने की कला नहीं सिखाते, मरने की व्यवस्था मरने का ढंग सिखाते हैं। सब सारे धर्म आत्मघाती हैं, सुसाइडल हैं। कैसे कोई व्यक्ति जीवन को छोड़ दे, कैसे जीवन की जड़ें टूट जाएं, कैसे हम जीवन से विमुक्त हो जाएं, कैसे जीवन से हमारा सारा संबंध विच्छिन्न हो जाए, हमने इसी प्रक्रिया को आज तक संन्यास और धार्मिक आदमी की साधना कहा है। न तो यह संन्यास है, न साधना है, न धर्म का स्वरूप। धर्म मृत्यु नहीं सिखाता। धर्म सिखाता है परिपूर्ण जीवन। धर्म भागना नहीं सिखाता है। धर्म सिखाता है जीना। धर्म मरना नहीं सिखाता, वरन विपरीत अमृत कैसे उपलब्ध हो सके, उसकी खोज। लेकिन हम जीवन के प्रथम चरण में ही गलत धारणा लेकर चलें, तो स्वभावतः यही परिणाम हो सकता है, जो हुआ। मनुष्य जाति आज तक जीवन की गलत धारणा लेकर चल रही है, और यह गलत धारणा यह है कि हमने मान लिया है कि हमें जन्म के साथ जीवन उपलब्ध हो गया है। जन्म के साथ किसी को भी जीवन उपलब्ध नहीं हुआ है, बीज में वृक्ष छिपा है लेकिन बीज वृक्ष नहीं है। और जो माली बीज को ही वृक्ष समझ ले, फिर उसकी बगिया में वृक्ष कैसे पैदा हो सकते हैं। बीज केवल संभव है कि वृक्ष बन जाए। बीज में छिपा है, कुछ

जो वृक्ष बन सकता है और नहीं भी बन सकता। अगर वृक्ष के लिए सारी सुविधा हमने बीज के आस-पास जुटा ली, भूमि, खाद, पानी, सूरज का प्रकाश, सुरक्षा तो शायद बीज वृक्ष बन ही जाए। लेकिन बीज बिना वृक्ष बने नष्ट भी हो सकता है। और मनुष्य-जाति के अधिकतम बीज बिना वृक्ष बने नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि हमने एक बुनियादी गलत धारणा से जीवन की शुरुआत की है, वह यह कि जीवन हमें मिल गया। हम अपने को जीवित समझ रहे हैं, यह भूल है। हम सिर्फ जन्मे हैं, जीवित अभी नहीं हैं। जीवित तो हम तब होंगे जब जीवन उपलब्ध होगा, जब वह जो बीज हमारे भीतर छिपा है, वह फूटेगा, टूटेगा, अंकुरित होगा और उसमें फूल आएंगे। हम अभी केवल जन्मे हैं। यह बात दूसरी है कि एक बच्चे को जन्मे हुए एक दिन हुआ है और बूढ़े को जन्में सत्तर वर्ष हुए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपको जन्में हुए कितना समय हो गया है। जीवित होना बात ही और है।
गौतम बुद्ध ने एक सुबह एक भिक्षु से पूछा, वह भिक्षु नया-नया ही दीक्षित हुआ था, संन्यासी हुआ था। बुद्ध ने पूछा कि भिक्षु तुम्हारी उम्र कितनी है, तुम्हारी उम्र कितनी है तुम्हारी अवस्था क्या है? वह भिक्षु हंसने लगा और उसने कहा कि अब तक तो मैं समझता था कि साठ वर्ष है, लेकिन जीवन का कोई अनुभव नहीं हुआ था कि जीवन की कोई किरण मेरे प्राणों तक प्रविष्ट नहीं हुई थी, जीवन का कोई भी संगीत नहीं सुना था, जीवन के किसी सौंदर्य के कोई दर्शन नहीं हुए थे। हृदय धड़कता था श्वास चलती थी, तो मैं समझता था यही जीवन है। अब कह सकता हूं, चार वर्ष है मेरी उम्र। और भी भिक्षु मौजूद थे, बुद्ध ने उन भिक्षुओं से कहाः तुम भी अपनी उम्र आज से इस भांति गिनना। मैं भी आपसे कहना चाहता हूं कि उम्र जन्म के साथ गिनना बिल्कुल व्यर्थ है। वह जीवन की उम्र नहीं, जीवन के साक्षात्कार के बाद जीवन की उम्र शुरू होती है। लेकिन हम तो जन्म को जीवन समझ बैठे हैं।
तो पहली बात मैं कहना चाहता हूं कि जन्म जीवन नहीं है। अगर बहुत गौर
से देखें तो जन्म जीवन तो बिल्कुल नहीं है। लेकिन जन्म मृत्यु जरूर है। जिस दिन हम पैदा होते हैं, उस दिन मरना भी शुरू हो जाता है। जन्म का पहला दिन मृत्यु की ही यात्रा का प्रथम चरण है। कोई आदमी अचानक थोड़े ही मर जाता है। हम रोज धीरे-धीरे मरते रहते हैं। और एक दिन मरने की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। हम यहां बैठे हैं, हम प्रतिपल मर रहे हैं, कुछ हमारे भीतर टूट रहा है और नष्ट हो रहा है, जिसे हम जन्म कहते हैं वह मृत्यु का ही दूसरा छोर है, वह मृत्यु का ही प्रारंभ है, वह मृत्यु की ही शुरुआत है। तो जन्म जीवन तो कतई है ही नहीं। मृत्यु जरूर हो सकता है। और इसीलिए इस जन्म को ही जो लोग जीवन समझ लेते हैं उनका सारा समय मृत्यु की चेष्टा से बचने के अतिरिक्त और किसी चीज में व्यस्त नहीं होता। चारों तरफ देखें, आदमी क्या करता हुआ दिखाई पड़ता है। सारी चेष्टा मृत्यु से बचने की चेष्टा है। सारे आयोजन मृत्यु से बचने के आयोजन हैं। सारी व्यवस्था मृत्यु की सुरक्षा की व्यवस्था है। और जानते हुए कि मृत्यु से कोई सुरक्षा नहीं, मृत्यु से कोई बचाव नहीं, मृत्यु होनी है। लेकिन जिन लोगों ने जन्म को जीवन समझ लिया है, स्वभावतः उनका पूरा जीवन मृत्यु से बचने की प्रक्रिया में परिवर्तित हो जाएगा, क्योंकि जन्म मृत्यु की शुरुआत है--जीवन नहीं।
एक भिक्षु को किसी ने जाकर पूछा था कि मुझे जीवन और मृत्यु के संबंध में कुछ बताएं। वह भिक्षु हंसने लगा और उसने कहा अगर जीवन के संबंध में कुछ जानना हो तो मैं बता सकता हूं। मृत्यु के संबंध में बताने में असमर्थ हूं, क्योंकि मृत्यु को मैं जानता नहीं, पहचानता नहीं और जबसे मैंने जीवन को जाना है तब से मृत्यु जैसी कोई चीज रह नहीं गई। अगर मृत्यु से संबंध में कुछ जानना हो तो मुर्दे लोगों से पूछो जिनसे नगर भरे हैं और जीवन के संबंध में जानना हो तो जरूर मैं कुछ कह सकता हूं।
एक सूफी फकीर था इब्राहिम। एक गांव के बाहर रहता था। गांव के भीतर जाने वाले लोग उससे पूछते कि बस्ती का रास्ता कहां है? तो वह कहता था कि भूल कर भी बाएं मत जाना, बाएं की तरफ मरघट है और दाएं जाना, दाएं की तरफ बस्ती है। जो यात्री उसकी बात मान कर दाएं चले जाते--मील, दो-मील चल कर मरघट पहुंच जाते तो बहुत क्रोध में लौटते और कहते इब्राहिम से कि तुम पागल हो गए हो। तुमने हमें कहा दाएं जाना, वहां बस्ती है, बाएं मत जाना, वहां मरघट

है। बाएं गए, वहां तो मरघट मिला, व्यर्थ हमें परेशान किया। इब्राहिम कहता कि मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि जिसे तुम बस्ती करते हो वह मरघट है, क्योंकि वहां हर आदमी सिवाय मरने के और कुछ भी करने को नहीं, और जिसे तुम मरघट करते हो उसे मैंने बस्ती जाना, क्योंकि वहां जो एक बार बस गया उसे कभी उजड़ते नहीं देखा, जो वहां बस जाता है कभी छोड़ कर नहीं जाता है। तो जिसे हम जीवन समझ रहे हैं, वह जीवन नहीं है। अगर यह स्मरण न आए तो जीवन की कला का क, ख, ग, भी नहीं सीखा जा सकता है। अगर यह ही जीवन है तो बात समाप्त हो गई। फिर सीखने को कुछ नहीं बचता। लेकिन यह जीवन नहीं है और पहचान इस बात से हो सकती है कि इस प्रतिपल जी नहीं रहे हैं, केवल मृत्यु से बचने की सुरक्षा और आयोजन कर रहे हैं। भोजन जुटा रहे हैं, मकान बना रहे हैं, यश पद प्रतिष्ठा, धन, संपत्ति इकट्ठी कर रहे हैं। कोई पूछे कि यह सब अंततः इसका मूल्य क्या है? अंततः इसका मूल्य है कि मैं मर न जाऊंगा। मैं असुरक्षित न छूट जाऊं। कल भी जी सकूं, परसों भी जी सकूं इसलिए इंतजाम कर रहा हूं। लेकिन इस सारी व्यवस्था के बाद आदमी आखिर मृत्यु में पहुंच जाता है।
एक छोटी-सी कहानी मुझे स्मरण आती है। बल्ख में बल्ख के बादशाह ने एक रात एक सपना देखा रात उसने सपने में देखा कि कोई अंधेरी छाया, कोई काली छाया उसके कंधे पर हाथ रखे है। नींद में भी वह घबड़ा गया। उसने पूछा कि तुम कौन हो? उस काली छाया ने कहा कि मैं तुम्हारी मौत और आज सांझ तुम्हें लेने आती हूं। तुम ठीक जगह ठीक समय पर मुझे मिल जाना। सूरज डूबते ही डूबते मैं आने को हूं, ठीक जगह पर मुझे मिल जाना। यही खबर देने आई हूं। कि कहीं ऐसा न हो कि जहां मैं तुम्हें लेने आऊं, तुम वहां न मिलो।
उस सम्राट का मन था कि पूछ ले कि वह कौन सी जगह है कि जहां मैं मिलूं, इसलिए कि वहां से बच जाऊं, बल्कि इसलिए कि वहां से बच जाऊं। लेकिन नींद टूट गई। घबड़ाहट में और वह पूछ नहीं पाया मौत से कि मैं किस जग मिलूं। इसलिए नहीं कि मैं जाऊं, बल्कि इसलिए ताकि वहां से बच सकूं, उस जगह का पता चल जाए। लेकिन नींद टूट गई थी और मौत नहीं थी सामने। वह बहुत घबराया। आधी रात थी। उसने नगर में जो भी ज्ञानी थे, ज्योतिषी थे, पंडित थे, शास्त्रों को जानने वाले जीवन और मृत्यु के संबंध में बातें करते थे, उन सारे लोगों को आधी रात ही बुला लिया और उनसे कहा कि यह स्वप्न आया है, उसका क्या अर्थ है? क्या मैं आज सांझ मरने को हूं। अगर मरने को हूं, तो बचने का क्या इंतजाम है। कैसे बच सकता हूं। मौत से बचना जरूरी है। और ज्यादा देर नहीं है, थोड़ी ही देर में सुबह हो जाएगी और सूरज यात्रा शुरू कर देगा और फिर थोड़ी ही देर बाद सांझ हो जाएगी। वे पंडित अपने शास्त्र ले जाएगा। उन्होंने अपने शास्त्र खोले और वे विवेचन और व्याख्या में लग गए। लेकिन एक पंडित का विवेचन और व्याख्या दूसरे से मेल नहीं खाता, कभी-कभी नहीं खाया पंडितों के विवेचन और व्याख्या है मेल, उसमें कोई संबंध कभी भी नहीं रहा। उन्होंने विवाद किया है। लेकिन आज तक वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे। सुबह होने लगी और विवाद इतना बढ़ गया कि वह सम्राट बोला--जब मैं जागा था, नींद से, तब मुझे सपना कुछ स्पष्ट भी था। तुम्हारी बातें सुन कर और भी अस्पष्ट हो गया है। मैं और भी भ्रम में पड़ गया हूं। जल्दी करो। उन पंडितों ने कहा जल्दी तो हम कर रहे हैं, लेकिन विवाद बढ़ता चलता गया। सूरज उठने लगा तो सम्राट के प्राण कंपने लगे। सांझ-सांझ करीब आने लगी। उसके एक बूढ़े नौकर ने कहा कि इनकी बातों का निष्कर्ष शायद ही कभी निकले। सांझ जल्दी हो जाएगी और अच्छा यह हो कि उनको विवाद करने दें। आपने पास जो तेज घोड़ा है, उसको लेकर जितनी दूर इस महल से निकल सकें, निकल जाएं। चूंकि जिस रात महल में यह सपना आया है, संभव है कि मौत इसी महल में आती हो, तो हट जाएं इस महल से दूर। यह बात ठीक भी मालूम पड़ी।
उस सम्राट ने अपने घोड़े पर सवारी की और वह भागा। जाते साथ समय उसे खयाल भी न रहा उस पत्नी का, जिससे उसने अनेक बार कहा था कि तेरे बिना एक क्षण मैं जी भी नहीं सकता। उन मित्रों का कोई स्मरण न रहा, जिन्हें उनसे कहा था कि तुम ही मेरे जीवन हो, तुम ही मेरी खुशी हो, तुम ही मेरी-गीत हो, मौत सामने आती है, तो सारी बातें भूल जाती हैं। वह भागा और दिन भर भागता रहा। उस दिन न तो उसे प्यास लगी और न भूख। मौत सामने थी--कैसे भूख थी, कैसी

प्यास और एक क्षण भी रुकना खतरनाक था। कौन जाने कितने निकट हो मौत महल के। इसलिए जितनी दूर निकल जाऊं उतना अच्छा। वह सांझ तक भागता रहा। बहुत तेज घोड़ा था उसके पास सैकड़ों मील दूर वह सांझ तक निकल गया, तो निश्चित हुआ। सूरज ढलता था। उसने एक बगीचे में अपना घोड़ा बांधा। वह घोड़ा बांध भी नहीं पाया था कि पीछे कंघे पर किसी का हाथ उसे मालूम पड़ा। लौट कर देखा तो घबड़ाया, वही काली छाया थी। उसने पूछाः तुम कौन हो? मृत्यु ने कहाः रात आई थी, फिर भी पहचाने नहीं! धन्यवाद तुम्हारे घोड़े को अगर इतना तेज घोड़ा तुम्हारे पास न होता तो आज बड़ी मुश्किल थी। इस जगह पहुंच जाना बहुत जरूरी था। मैं यहां प्रतीक्षा करती थी। और बहुत भयभीत थी कि पता नहीं तुम ठीक समय पर पहुंच पाओ कि न पहुंच पाओ, लेकिन धन्यवाद तुम्हारे घोड़े को, बहुत तेज घोड़ा है और ठीक समय पर ठीक जगह ले आया।
आदमी जीवन भर भागता है, उपाय करता है, व्यवस्था करता है, सुरक्षा करता
है और आखिर में सारी व्यवस्था, सारी सुरक्षा मौत में जाकर खड़ा कर देती है। सोचता था जो मैं उपाय कर रहा हूं, उससे मौत से बचूंगा, मिटने से बचूंगा, न होने से बच जाऊंगा। लेकिन वे सारे उपाय, उसके सारे आयोजन उसे न होने में ही ले जाते हैं। हमने मौत की तरफ कदम उठाए, इसलिए चाहे हम तेज घोड़े पर चलते हों, चाहे सुस्त घोड़े पर चलते हों, चाहे गरीब का घोड़ा हो, चाहे अमीर का घोड़ा हो, सभी घोड़े ठीक जगह पर ठीक समय पर, पहुंचा देते हैं। हम शायद जो दिशा लें, वह दिशा ही मृत्यु की है।
दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं कि जीवन की दिशा को पहचान लेना अत्यंत आवश्यक है। पहली बात जन्म ही जीवन नहीं है, यह स्मरण होना चाहिए। दूसरी बात जीवन की दिशा क्या है? कहीं जिसे हम जीवन की दिशा समझते हैं, वह मृत्यु की ही दिशा तो नहीं। जीवन समझ कर जिसकी हम पूजा करते हैं, वह मृत्यु ही तो नहीं। जिस ओर हम दौड़ते हैं और श्रम करते हैं, वह हमें कहां पहुंचाता है। एक और छोटी सी कहानी से समझाने की कोशिश करूंगा।
एक जर्मन विचारक हेरिगेल पूरब की यात्रा को आया हुआ था। वह पूरब के मुल्कों में उन लोगों की तलाश में था, जिन्हें जीवन उपलब्ध हो गया हो। वर्षों भटकता रहा, लेकिन उसे वह आदमी दिखाई नहीं पड़ा, जिसे जीवन उपलब्ध हो गया हो। उसे संन्यासी मिले, उसे साधु मिले, लेकिन वे भी उसे मृत्यु की तरफ ही जाते हुए मालूम हुए। वे भी नहीं दिखाई पड़े। जिन्हें वह किरण, वह सूत्र मिल गया है, जो जीवन की तरफ ले जाने वाला है। फिर वह थक गया और वापस लौटने को था उन दिनों जापान में था और जिस दिन लौटना था--किसी ने कहा एक संन्यासी को मैं और जानता हूं। जाने के पहले उससे और मिल लें। इतने दिनों की खोज के बाद वह निराश हो गया था। फिर उसने सोचा कि क्यों एक मौका और है। एक मौका और खोजने का है। कई बार ऐसा होता है कि आदमी यात्रा के अंतिम चरण से वापस लौट आता है, कई बार ऐसा होता है कि एक हाथ और खोदा जाता और कुएं में पानी आ जाता। कौन जानता है यह आदमी, वही आदमी हो, जिसकी उसे खोज हो। उसने उस साधु के पास गया। उसे निमंत्रित किया भोजन के लिए उस जापान के छोटे नगर में, एक बड़े होटल में उस साधु को आमंत्रित कुछ और मित्रों को बुलाया। वे सात मंजिल मकान में लकड़ी के मकान में बैठ कर बातें करते थे। भोजन करते थे। उस साधु से कुछ पूछा था। वह उत्तर देता था, फिर अचानक भूकंप आ गया। सारे मकान कंप गए। पास के मकान गिर गए, हाहाकार मच गया। फिर कौन वहां बैठता, भोजन के लिए, कौन वहां साधु को सुनने को रुकता। सारे लोग भागे। सात मंजिल मकान था, लकड़ी का हवा में कंप रहा था, पत्ते की तरह, जो किसी भी क्षण गिरता और प्राण जाते। लोग भागे, लेकिन कोई पच्चीस-तीस लोग थे संकरी सीढ़ियां थीं और भीड़ हो गई और लोग रुक गए। हेरिडेल भी भागा। लेकिन भीड़ थी, रास्ता नहीं था, सीढ़ियों पर उसे खयाल आया, मैं मेजबान हूं, होस्ट हूं और मैं भागा जा रहा हूं। मेहमान का क्या हुआ, अतिथि कहां है, लौट कर उसने देखा जिस साधु को बुला लाए थे, वह अपनी जगह बैठा है, वह भागा नहीं है। उसके चेहरे पर भागने का कोई खयाल भी नहीं है। उसकी आंख जरूर बंद है और वह ऐसा भी नहीं मालूम होता जैसे कोई आदमी हो। इतना शांत मालूम होता है जैसे कोई मूर्ति हो।
हेरिगेल के मन में हुआ कि मैं भाग जाऊं मेहमान का खतरे में छोड़ कर यह
तो शिष्टता न होगी, रुक जाना चाहिए। फिर यह भी खयाल आया कि जो उसका होगा

वही मेरा भी होगा। किसी तरह अपने को रोक कर वह भी साधु की कुर्सी पर बैठ गया। हाथ-पैर कंपते हैं, उसके प्राण डरे हुए हैं। खतरा है, मौत का। लेकिन दस पांच क्षण और--और भूकंप चला गया। उस साधु ने आंख खोली और भूकंप के जाने से बात टूट गई थी, जहां से, वहीं से बात शुरू कर दी।
हेरिगेल तो हैरान हुआ जैसे कि भूकंप आया ही न हो। उसने उस साधु से कहा--हम भूल गए थे कि क्या बात होती थी भूकंप आने के पहले। इतनी बड़ी घटना घट गई, इतना बड़ा विनाश हो गया है, हम इतने घबड़ा गए हैं कि मुझे याद भी नहीं कि हमने क्या पूछा था। आप छोड़ें उस बात को अब अब तो मुझे दूसरी ही बात पूछनी है। भूकंप आया, आप भागे नहीं? भूकंप का क्या हुआ? उस साधु ने कहाः भागा तो मैं भी, भागे तुम भी, लेकिन तुम बाहर की तरफ भागे और मैं भीतर की तरफ भागा। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारा भागना बिल्कुल व्यर्थ था, क्योंकि तुम भाग रहे थे वहां भी भूकंप था। भूकंप से ही भूकंप में भागने का क्या अर्थ है? क्या प्रयोजन, क्या अभिप्राय है? शायद तुम पागलपन में भाग रहे थे, क्योंकि भूकंप से भूकंप में भागने से कौन सा अर्थ है? शायद तुम्हें कुछ सूझ नहीं पड़ता था। इसलिए भाग रहे थे। मैं उस जगह भागा जहां कोई मुकाम कभी नहीं पहुंचता है। मैं भीतर की तरफ भागा, मैं उस जगह भागा जहां मृत्यु की कोई छाया कभी नहीं पहुंचती। मैं जीवन की तरफ भागा। अगर हम जीवन में निरंतर बाहर की तरफ भाग रहे हैं तो स्मरण रहे कि जीवन की कला को कभी-भी नहीं सीखा जा सकता। बाहर मृत्यु है, बाहर भूकंप है, भीतर जरूर चेतना है, अंतर्गृह है, वहां जीवन स्पंदन है। यहां जहां से जीवन का बीज फूटता और अंकुरित होता है, वहां लौटें तो ही जीवन को जाना और जीया जा सकता है।
वृक्ष को हम देखते हैं, आकाश में फैला हुआ हवाओं में उसके फूलों की गंध होती है। सूरज की किरणों में उसके पत्ते नाचते हैं, लेकिन जड़ें जहां वृक्ष का जीवन है, पृथ्वी के नीचे वे जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं। वे अदृश्य में वृक्ष दिखाई पड़ता है, वे दिखाई नहीं पड़तीं। जो भी हमें दिखाई पड़ता है, वहां जीवन की जड़ें नहीं हैं, जो हमें नहीं दिखाई पड़ता है और अंतर्गृह में छिपा है, दूर भूमि के भीतर, वहां जीवन की जड़ें हैं। दो मार्ग है या तो मनुष्य की चेतना बाहर-बाहर, बाहर की यात्रा को निकलती है या तो अंदर की यात्रा को संलग्न होती हो। बाहर की यात्रा पर मृत्यु के अतिरिक्त अंतिम निष्पत्ति और कुछ भी नहीं। भीतर की यात्रा पर जीवन और गहरा जीवन और परम जीवन होता चला जाता है। और वहीं जहां मेरा होना है, जहां आपका होना है, जहां हमारा वास्तविक होना है, वहीं जीवन की परिपूर्णता का अनुभव उपलब्ध होता है। वह अनुभव ही परमात्मा है और जिसे एक बार भीतर दिखाई पड़ जाए उसे फिर तत्क्षण बाहर भी दिखाई पड़ने लगता है।
जिसे भीतर न दिखाई पड़े, जीवन उसे बाहर भी कभी दिखाई नहीं पड़ सकता। जो अपने भीतर ही जीवन को जानने में असमर्थ हुआ है, वह बाहर जीवन को कैसे खोज पाएगा, जो निकटतम को भी पहचानने में हार गया है, वह जो दूर है, उसे कैसे जान पाएगा। जो अत्यंत पास है, पास से भी पास है, जो मैं ही हूं, जो वहां भी नहीं जान सका, वह दूर में, अन्य में, भीड़ में, दूसरे कैसे खोज पाएगा। जीवन का पहला अनुभव आंतरिक है और एक बार अंतसतः में उसके दर्शन हो जाएंगे तो सारे जगत में मृत्यु विलीन हो जाती है। मृत्यु ही हमारा न जानना, वह है हमारा अज्ञान। जीवन है हमारा ज्ञान। वह है हमारा जानना और हम अपने को ही नहीं जानते तो जीवन की दिशा क्या है... सिकंदर हिंदुस्तान की तरफ आता था, रास्ते में वह एक फकीर डायोजनीज से मिलने गया। डायोजनीज लेटा था धूप में। सर्दी के दिन थे और धूप का आनंद ले रहा था नग्न। सिकंदर ने उसे लेटे देख कर कहा इतने खुश मालूम होते हो डायोजनीज और तुम्हारे पास जहां तक मैं देखता हूं, मैं तुमसे कह सकता हूं--तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। हालांकि तुम्हारे पास बहुत-कुछ दिखाई पड़ता है। मेरे पास जीवन है और तुम्हारे पास केवल मृत्यु से सुरक्षा की व्यवस्था की जो कुछ भी सुरक्षित नहीं कर पाएगा, क्योंकि जीवन का उसे कोई पता ही नहीं, जिसे सुरक्षित करना है, जैसे कोई अंधेरे से बचने का उपाय करे, और दिये का उसे पता न हो, क्या करेगा वह आदमी? अंधेरे से बचने के लिए। अंधेरे से बचने के लिए जो किया जा सकता है, सिवाय इसके लिए कि हम कल्पना कर लें कि अंधेरा ही प्रकाश है। इसके अतिरिक्त और

कुछ भी नहीं किया जा सकता और यही हमने किया है कि हम मृत्यु को ही जीवन कहने लगे हैं, जब कि हमें जीवन का कोई पता नहीं और मृत्यु से बचना अंधेरे से बचने को कोई भी उपाय नहीं होगा, सिवाय इसके कि प्रकाश आपके पास हो। प्रकाश है तो अंधेरा नहीं है। प्रकाश नहीं है तो अंधेरा है। प्रकाश का अभाव ही अंधेरा है। जीवन का हमें कोई पता नहीं, इसीलिए मृत्यु है। जीवन का हमें पता हो तो फिर मृत्यु नहीं, मृत्यु जीवन के अनुभव का अभाव है। मृत्यु की कोई सत्ता नहीं, अंधेरे की कोई सत्ता नहीं।
सिकंदर ने कहा, तुम्हारी बात तो ठीक मालूम होती है। लेकिन अभी तो मैं विश्व की विजय को निकला हूं। डायोजनीज हंसने लगा, जो अपने को भी नहीं जीता पाया, वह विश्व की विजय को निकल पड़ता है, जो अपने को भी नहीं जीत पाया, वह जगत को जीतने निकल पड़ा है। विक्षिप्त हो गए हैं आप। शायद सचाई यह है कि इस बात का हमें पता न चले कि मैं अपने के नहीं जीत पाया, इसलिए हम जगत को जीतने में संलग्न हो जाते हैं। जगत को जीतने में तो इस बात को भूले रहते हैं कि मैं अपने को भी नहीं जीत पाया हूं, लेकिन विस्मृति से कुछ भी नहीं होता। केवल जीवन अपव्यय होता है। सिकंदर ने कहाः ठीक कहते हो, शायद तुम लेकिन अब तो मैं आधी यात्रा पर निकल आया, अब कैसे बीच से लौट सकता हूं।
डायोजनीज कहने लगाः पता है बाहर की यात्रा कभी भी पूरी नहीं होती, हमेशा अधूरी रहती है। अब तक कौन बाहर की यात्रा पूरी कर पाया है? और सच यही हुआ, सिकंदर वापस नहीं लौट पाया अपने घर तक, बीच में ही मर गया। अभी दुनिया जीतने को शेष थी और वह अशेष हो गया, वह समाप्त हो गया। उसके मर जाने के बाद एक बड़ी मीठी कथा सारे यूनान में प्रचलित हो गई, जो कि संयोग की बात, जिस दिन सिकंदर मरा, उस दिन डायोजनीज भी मरा। किसी कवि ने यह कहानी प्रचलित कर दी होगी यूनान में कि दोनों मरने के बाद वैतरणी पार करते वक्त फिर से मिल गए थे, एक तो साथ मरे हों। सिकंदर थोड़ी देर पहले मरा था, वह आगे था। डायोजनीज थोड़ी देर बाद मरा था, वह पीछे था। सिकंदर ने पीछे आवाज सुनी किसी हंसी की और वह हंसी पहचानी हुई मालूम पड़ी। वह हंसी परिचित थी, वह हंसी डायोजनीज की थी। वैसा तो दुनिया में कोई भी आदमी नहीं हंस सकता था। वैसा तो वही हंस सकता है जो जीवन को अनुभव करता हो, मृत्यु से घिरा हुआ आदमी हंस कैसे सकता है, उसका हंसना ही भुलावा है, धोखा है, वंचना है। वैतरणी पर वह गूंजती हुई हंसी की आवाज, उसने लौट कर पीछे देखा, वह नंगा फकीर डायोजनीज आ रहा है। हंस क्यों रहा है, सिकंदर बहुत हतप्रभ हुआ और उसे खयाल आया कि डायोजनीज ने कहा था कि यह यात्रा अधूरी रह जाएगी और तुम समाप्त हो जाओगे, अपने को जीत लो, दुनिया को जीतने की यात्रा कभी पूरी नहीं होती है, और आज यह बात सच हो गई और वह शायद इसलिए हंस रहा है। लेकिन सिकंदर ने हिम्मत जुटाई, वह सम्राट था, एक फकीर के सामने हार जाएगा, उसने भी हंसने की कोशिश की। लेकिन हंसी बड़ी फीकी थी। हिम्मत बढ़ाने के लिए उसने जोर से चिल्ला कर डायोजनीज को कहाः बड़ा खुश हूं तुमसे मिल कर।
शायद ही वैतरणी पर ऐसी घटना कभी घटी हो। एक बादशाह और एक भिखारी का मिलना हो रहा है, शायद ही कभी ऐसा हुआ हो वैतरणी पर इतना बड़ा बादशाह और तुम जैसा नंगा भिखारी। यह अपने में हिम्मत जुटाने के लिए उसने कहा था। लेकिन डायोजनीज और-और जोर से हंसने लगा। उसने कहा, तुम ठीक कहते हो--कहने में कि कौन बादशाह है, कौन भिखारी है। बादशाह पीछे है और भिखारी आगे है।
सिकंदर आगे था, डायोजनीज कहने लगा, तुम ठीक कहते हो। एक बादशाह का एक भिखारी से मिलना, लेकिन जरा भूल करते हो, कौन बादशाह है, कौन भिखारी। मैं सब कुछ जीत कर लौट रहा हूं। क्योंकि मैंने जीवन को जाना है और तुम सब कुछ हार कर लौट रहे हो, क्योंकि तुमने जीवन के अतिरिक्त जो भी जीता जाता है, वह मृत्यु में विलीन हो जाता है और समाप्त हो जाता है। जीवन की विजय ही अकेली विजय है और जीवन की दिशा अंतरस्थ की, भीतर की दिशा है। और एक बार भीतर उदघाटन हो जाए जीवन का तो फिर सब तरफ उसके पर्दे उठ जाते हैं। सब दिखाई पड़ता है, वह सब जगह मौजूद है--फूल में भी, पत्थर में भी, चांद में भी, तारे में भी, मिट्टी में भी, कण-कण में वह जीवन है। फिर उसका नृत्य दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा, लेकिन पहले अपने में खोज लेना जरूरी है।

एक दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं--जीवन की दिशा क्या है? जीवन की दिशा अंतरस्थ की दिशा है और हमारा मन चौबीस घंटे बाहर और बाहर है, शायद ही कभी हम भीतर हैं। सच तो यह है कि जब तक मन काम करता है, हम बाहर ही होते हैं। जब मन कान नहीं करता तभी हम भीतर होते हैं। जब मन क्रिया में संलग्न होता है तब तक हम बाहर होते हैं, जब तक मन सोचता है तब तक हम बाहर होते हैं, जब तक मन कुछ भी करता है, तब तक हम बाहर होते हैं। मन की सारी क्रिया बाहर की यात्रा है, मन की अक्रिया भीतर की यात्रा है।
यह तीसरा और अंतिम आपसे कहना चाहता हूं कि मन को जानना है तो मन की अक्रिया का सूत्र जान लेना जरूरी है। मन की क्रिया बाहर की यात्रा है और मन की अक्रिया भीतर की यात्रा--वह आत्मा की, परमात्मा की, प्राणों की, प्राण की यात्रा है। वह प्रभु का द्वार खोलती है। मन कैसे शांत और शून्य हो जाए, मन कैसे मौन हो जाए, मन कैसे साइलेंट हो जाए, मन कैसे घोर चुप्पी में प्रविष्ट हो जाए, वहां से जीवन-द्वार खुलता है। शब्द बाहर ले जाते हैं, विचार बाहर ले जाते हैं, मौन और शून्य भीतर ले जाता है।
लेकिन कैसे?
विचार के साथ सहयोग बाहर जाने की व्यवस्था है। विचार से मित्रता छोड़ें। विचार की प्रक्रिया से विचार के प्रभाव में डूबना छोड़ें। किनारे पर खड़े होने की कला सीखें, यही जीवन की कला है--तटस्थ खड़े होने की कला। रास्ता चल रहा है और एक आदमी किनारे पर खड़े होकर रास्ते को देख रहा है। गंगा बह रही है, राजघाट पर खड़े होकर बहती गंगा को आप देख रहे हैं, मन की धारा बह रही है और किनारे खड़े होकर चुपचाप उसकी धारा को आप देख रहे हैं। यह देखना जितना गहरा, जितना सहज और जितना विशाल होता चला जाएगा, उतना ही यह अनुभव आएगा कि जितनी गहराई से, जितनी प्रगाढ़ता से मन की धारा देखी जाती है, उतनी ही तीव्रता से मन की धारा शून्य और शांत होती है। जिस दिन मन शांत है उसी दिन जीवन का द्वार खुल जाता है। जीवन क्या है, कहना कठिन है। जीवन कैसा है, बताना असंभव है। जीवन को तो जीकर ही जाना जा सकता है। लेकिन हम कैसे पहुंच सकते हैं जीवन के मंदिर तक--मन जहां निस्पंद है, मन जहां शांत है, मन जहां शून्य है, वहां उस मंदिर का द्वारा खुलता है।
तो अंतिम बात आपसे कहना चाहता हूं वह यह कि मन की धारा के तटस्थ दर्शन बनिए। मौन मन की धारा के खड़े किनारे, खड़े होने की बस केवल खड़े होने की, चुपचाप मन को देखते रहने की सामर्थ्य को विकसित करिए। यह सामर्थ्य जितनी विकसित होगी, मन के साक्षी बनने की उतनी ही जीवन में आप प्रविष्ट होते चले जाएंगे। और जीवन को जीकर ही जाना जा सकता है। प्रेम को करके ही जाना जा सकता है। जीवन का स्वाद भी जीवन में डूबने और कूद पड़ने से उपलब्ध होता है। अंत में फिर से दुहरा देता हूं।
पहली बात जन्म को जीवन नहीं मानना है, वही भूल है, जो सारे जीवन को नष्ट कर देती है। जीवन की दिशा खोजनी है। दूसरा सूत्र बाहर बाहर जीवन की दिशा नहीं है। अंतरस्थ में छिपी हैं जड़ें जीवन की--वहां भीतर चलना है और खोजना है। और तीसरी बात कैसे पहुंचेंगे उस भीतर के जगत में, जहां भूकंप नहीं पहुंचते, जहां मृत्यु नहीं पहुंचती, वहां आप कैसे पहुंचेंगे। आप वहां हैं, लेकिन मन की धारा में बहने के कारण इस बात का अनुभव नहीं हो पाता कि मैं कहां हूं? तो तीसरी बात, मन की धारा को निस्पंद निष्क्रिय मन की धारा को शून्य और शांत करना है। वह कैसे शांत और शून्य होती है, वह शांत होती है तटस्थ दर्शन से, वह शांत होती है मौन साक्षी के भाव से और जब वह शांत हो जाती है, तो सब मिल जाता है, जिसे पाने के लिए प्रत्येक मनुष्य पैदा हुआ है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन की कला
सातवां प्रवचन

आध्यात्मिक और लौकिक जीवन

एक भाई ने पूछा कि क्या आध्यात्मिक और लौकिक जीवन भिन्न-भिन्न हैं या
एक हैं?

ये अब भिन्न-भिन्न माने गए हैं, बल्कि विरोधी माने गए हैं। जो लौकिक
को छोड़े वही आध्यात्मिक हो सकता है। लेकिन यह मान्यता बिल्कुल ही शत-प्रतिशत भ्रांत और गलत है। आध्यात्मिक और लौकिक जीवन विरोधी तो हैं ही नहीं, भिन्न-भिन्न भी नहीं। आध्यात्मिकता लौकिक जीवन को सम्यक रूप से जीने से उपलब्ध होने वाला गुण है। वह कोई जीवन नहीं है। वह जो लौकिक जीवन को ठीक से जीना सीख जाता है उसे आध्यात्मिकता उपलब्ध होती है। जो लौकिक जीवन को ठीक से नहीं जी पाता है, उसे गैर आध्यात्मिकता उपलब्ध होती है। आध्यात्मिकता सुगंध है, लौकिक जीवन ठीक से विकसित हो तो अनिवार्यतः आ जाती है। इसलिए आध्यात्मिकता को कोई जीवन न समझे। वह लौकिक जीवन की ठीक से जीने की निष्पत्ति है। वह उसका फल है, विरोध तो बिल्कुल नहीं है। लेकिन विरोध माना गया है और उसके कारण आध्यात्मिक जीवन पैदा भी नहीं हो सका। क्योंकि जो लौकिक जीवन के जीने के ढंग से ही निकलने वाली सुगंध थी, उसे हमने इस जीवन की विरोधी मान कर उसकी संभावना नहीं थी। अब तक यही समझा गया कि जिसे प्रभु की तरफ जाना है, उसे संसार को छोड़ कर ही जाना पड़ेगा और संसार छोड़ता सारी आध्यात्मिकता की पूरी प्रक्रिया हो गई। कि हम कितना संसार छोड़ गए। संसार छोड़ने से कोई प्रभु के पास नहीं जाता। संसार छोड़ने से मनुष्य और अहंकारी बनता है, लेकिन उन्हें कोई आध्यात्मिक जीवन उपलब्ध नहीं होता। जितना वह छोड़ता है, जितना त्याग करता है, उतना उसको लगता है कि वह छोड़ दिया और मन मजबूत और प्रगाढ़ एवं प्रबल होता जाता है। इसलिए संन्यासी के पास जितना प्रगाढ़ अहंकार होता है, उतना अहंकार साधारण गृहस्थ के पास कभी नहीं हो सकता है। हो भी नहीं सकता है। यही वजह है कि दुनिया के सारे धर्म एक-दूसरे के शत्रु से सिद्ध हैं। क्योंकि तथाकथित धार्मिक आदमी अहंकार से भरा है, उससे दूसरे की मित्रता, ऋषि-मुनि एक दूसरे से मिलने में भी असमर्थ हो गए हैं। अहंकार इतना प्रगाढ़ और मजबूत है। यह जो सारा का सारा हमारी मान्यता रही है कि हम लौकिक जीवन से विपरीत आध्यात्म को समझें, उसने अहंकारी जीवन पैदा किया, उसने आध्यात्मिक जीवन पैदा नहीं किया। मेरी वैसी समझ नहीं है। मैं मानता हूं कि लौकिक जीवन ही अकेला जीवन है। कोई और जीवन होता नहीं, न हो सकता है। गलत जी सकते हैं और ठीक जी सकते हैं लौकिक जीवन, यह दूसरी बात है। लेकिन लौकिक जीवन के अतिरिक्त कोई जीवन नहीं होता।.
एक आदमी घर छोड़ कर चला गया तो आप समझते हैं कि लौकिक जीवन छोड़ दिया। तो आश्रम बनाएगा, तो आश्रम में जीएगा और रहेगा। और लौकिक जीवन नई व्यवस्था से फिर गतिमान होगा। एक आदमी धन कमाना छोड़ देगा तो भीख मांगने का आयोजन करेगा और लौकिक जीवन यहीं से शुरू होता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि धन कमाना तो लौकिक जीवन है लेकिन दूसरे धन कमाते हैं तो उनसे मांगना लौकिक जीवन नहीं है। चोरी करना, लौकिक जीवन है, लेकिन चोर से मंदिर बनवाना, मंदिर में दान लौकिक जीवन नहीं है। यह आध्यात्मिक जीवन है। लौकिक जीवन के बाहर से जीने का कोई उपाय नहीं है। खाएंगे तो, पीएंगे तो, उठेंगे तो, चलेंगे तो, लौकिक जीवन। तो लौकिक जीवन के बाहर जाइएगा कैसे? एक आदमी दुकान चलाएगा, दूसरा आदमी आंदोलन चलाएगा। और दुकान चलाने वाला आदमी जितना दुकान से बंधा होता है, आंदोलन चलाने वाले उस दुकान चलाने वाले से कम बंधे नहीं होते। पकड़ उतनी ही, जकड़ उतनी ही है, सुखी-दुखी उतने ही, आंदोलन सफल होता है तो सुखी होते हैं, आंदोलन सफल नहीं होता है तो दुखी होते हैं। दुकानदार दुकान चलती है तो सुखी होता है, नहीं चलती है, तो दुखी होता है। लेकिन लौकिक जीवन से जाइएगा कहां? जीवन मात्र लौकिक है।
तो सवाल कुल इतना ही रह जाता है कि लौकिक जीवन ठीक से जीआ जाए या गलत ढंग से जीया जाए? ठीक से जीवन जीआ जाता है, उसको मैं आध्यात्मिक कहता हूं।

कैसे जो ठीक से जीता है लौकिक जीवन को, उसे मैं संन्यासी कहता हूं जो ठीक से नहीं जीता, उसे मैं संसारी कहता हूं। शायद ठीक से जीने वाला व्यक्ति न तो जीवन को छोड़ता है, न भाता है और जब उन्हें कोई जीवन छोड़ता या भागता हुआ दिखाई पड़ता है तो हम समझते हैं कि वह दौड़ रहा है। और भाग रहा है। एक आदमी हाथ में पत्थर लिए जा रहा हो और उसे हीरे दिखाई पड़ रहे हों और वह पत्थर वहीं गिरा दे तो हमें जिन्हें हीरे दिखाई नहीं पड़े, हम सोचेंगे कि उसने पत्थर का त्याग कर दिया। वह आदमी कोई त्याग नहीं कर रहा है, त्याग संभव ही नहीं। वह आदमी हीरे के लिए केवल हाथ खाल कर रहा है। महावीर घर छोड़ देते हैं। तो हमको लगता है कि महावीर संसार छोड़ गए। महावीर के लिए कोई वृहत्तर आनंद निमंत्रण दे रहा है जो सामने खड़ा है। और जिसे हम घर-द्वार कहते हैं। वह महावीर के लिए घर-द्वार रहा नहीं। महावीर के जीवन में एक अदभुत उल्लेख है। उनके पिता और मां जिंदा थे तो महावीर ने अपनी मां से आज्ञा चाही कि मैं आनंद की और बड़ी खोज में जाना चाहता हूं। तो उनकी मां ने कहा कि मेरे रहते संभव नहीं है कि मैं तुम्हें जाने दूं। तो मेरे जीते जी घर छोड़ने की कभी बात नहीं करना। मेरे लिए वह मृत्यु से भी ज्यादा दुखद है। तो महावीर का जीवन कहता है कि महावीर रुक गए। मां के जीते जी बाहर जाने की बात भी नहीं की। दो वर्ष बाद मां चल बसी। तो पिता को कहा कि मां ने कहा था कि मैं जब तक जीऊं तब तक बाहर जाने की बात मत उठाना। अब मैं वृहत्तर आनंद की खोज में जाना चाहता हूं। तो अब मैं जाऊं? पिता ने कहा कि मेरे जीते जी यह बात मत करो। फिर कुछ दिन बाद पिता भी चले गए। तो महावीर ने बड़े भाई से कहा कि मैं जाऊं? तो बड़े भाई ने कहा कि मेरे ऊपर दो-दो आघात हुए कि मां और पिता चले गए और तुम इस वक्त जाने की बात कहते हो। यह बात मत करो। तो फिर महावीर ने यह बात ही बंद कर दी। लेकिन साल छह महीने बीतते-बीतते घर के लोगों को पता चला कि महावीर घर में हैं, लेकिन हैं भी नहीं। उनका घर में होना न होना बिल्कुल बराबर हो गया। उनकी घर में मौजूदगी गैर-मौजूदगी बराबर हो गई। घर में आप शरीर की वजह से आप थोड़े ही होते हैं। घर में होते हैं अपेक्षाओं की वजह से, आग्रह की वजह से, घर में होते हैं आप हर आदमियों के बीच में आड़ में खड़े हो जाते हैं। महावीर ऐसे हो गए कि जैसे हैं ही नहीं। किसी प्रयोजन से प्रयोजन न रहा। किसी बात का कोई आग्रह न रहा। जो होता था, होता था। जैसा कि महावीर उस घर में होते तो जैसा चलता था, वैसा चलने लगा। तो भाई ने और घर के लोगों ने सोचा कि महावीर तो घर से जा ही चुका है अब उसे रोकना व्यर्थ है। और उन्होंने उनसे क्या प्रार्थना किया कि आप एक अर्थ में हैं ही नहीं। तो हम आपको रोक कर भी क्या करें? अब आपको जहां होना हो आप वहां जाएं। तो महावीर चल पड़े। तो मेरी अपनी समझ यह है कि अगर उनके भाई उनसे यह न कहते तो महावीर कभी उस घर को छोड़ कर गए ही न होते, लेकिन जीने की व्यवस्था उन्होंने उस घर के भीतर खोज ली थी। कैसे जीना--अनाग्रही, अनासक्त, कैसे जीना, शून्यवत्, कैसे जीना कि जिससे हो ही नहीं, यह उन्होंने सूत्र खोज लिया था और वह घर में भी पूरा हो सकता है, वह जंगल में भी पूरा हो सकता है और बाजार में भी और दुकान में भी पूरा हो सकता है। ठीक से कैसे जीना वह सवाल है? कौन सा जीवन अख्तियार करना, वह सवाल ही भ्रांत है। इस संबंध में एक बहन ने पूछा है और किसी एक ने पूछा है। तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि मन यदि अक्रिया को उपलब्ध हो जाए, तो प्रभु की उपलब्धि होती है। जीवन में ठीक से जीने का अर्थ है कि जैसे कर्म करना कि जैसे कि आप नहीं कर रहे हैं। भीतर अक्रिया हो और उस अक्रिया के केंद्र पर ही जीवन का सारा कर्म निर्मित हो, तो आपने ठीक से जीने की कला खोज ली है। आप आध्यात्म की तरफ विकसित हो जाने वाले हैं। एक बैलगाड़ी चल रही है। चाक घूमता हुआ दिखाई पड़ता है, लेकिन शायद आपको खयाल नहीं हो कि चाक घूम रहा है इसलिए कि कील चाक के बीच में खड़ी हुई है और नहीं घूम रही है। तो यह जो कील की अक्रिया है, उस पर चाक की सारी क्रिया चल रही है। और कील की अक्रिया छूट जाए तो चाक की गति अभी टूट जाने वाली है। चाक वहीं ठहर जाएगी। कील की अक्रिया पर चाक की सारी क्रिया और चाक उसी वक्त तक कुशलता से चलेगा जब तक कील कुशलता से ठहरी हुई हो। अक्रिया और क्रिया में विरोध नहीं है। क्रिया के वृत्त परिधि को अक्रिया की कील पर ठहराया जा सकता है। आपका चित्त अक्रिया में हो और जीवन विराट क्रिया में, तो यह जो

कला है वह एक दिन आध्यात्मिक सुगंध को जीवन में लाए बिना नहीं रहती। अकर्म नहीं है अध्यात्म में। ऐसा कर्म हो, जहां कर्ता विलीन हो गया है। ऐसा कर्म है, जहां करने वाले का अहंकार समाप्त हो गया। यह जो मैंने कल सुबह कहा कि मन जब अक्रिया में हो तो हम शांत और शून्य होते हैं। तब प्रभु का द्वार खुल जाता है। हमें मन की अक्रिया का कोई खयाल नहीं है, कोई पता नहीं है। हम तो इस भांति जीये चले जाते हैं कि चौबीस घंटे मन की क्रिया चलती रहती है। सो करके भी चलती रहती है, उठते भी चलती है, बैठ कर भी चलती है। जैसे एक आदमी चलता है और तब उसका पैर चले, यह तो समझ में आता है। वह बैठ जाए और बैठ कर पैर चलाता रहे तो हम कहेंगे कि वह पागल है। मन की जब जरूरत हो तो वह चले, वह समझ में आता है और जब जरूरत न हो तो वह मौन हो जाए। और जितनी मन की क्षमता बढ़ेगी, उतनी ही जब चलने की जरूरत होगी जब उतनी ही कुशलता और शक्ति पास में आएगी। एक आदमी दिन भर चलता रहे तो फिर थोड़े ही दिन के बाद चलने में वह असमर्थ हो जाने वाला है। और हम मन को चलाते हैं तो दिन भर, लेकिन धीरे-धीरे मन मंद होता चला जाता है। शक्ति क्षीण होती जाती है कुछ दिनों बाद मन के चलने की दौड़ तो चलती रहती है। लेकिन उपलब्धि कुछ भी नहीं रह जाती। मन को शून्य में ले जाने की, अक्रिया में ले जाने के लिए क्या करें? जैसा मैं कल सुबह कहा थोड़ी देर के लिए, चौबीस घंटे में थोड़े समय के लिए मन की क्रिया को देखने वाले साक्षी रह जाएं। लड़ें मत। क्योंकि लड़ना फिर क्रिया है। इसलिए जो आदमी मन को शांत करने की चेष्टा करता है, वह मन क्रिया करता है, उससे मन कभी शांत नहीं होगा। क्योंकि क्रिया से क्रिया कभी शांत करने के लिए ओम-ओम का जाप कर रहा है, एक आदमी मन को शांत करने के लिए भगवान पर ध्यान केंद्रित कर रहा है, वह सब क्रिया कर रहे हैं और क्रिया से क्रिया मिटेगी नहीं रूपांतरित हो सकती है। यह हो सकता है कि मन एक क्रिया छोड़ कर दूसरी क्रिया पकड़ ले। लेकिन सवाल दूसरी क्रिया पकड़ने का नहीं, सवाल अक्रिया में जाने का है। अक्रिया का सूत्र कोई दूसरी क्रिया का सीखना नहीं है। अक्रिया का एक ही सूत्र है साक्षी रह जाना। साक्षी एकमात्र अक्रिया है। सिर्फ द्रष्टा रह जाना। सिर्फ देखने वाला रह जाना। मन चल रहा है, न मालूम संगत-असंगत विचार चल रहे हैं। कभी घड़ी आघ घड़ी को चुपचाप बैठ कर मन को देखते रह जाना। सिर्फ निरीक्षण और वह निरीक्षण भी बिना किसी निर्णय के। कि मन में एक विचार आया कि मैं चोरी करूं तो यह निर्णय भी नहीं लेना है कि बुरा विचार आया। क्योंकि बुरा विचार आया तो फिर क्रिया शुरू हो गई, बुरे विचार का दमन शुरू हो जाएगा। भगवान का विचार आया तो लगा कि बहुत अच्छा विचार आया। तो रस शुरू हो गया। जिसमें रस नहीं है, उसके साथ हम जुड़ जाएंगे। तो मन में क्या चल रहा है। बुरा या भला, कुछ भी चल रहा है, अंधेरा या उजाला, उसे ऐसे देखते रहे हैं कि हमें सिवाय देखने के और कुछ भी नहीं लगे। आधी घड़ी भी चौबीस घंटे में अगर कोई इस भांति मन को देखे कि मन के साथ कुछ भी नहीं करना है, खड़े रहना है और देखना है। तो आप हैरान हो जाएंगे। बहुत शीघ्र आपको पता चलेगा कि मन में अंतराल आना शुरू हो गया है। जब थोड़ी देर के लिए मन शून्य के गर्त में उतर जाना है। थोड़ी देर के निरंतर साक्षी के भाव से ऐसी घड़ी शुरू होगी कि घंटों बीत जाएं और मन खाली रह जाए। फिर क्षमता बढ़ेगी और तब नये प्रयोग किये जा सकते हैं कि मन खाली है ध्यान करते वक्त। फिर उसके घर में बुहारी लगाने लगे हैं और या चरखा कातने लगे हैं। तो ध्यान रखना है कि वह साक्षी का भाव मन के प्रति था, वही साक्षी का भाव चरखे के प्रति या बुहारी के प्रति भी जारी रहेगी। जो मन की क्रिया के प्रति साक्षीभाव था, वह शरीर की क्रिया के प्रति भी जारी रहेगा।
तो मैं जो दूसरी बात कह रहा था कि कर्म के पीछे अकर्म का भाव धीरे-धीरे निर्मित हो जाता है। तब आप जीते हैं, बहुलता से जीते हैं, विविधता से जीते हैं और गहराई से जीते हैं। लेकिन तथाकथित जीने की कोई पकड़ आपके ऊपर नहीं रह जाती। ऐसे व्यक्ति को मैं संन्यासी कहता हूं, ऐसे व्यक्ति को मैं आध्यात्मिक खोजी कहता हूं। और ऐसे व्यक्ति के जीवन में वह धीरे-धीरे उतरना शुरू होता है, जिसका नाम आध्यात्म है, इसका लौकिक जीवन से कोई विरोध नहीं होता।
अक्रिया का सूत्र हैः साक्षीभाव।

और साक्षीभाव बहुत घबड़ाने वाली बात है। क्योंकि हमसे कोई कुछ करने को कहे तो एकदम से समझ में आता है। करना हम जानते हैं, अगर कोई हमसे कहे कि राम-राम कहो तो वह समझ में आता है, कोई कुछ और कहे तो समझ में आता है। करना हमारी हमेशा समझ में आता है। साक्षी भाव एकदम से समझ में नहीं आता। क्योंकि वह न करना है। तो थोड़ा सा अनुभव करेंगे तो खयाल में आएगा। मेरे कहने से नहीं। जैसे बगीचे में बैठे हैं, थोड़ा सा एक्सपेरिमेंट, थोड़ी सी क्रिया प्रयोग कि फूल को देखूं, सोचूं नहीं। एक फूल को सिर्फ पांच मिनट देखूं, सोचूंगा नहीं। क्योंकि सोचना एक क्रिया है। सिर्फ देखूंगा, देखता ही रहूंगा कि "जस्ट टू बी" क्या होता है। तो पांच मिनट बैठने पर कभी किसी क्षण में ऐसा लगेगा कि सोचना बंद था, मैं सिर्फ साक्षी रह गया था। फूल था और मैं था। और बीच में कुछ भी नहीं था। रास्ते पर चल रहे हैं और लोग जा रहे हैं, कभी प्रयोग करते रहें कि मैं सिर्फ देखूंगा, कोई निर्णय नहीं लूंगा कि जो जा रहा है वह राम है कि रावण है। अच्छा है कि बुरा है, हिंदू है कि मुसलमान है। साधु है कि गुंडा है, कोई निर्णय नहीं लूंगा और रास्ते पर चलते हुए लोगों को बस देखूंगा। तो कभी किसी क्षण में जैसा लगेगा कि आदमी जो मैंने देखा और कोई नहीं था, सिर्फ वह आदमी था और मैं था। तो साक्षी का अनुभव धीरे पकड़ में आएगा कि क्या साक्षी का अनुभव है। तो इसको जितना प्रयोग कर सकें साक्षी को उतना करें और घड़ी आध घड़ी को कभी आंख बंद करके किसी कोने में चुपचाप बैठ जाएं और गहरा प्रयोग करें। साक्षी का कि हम सिर्फ देखते रहेंगे। लेकिन एक दिन देखने से हो जाएगा ऐसा मैं नहीं कहता हूं। अक्सर तो यह होगा कि पहले दिन कि मन किसी और क्रिया में संलग्न हो जाएगा जितना और कभी भी नहीं हुआ था। क्योंकि आप उतने खाली कभी भी बैठे नहीं थे कि मन को थोड़ा मौका क्रिया करने का न होता। तो प्राथमिक रूप से जब प्रयोग करेंगे तो मन और जोर से क्रिया करेगा और उससे घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। उससे कह दें कि करो मेरी कोई रोक नहीं है। मैं सिर्फ देखने के लिए हूं। लेकिन हमारी जो तथाकथित नैतिक शिक्षा है, वह साक्षी नहीं बनने देती तो हमने बुरे विचारों को दबा रखा है और अच्छे-अच्छे विचारों को ऊपर कर रखा है और बुरे-बुरे विचारों को नीचे कर रखा है। तो जब आप साक्षी बनने बैठेंगे तो सारे बुरे विचार ऊपर उठने शुरू होंगे, जिनसे आपको घबड़ाहट होती है, उनको हम खुद दबा देते हैं और जब तक आपके बुरे विचारों को दबाते हैं तब तक आप साक्षी नहीं होते हैं। इसलिए वह सुबह जो हमने कहा कि हमें एक सहज मनुष्य चाहिए और सहज मनुष्य वही होगा जो अपने भीतर की समग्रता को स्वीकार करता है। जो मेरे भीतर है वह है। अगर चोरी का खयाल है, तो है। उससे दबाने से मैं मुक्त होने वाला नहीं हूं। उससे जानना ही है, उसे पहचानना ही है। उससे परिचित होना ही है कि जो भी मेरे भीतर है, उसे मैं मुक्त भाव से मैं प्रकट होने दूंगा और देखूंगा और पहचानूंगा। और बड़े आश्चर्य की बात तो यह है और वह बड़ा रिडिकुलस और बड़ा चमत्कारी है घटना कि जो आदमी अपने भले-बुरे को जो भी उसके भीतर है, उसकी पूर्णता में देखने को राजी हो जाता है। इस देखने का उसके भीतर इतने बड़े विवेक का जन्म होता है, इस देखने के लिए एक इतनी बड़ी ऊर्जा पैदा होती है उसके भीतर, बोध की, अवेयरनेस की, होश की, कि उस बोध की अग्नि में जो बुरा है, वह अपने आप जल जाता है और उसे दबाना नहीं पड़ता। वह अपने आप ही जल जाता है। जैसे कि एक अंधे आदमी को एक कमरे के बाहर लाना हो, तो वह पूछेगा कि कैसे जाऊं, कहां से जाऊं, रास्ता कहां है? द्वार कहां है? उसे स्वयं ही दिखाई पड़ रहा है कि इसलिए पूछ रहा है। पूछ कर भी जाएगा, फिर भी संभावना है कि किसी दीवाल से टकरा जाए। किसी खैमे से टकरा जाए। टकरा कर वह फिर घबरा जाएगा और फिर पूछेगा कि कैसे जाऊं, कहां से जाऊं, रास्ता कहां है, द्वार कहां है? लेकिन अगर आपके पास आंख है तो न तो आप पूछते हैं कि द्वार कहां है, न आप सोचते हैं कि द्वार कहां है? आपको जाना है और उठते हैं और निकल जाते हैं, यह भी नहीं सोचते कि द्वार कहां है? उठते हैं और निकल जाते हैं। खयाल भी नहीं होता है द्वार का, दिशा का। उठते हैं और निकल जाते हैं। यह जो मनुष्य के जीवन की अनैतिकता है, उस आत्मिक अंधेपन की अनिवार्य टकराहट है, कि कहीं भी जाता है तो टकरा जाता है। वह टकराहट सिर्फ एक बात की सूचना है। वह आपके बुरे होने की सूचना नहीं है। वह इस बात की सूचना है कि

आपके पास जितना जागा हुआ विवेक चाहिए उतना नहीं है। इसलिए बुरा आदमी मौन के योग्य नहीं, केवल दया के योग्य है। खुद बुराइयां भी दया के योग्य हैं। दया के योग्य इसलिए हैं कि वह केवल सूचक है कि हमारे पास कोई आंख नहीं है, जो दरवाजे को देखे और बाहर हो जाए। तो हम जगह-जगह ठकरा जाते हैं, उठते हैं, चलते हैं, और टकरा जाते हैं। वह टकराने की हमारी सारी अनीति और बुराइयां बनती जाती हैं। और जितना हम बचना चाहते हैं टकराने से, उतनी ही हमारी टकराने की संभावना बढ़ती है। अगर अंधा पूछ ले कि बाएं रास्ता है और हिम्मत करके बाएं चला जाए। तो शायद निकल भी जाए। लेकिन अंधा हिम्मत करके भी जा नहीं पाता। बाएं है, यह जानकर भी, लकड़ी टटोलता है, डरता है कि कहीं दाएं नहीं पहुंच जाऊं, कहीं जरा सा चूक न हो जाए और जितना वह भयभीत होता है, उतना ही उस दरवाजे से चूक जाने की संभावना बढ़ती चली जाती है। और कई बार ऐसा होता है कि जो हम नहीं करना चाहते हैं, वही हम कर गुजरते हैं। जैसे नया आदमी साइकिल चलाना सीखता है। उसे दिखाई नहीं पड़ता हो कि एक पत्थर पड़ा हुआ है। अब इतना बड़ा रास्ता है, उस पर एक छोटा-सा पत्थर पड़ा हुआ हो और वह साइकिल वाला अगर आंख बंद करके भी चलाए तो भी उस पत्थर से टकराने की संभावना सौ में से एक है। रास्ता इतना बड़ा है कि अगर आंख बंद करके भी चलाए तो भी कोशिश करके तो भी उस पत्थर से टकरा सकते हैं। तो रास्ता इतना बड़ा है कि कहीं से भी निकला जा सकता है। लेकिन नया साइकिल चलाने वाला देखता है कि वह पत्थर पड़ा हुआ है और सोचता है कि कहीं मैं उस पत्थर से टकरा न जाऊं और उसकी नजर में सारा रास्ता खो जाता है, सिर्फ पत्थर ही रह जाता है। सब रास्ता खतम हो गया, लेकिन उसे लगता है कि कहीं में उस पत्थर से टकरा न जाऊं, और धीरे-धीरे सिर्फ पत्थर ही उसे दिखता है और कहें मैं उससे टकरा न जाऊं और सौ में से निन्नयानबे मौके ऐसे हैं कि वह पत्थर से टकरा जाएगा। और उस टकराहट में पत्थर का कोई कसूर नहीं है। उस टकराहट में सिर्फ बचने की तीव्र चेष्टा थी। उस तीव्र चेष्टा ने उसका ध्यान केंद्रित किया और जिस बात पर ध्यान केंद्रित हुआ वह फलित हो जाने वाला है। यह ला आफ रिवर्स इफेक्ट है। हम जो नहीं चाहते हैं वह रोज हो जाता है। हम नहीं चाहते हैं इसीलिए हो जाता है। उतना हमें दिखाई नहीं पड़ता। एक बात ध्यान में रखने की है कि मन के साथ लड़ाई लेना हमने बंद कर दी है। क्योंकि सामने लड़ाई ली तो जो आप चाहते हैं, वह नहीं हो पाता है। और जो नहीं चाहते हैं वही होना संभव है, तो लड़ाई लेना बंद कर दें क्योंकि मन के साथ कोई झंझट नहीं करें और उस साक्षी के भाव से आपको क्रिया करनी है जो शून्य में ले जाती है। शून्य जैसा मैंने कहा कि प्रभु का द्वार है, जिसे हर मनुष्य पाने की कोशिश करता है।

एक मित्र पूछ रहे हैं कि सामाजिक मुक्ति कैसे हो सकती है।

पहली तो बात यह है कि जिस मुक्ति की मैं बात कर रहा हूं, वह यह है कि सामाजिक मुक्ति कभी होती नहीं, वह मुक्ति नितांत वैयक्तिक है, जिस मुक्ति की बात मैं कर रहा हूं, वह मुक्ति नितांत वैयक्तिक है। सिर्फ सामाजिक मुक्ति की ही हमें प्रयास नहीं करना होगा। उस मुक्ति की बात मैं नहीं करता, यह मुक्ति तो नितांत वैयक्तिक है, यह सिर्फ एक व्यक्ति की होती है, सबकी हो जाती है। लेकिन वह भी व्यक्ति-व्यक्ति की। इसका कोई सामूहिक रूपांतरीकरण नहीं हो सकता है। लेकिन आप शायद सामूहिक मुक्ति का दूसरा ही अर्थ कर रहे हैं। शोषण विहीन, वर्ग विहीन--समानता का, स्वतंत्रता का समाज। मेरी दृष्टि में ऐसा समाज कभी भी नहीं बन सकता। जब तक कि व्यक्ति-व्यक्ति की चेतनाएं जिस मुक्ति की मैं बात कर रहा हूं--उसको यह उपलब्ध न हो जाए, तब तक आपकी सारी चेष्टाएं एक तरह की शोषण को बदल कर दूसरे तरह की शोषणों को स्थापित करने वाले होंगे और कुछ भी नहीं होगा। आज तक दुनिया में बहुत से क्रांतिकारी हुए और उन सारे क्रांतिकारियों की दृष्टि है कि समाज शोषणों से मुक्त हो जाए। लेकिन उन्हें इस बात की फिकर ही नहीं कि अब शोषण समाज में कैसे आ गया और क्यों आ गया। जैसा आदमी है वैसा आदमी हमेशा शोषण की व्यवस्था निर्मित करेगा, यह बात निराशापूर्ण मालूम हो सकती है, लेकिन जो सच है वही मैं कहना चाहता हूं और पसंद करता हूं। जैसा आदमी है, वैसा आदमी

कभी भी यह नहीं बर्दाश्त करेगा कि सभी आदमी समान हो जाएं। और जब वह कहता भी है कि सारे आदमी समान हो जाएं तब वह यह कहता है कि अभी मुझसे जो ऊपर हैं, यह मेरे बर्दाश्त के बाहर है। वह कभी नीचे के आदमियों के लिए नहीं कहता है कि मेरे समान हो जाएं। यह सारी समानता की बकवास सिवाय इस भीरुता के और किसी चीज के लिए पैदा नहीं होगी। कोई आदमी यह बर्दाश्त नहीं करना चाहता कि कोई आदमी उससे ऊपर हो। और आप याद रखें कि जब तक कोई आदमी यह बर्दाश्त नहीं करना चाहता कि यह आदमी मुझसे ऊपर है, तब तक वह आदमी किसी को नीचे रखने में भी सुख अनुभव अनिवार्य रूप से करेगा। तब हम यह कर सकते हैं कि ऊपर का समाज बदलेंगे। तो समाजवादी समाज होगा, पूंजीवादी समाज नहीं होगा और समाजवादी तरह का शोषण होगा और समाजवाद ढंग की वर्ग व्यवस्था होगी। समाजवादी ढंग की ऊंची और नीची नीतियां होंगी। अच्छी तरह का समाज हम बना सकते हैं और नाम हम कुछ भी दे सकते हैं। लेकिन मनुष्य जैसा है, ऐसे मनुष्य के साथ कोई सामाजिक समानता की संभावना नहीं है। सामाजिक समानता की संभावना ऐसे मनुष्यों के साथ कि जिनको सारा व्यक्तित्व केंद्र के अहंकार बिखर बिखर गया हो। अहंकार के कारण सामाजिक असमानता का, वह आर्थिक घटना नहीं है कि आप संपत्ति बांट दें और लोग समान हो जाएं, वह इतना आसान नहीं है। संपत्ति का मजाक सिर्फ अहंकार में है। और संपत्ति को इकट्ठा करने की वृति भी अहंकार से पैदा होती है। वह कल दूसरे ढंग से पैदा होगी। यहां तक हो सकता है कि एक आदमी का सारा धन छोड़ दे और महात्मा बन जाए। लेकिन फिर भी वह इस खोज में रहता है कि मुझसे बड़ा तो कोई महात्मा नहीं है, इस खोज में हमेशा लगा रहेगा। और यदि उसको कोई कह दे कि काशी में आपसे भी बड़े महात्मा हैं, तो वह उतना ही दुख अनुभव करता है जितना एक गरीब आदमी अनुभव करता है कि मुझसे भी गरीब लोग हैं। यह जो जितने वर्गीय जगत है, यह जितने शोषण में विभाजित और वर्गों में टूटी हुई दुनिया है, यह दुनिया जैसे आदमी हैं, उसकी निष्पत्ति हुई है, इससे यह निकली हुई है और आदमी वहीं मान लेता है और चिल्लाने लगता है कि हर आदमी को समान होना चाहिए। समान कैसे होना चाहिए। आदमी एक भी नहीं, जो समान होना चाहता है। एक आदमी नहीं पृथ्वी पर और कहता हो और जो एक दूसरे के समान होना चाहता हो। बहुत गहरे में जाने पर पता चलता है कि वह चाहता है कि मैं दूसरे के ऊपर हूं। और हम अच्छी-अच्छी बातें भी करते हैं। तब भी अपने बच्चे को यही सिखाते कहते हैं कि देखो वह उतना झूठ बोल रहा है, वह उतना सत्य बोल रहा है, वह उतना सच्चरित्र है, तुझे भी उतना सच्चरित्र होना चाहिए, तब भी वह ऊंचा होने के लिए सिखा रहा है--चाहे वह धन से हो, चाहे वह धर्म से हो, ज्ञान से, बुद्धि से, बंटवारा कर रहा है। मेरी दृष्टि से न तो मार्क्स, न तो गांधी, न तो विनोबा सफल हो सकते हैं। एक बुनियादी भ्रांति पर सारा आयोजन। उनकी करुणा ठीक है, उनकी दया ठीक है कि जैसा हो जाए। लेकिन आपके सपने देखने से कुछ नहीं होगा। हिम्मतवर लोग हैं कि जो ऐसे सपने देखते हैं, जो आदमी के बिल्कुल खिलाफ हो सपना। हिम्मतवर लोग हैं, जो देख रहे हैं हजारों साल से। लेकिन उन सपनों से कुछ होने वाला नहीं है। कोई आदमी सपने नहीं देखते तो आजादी कोई रुकने वाली चीज थी। जिन मुल्कों ने सपने नहीं देखे, वहां आजादी नहीं आई? यह सब तो बचकानी बातें हैं, जिनको हम खूंटी पर टांग देते हैं कि ऐसा हो गया और आजादी क्या आ गई...
... आप जो कहते हैं वह संक्षिप्त में इतनी ही बात कहते हैं कि मनुष्य का जैसा मन है, वह व्यवस्था के कारण पैदा हो गया है। यह जैसी व्यवस्था है उसके कारण यह मन है। आप कहते हैं कि यदि हम व्यवस्था को बदल दें और ऐसी व्यवस्था हो कि मनुष्य को दूसरी व्यवस्था में ले जा सकें। तो समझने की बात इसमें इतनी ही है कि यह व्यवस्था मनुष्य के मन से निकली है या इस व्यवस्था से मनुष्य का मन निकलता है। अगर मनुष्य का मन इस व्यवस्था से निकलता है तो आप ठीक कहते हैं--गांधी ठीक कहते हैं और मार्क्स ठीक कहते हैं कि हम समाज की व्यवस्था को बदलें तो मनुष्य के मन को बदलने की व्यवस्था हो सकती है। लेकिन यदि यह व्यवस्था अंततः मनुष्य के मन से निकलती है तो गांधी गलत कहते हैं और मार्क्स भी गलत कहते हैं। और मेरी समझ यह है कि सारी व्यवस्था जो भी निकली और आज निकल रही है--सर्वोदय या समाजवाद वह भी मनुष्य के मन से निकल रही है। वह भी कोई व्यवस्था नहीं है, जो गांधी को पैदा कर रही है। कोई

व्यवस्था नहीं है जो विनोबा को पैदा कर रही है। विनोबा को कौन सी व्यवस्था पैदा कर रही है? गरीबी और शोषण... गरीबी और शोषण है न? तो आप और मैं या तीसरा व्यक्ति विनोबा नहीं हुआ जा रहा है? व्यवस्था नहीं पैदा कर रही है। गरीबी और शोषण की तरफ एक खास तरह की एक मन की जो वृत्ति है। विनोबा के पास एक मन है, जो उस गरीबी से पीड़ित हो रहा है। आपके पास एक मन है, जो उस गरीबी से खुश और प्रसन्न हो सकता है। हम उस जीवन से जो कुछ निष्कर्ष व नतीजे लेते हैं, वह निष्कर्ष मन के निष्कर्ष हैं और वह मन अगर व्यवस्था से बनता है, तो आप समझ नहीं रहे हैं कि... आप कैसी बात कर रहे हैं। जो कि गांधी, विनोबा, महावीर, बुद्ध सबके खिलाफ जाती मूलता से। मूलता खिलाफ इसलिए जाती कि अगर मन व्यवस्था से निर्मित है तो अंततः कम्युनिस्ट ठीक कहते हैं, समाज की सारी व्यवस्था बदल गई, सारी शिक्षा बदल गई, शरीर में जहां-जहां मनुष्य के जैसे तत्व हैं, जो उसे भिन्न बनाते हैं, उनको निकाल लें, हारमोन बदल दें, उसके भीतर की वाइटेलिटी बदल दें और अगर मन की कुछ भी कुछ गड़बड़ हो, उसके लिए मानसिक व्यवस्था कर दें और मन भी कुछ गड़बड़ करता हो, तो उसको विद्युत की व्यवस्था से साफ कर दें, तो जरूर मैं मानता हूं कि इतने दूर तक राज्य में हम व्यवस्था बदल देंगे--फिर अर्थ बदले, समाज का ढांचा बदले और अंततः मनुष्य के मन को भी हम बुद्धित्व की व्यवस्था का इंतजाम कर लें तो जरूर यह सच है कि जैसा हम आदमी से चाहें वैसा हो सकता है। लेकिन यह आदमी नहीं, वह मशीन रह जाएगा। वह आदमी रहेगा ही नहीं। आदमी वह इसीलिए है कि वह आदमी स्वतंत्र है और मन से ढंग से जीने के लिए वह मुक्त है। यह जो समाज विकसित हुआ है वह मनुष्य के मन में तो छिपा हुआ है, उसका विस्तार है। मेरी बात गलत हो सकती है, इससे चिंतित होने की जरूरत नहीं है। मेरी बात बिल्कुल गलत हो सकती है। लेकिन मेरी जो समझ है वह आपसे कह देना चाहता हूं। मेरी समझ यह है कि जो भी हमने निर्मित किया है--चाहे वह फ्यूडिलज्म हो, चाहे वह कैपिटलिज्म हो, चाहे वह सोसियालिज्म हो। तो मनुष्य के मन का भी सारा का सारा विस्तार और व्यवस्था है। और वह सारा का सारा असफल होता चला गया है। समाजवाद आया रूस में और नाम समाजवाद का रह गया। आया समाजवाद की जगह स्टेट कैपिटलिज्म। आई एक मेनेजोरियल व्यवस्था। जहां पूंजीपति बदल गया। और व्यवस्थापक पूंजीपति की जगह हो गया और इसने जितना उपद्रव किया, उतना पुराने पूंजीपति वाद ने कभी भी नहीं किया था। अकेले स्टैलिन ने कोई सात लाख से लेकर एक सौ बीस लाख तक लोगों को मारा। हिटलर भी पैदा हो रहा है। वह भी हम नहीं कर रहे हैं कि हमारे मन से पैदा हो रहा है। और गांधी और विनोबा भी जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि हिटलर और स्टैलिन लेकिन वह कुछ कहां से होगा। आप कोई समाज को हित पहुंचा पाएंगे ऐसा नहीं है। उसके मूल को पकड़ कर ही हित पहुंचाया जा सकता है। और मैं यह भी नहीं कर रहा हूं कि ऐसा समाज निर्मित न हो, जो मुक्त न हो। ऐसा मैं कह भी नहीं रहा हूं। और यह मैंने कहा भी नहीं कि जो गांधी और विनोबा की कल्पना करते हैं, वह कल्पना न की जाए, यह भी मैंने नहीं कहा। कहा मैंने यह कि गांधी और विनोबा असफल होने को आबद्ध हैं और कहा इसलिए कि विनोबा और गांधी की सारी चिंतना इस आदमी को स्वीकार करके की गई हैं और सब आदमी का सामान किया जाए और कैसे जमीन वितरित की जाए और कैसे उस आदमी का सामाजिक ढांचा बदला जाए, उस आदमी की स्वीकृति के साथ चल रही है। मेरा कहना इतना है कि उस आदमी की स्वीकृति के साथ वह सब असफल होने को आबद्ध हैं। यह आदमी जैसा है उस आदमी से जो निकल रहा है, वह ज्यादा सच है और वह जो कह रहे हैं, वह सपना है।
मेरा जो कहना है वह इतना ही है कि अगर उस सपने को कभी पूरा भी करना हो
तो यह आदमी जैसा है उस आदमी के आमूल मन को बदले की दिशा में सोचना होगा। आपमें से किसी ने कहा कि बुद्ध, क्राइस्ट, महावीर हजारों साल से सोच रहे हैं कि आदमी का मन बदला जाए तो सब हो जाएगा। तो मेरा कहना है कि महावीर और बुद्ध आदमी का मन बदला जाए यह जरूर सोच रहे हैं, लेकिन मन बदलने की जो व्यवस्था दे रहे हैं, वह बुनियादी रूप से गलत है, इसलिए यह नहीं हो पाया है।
मुझे तकलीफ यह है कि महावीर और बुद्ध यह जरूर सोच रहे हैं वही कि आदमी
का मन बदला जाए तो व्यवस्था बदल जाएगी। वह नहीं हो पाया। आपके इतने सोचने

से कि आदमी का मन बदल जाए और आप जो कहते हैं कि मन बदल जाएगा यह जरूरी नहीं है। महावीर और बुद्ध आदमी के मन को बदल नहीं पाए। क्योंकि महावीर और बुद्ध की सारी चिंतना परमाद्गामी है, इस बात के लिए चिंतना नहीं है कि एक दूसरा मन के दमन से सारी उनकी व्यवस्था है और मन के दमन से मन कभी भी बदला नहीं जा सकता। आप सबका सारा धर्म, सारा योग और सारे शास्त्र यह कह रहे हैं कि मन को बदला जाए, लेकिन मन को बदलने की जगह वे मन को तोड़ने का उपाय व्यवस्थित कर रहे हैं कि मन कैसे तोड़ा जाए और मन को कैसे दबाया जाए। तो यह जो मन का तोड़ना है, वह सफल नहीं होता है। इससे आप यह न समझ लें कि समाज को बदलने वाले सफल हो गए असफल हो जाने वाले। दृष्टि तो उनकी बिल्कुल ठीक थी। महावीर और बुद्ध की, क्राइस्ट की, और कृष्ण की कि आदमी का मन बदला जाए। इस माने में वे ठीक निष्कर्ष पर पहुंच गए थे कि मन बदलेगा तो सामाजिक व्यवस्था बदलेगी। लेकिन मन कैसे बदल जाए, इसमें बिल्कुल चूक गए। और इसलिए वह नहीं हो पाया। यह मेरा गांधी और विनोबा से विरोध है कि वे समाज को बदलने के मौलिक जगह दे रहे हैं। आदमी को स्वीकार कर रहे हैं। महावीर और बुद्ध से मेरा विरोध है कि वे आदमी को बदलने की जो व्यवस्था दे रहे हैं, वह व्यवस्था गलत है। अब क्या ठीक व्यवस्था हो सकती है, इस संबंध में जब कभी दुबारा आऊंगा तो विस्तार से बात करूंगा उस पर।
सबको प्रणाम।

जीवन की कला
आठवां प्रवचन

जीवन की अनंतता

मेरे प्रिय!
नये मनुष्य के जन्म के लिए तभी विचार संभव है जब पुराने मनुष्य को गलत समझने की भावना साफ और स्वीकृत हो। अब तक तो हमारी धारणा यही रही है कि पुराना मनुष्य ठीक, सय था। निरंतर आज के नेता के लिए हम अतीत का अनुकरण किए चले जाते हैं। रोज-रोज यह बात दोहराई जाती है कि अब सब कुछ विकृत हो गया है। पहले सब ठीक था। लेकिन कोई भी यह नहीं पूछता है कि बीते हुए दिन अगर ठीक थे तो आज कहां से पैदा हो गया है। अगर कल ठीक था तो आज का जन्म कहां से हुआ है। जो आज है वह कल से निःस्पंद हुआ है। वह कल से निकला है और दुनिया अगर रोज-रोज विकृत होती चली जाती हो तो यह समझ लेना आवश्यक है, कि इस विकृति के बीज हमेशा से मौजूद रहे हैं। हो सकता है कि उस विकृति की अभिव्यक्ति रोज-रोज ज्यादा प्रकट और स्पष्ट होती चली जाती है। लेकिन आमतौर से हम यह समझ लेते हैं कि आज विकृत हो गया है। आज का आदमी कुछ खराब है, कलियुग है या कुछ और। पहले सब ठीक था तो आज अचानक सब गलत हो जाना कोई कारण नहीं। जीवन एक सतत अविछिन्न धारा है। गंगा काशी आकर न तो अनायास पवित्र हो सकती है और न अनायास अपवित्र हो सकती है। वह जो काशी आकर गंगा हो जाती है उसके बीज गंगोत्री से ही प्रारंभ हो जाते हैं। लेकिन बीमारियां जब पूरी तरह प्रकट होती हैं, तब ज्ञात होती हैं, आरंभिक लक्षण अधिकतर नहीं पहचाने जाते। आज जैसा मनुष्य है ये पिछले पांच-दस हजार वर्ष की संस्कृति की निष्पत्ति है। उसका फल है। अगर आज का मनुष्य गलत है तो जान लेना जरूरी है कि आज तक समस्त मनुष्य गलत था। आज को दोष देने से, अथवा और बीते पर गुमान कहने से न तो कोई समाधान है न कोई अंत है। न कोई उपाय। वर्तमान की निंदा और अतीत की प्रशंसा से कुछ भी हल नहीं होगा, कठिनाइयां और बढ़ती हैं। पहनी कठिनाई तो यह बढ़ जाती है कि जब हम कहते हैं कि आज सब विकृत और कुरूप हो गया तो स्वभावतः एक ही निष्कर्ष खयाल आता है कि यदि हम पीछे वापस लौट चलें कि जैसा आदमी था वैसे हम पुनः हो जाएं, तो सब ठीक हो जाए। यह और भी खतरनाक बात है। क्योंकि जो पीछे था उसी से आज का जन्म हुआ है। और कोई बीमारी की पिछली अवस्थाओं में लौट जाने से बीमारी से मुक्त नहीं होता। बल्कि बीमारी जब पूरी प्रकट हो जाए तो जानना चाहिए खोजना चाहिए कि बीमारी जब अप्रकट थी तब उसके क्या लक्षण थे। और यह दृष्टिकोण हमेशा से रहा है कि अतीत की हम प्रशंसा करते रहे हैं। मैंने अब तक कोई ऐसी किताब नहीं देखी, जिसमें यह लिखा हो कि आजकल के लोग ठीक हैं। दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब यह कहती है कि आजकल के लोग बिगड़ गए हैं। पहले के लोग ठीक थे। मैंने सुना है कि जो कि छह हजार वर्ष पुरानी है। उसकी भूमिका को पढ़ कर ऐसा लगता है जैसे आधुनिक किसी लेखक ने इस जमाने के संबंध में कुछ लिखा हो। भूमिका में लिखा है कि आजकल के लोग बिल्कुल ही पतित और नारकीय हैं, अनैतिक हो गए हैं, अनाचारी हो गए हैं, पहले के लोग अच्छे थे। छह हजार वर्ष पुरानी भूमिका में अगर ऐसा लिखा तो क्या यह पूछना संगत न होगा कि ये पहले के लोग कब थे? ये कभी थे? या कि हमारी कल्पना काम कर रही है। ये पहले के लोग कभी भी नहीं थे, लेकिन कल्पना और अनुमान ने बड़े काम किए हैं। आज से दो हजार वर्ष बाद न तो आपकी किसी को स्मृति होगी और न मेरी। लेकिन गांधी याद रह जाएंगे, रामकृष्ण याद रह जाएंगे, रमण याद रह जाएंगे। दो हजार साल बाद जो असली आदमी था, जो वास्तविक आदमी था, वह तो भूल जाएगा, जो अपवाद थे वे स्मरण रह जाएंगे। और दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे कि गांधी के जमाने के लोग कितने अच्छे थे। गांधी से निर्णय बिल्कुल ही असत्य होगा। वह असत्य इसलिए होगा कि गांधी हमारे प्रतिनिधि नहीं थे, गांधी हमारे बीच अपवाद थे। गांधी ऐसे नहीं थे जैसे हम हैं। गांधी वैसे थे, जैसे हमें होना चाहिए। और दो हजार वर्ष बाद गांधी हमारे प्रतीक हो जाएंगे। और लोग सोचेंगे कि कितना अच्छा युग था। गांधी का युग, गांधी जैसे लोग। असलियत उलटी है। हम गोडसे जैसे तो बिल्कुल नहीं हो सकते। यही हमेशा हुआ। बुद्ध हमें याद हैं, क्राइस्ट हमें याद हैं,

कनफ्यूशियस हमें याद हैं। और इन थोड़े से लोगों के आधार पर हम पुरानी आदमियत के संबंध में जो नतीजे लेते हैं वे एकदम भ्रांत और झूठे हैं। बल्कि सच्चाई यह है कि अगर महावीर के समय के लोग अहिंसक होते हो महावीर को याद रखने की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती और अगर बुद्ध के समय के लोग बुद्ध जैसे होते तो बुद्ध को महापुरुष कहने का भी उपाय न रह जाता। इन सारे लोगों को हम हजारों वर्षों के बाद भी याद कर रहे हैं। वह सिर्फ इसलिए कि वे बहुत अनूठे और अद्वितीय लोग थे। उन जैसा कोई भी नहीं था। जिस दिन महान मनुष्यता का जन्म होगा उस दिन महापुरुषों का युग समाप्त हो जाएगा। महापुरुष तभी तक दिखाई पड़ना संभव है, जब तक आदमियत नीची ओछी और विकृत है। अंधेरी बदलियों के बीच चमकती हुई बिजली की रेखा दिखाई पड़ती है और सारा आकाश विद्युत से भरा हो, तो विद्युत कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेगी। स्कूल का साधारण सा शिक्षक भी जानता है। सफेद दीवाल पर सफेद अक्षरों से लिखना व्यर्थ है। वह काले तख्ते पर लिखता है। वह सफेद खड़िया काले तख्ते पर दिखाई पड़ती है। महावीर और बुद्ध हमें दिखाई पड़ते हैं। वे बड़ी मनुष्यता के काले तख्ते पर सफेद खड़िया की लकीरों के कारण। और कोई कारण नहीं। लेकिन उनके आधार पर हमने नतीजा ले लिया है कि मनुष्य ठीक था। कोई पूछता भी नहीं कि बुद्ध की शिक्षाएं क्या हैं जीसस की शिक्षाएं क्या हैं? क्या समझा रहे हैं वे लोगों को? समझा रहे हैं चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, हिंसा मत करो, घृणा मत करो। यही समझा रहे हैं। अगर लोग ईमानदार थे और चोर नहीं थे तो बुद्ध क्राइस्ट और महावीर पागल रहे होंगे। ये सारी शिक्षाएं किसके लिए? किससे कह रहे हैं कि चोरी मत करो? किससे कह रहे हैं कि बेईमानी मत करो? ये बातें किससे कहीं जा रही हैं। और अगर हम गौर से देखें तो बुद्ध की शिक्षाएं और महावीर की शिक्षाओं का आज भी बदलने का कोई कारण नहीं है। वही शिक्षाएं आज भी हमें देनी पड़ रही हैं। यह किस बात का सबूत है? यह इस बात का सबूत है कि आदमी जैसा आज है, करीब-करीब वैसा ही हमेशा था। क्योंकि जो शिक्षाएं आज उसे जरूरी हैं, वही शिक्षाएं हमेशा जरूरी थीं। दवाइयां खबर देती हैं, बीमारियों की। शिक्षाएं खबर देती हैं आदमी स्थिति की। स्वस्थ आदमी के लिए दवाओं की जरूरत नहीं होती। और जो दवाइयां पांच हजार वर्ष पहले जरूरी थीं वही अगर आज भी जरूरी हैं तो आज को गाली देना नासमझी है। यह जान लेना जरूरी है कि मनुष्य जैसा आज तक रहा है। वह पूरी मनुष्यता ही कुछ गलत कर रही है। नये मनुष्य का जन्म कभी भी नहीं हो सकता इसलिए कि पुराने को हम ठीक मान कर बैठ गए हैं। और पुराना अगर गलत न होता तो जैसा आदमी आज पैदा हुआ है, यह पैदा नहीं हो सकता था। इसके पैदा होने की कोई जरूरत न थी। यह आसमान से पैदा नहीं हो गया है। यह परंपराओं की निष्पत्ति है जिनमें आज तक मनुष्यता जीती रही। जरूर उनमें रोग के मूल बीज छिपे हुए हैं। इसलिए जब मैं यह कहता हूं कि नये मनुष्य की जरूरत है तो मैं यह नहीं कर रहा हूं कि आज का मनुष्य गलत है और पहले मनुष्य ठीक था। मैं यह कह रहा हूं कि आज तक का ही मनुष्य गलत रहा है और जब तक यह स्पष्ट न हो जाए तब तक हम मार्ग नहीं खोज सकते। क्योंकि बार-बार हमारा मन पीछे लौटने का होने लगता है और पीछे कोई रास्ता नहीं है। पीछे से हम होकर आ रहे हैं और वही रास्ता हमें यहां ले आया है। इसलिए रामराज्य की बातें, अतीत की बातें, मनुष्य को पीछे लौटा ले जाने की बातें सार्थक नहीं हैं। उससे ज्यादा अहितकर कुछ भी नहीं हो सकता क्योंकि जिन रास्तों पर हम लौटने का निर्णय करते हैं, बार-बार उन रास्तों पर आदमी चल चुका है। और उन रास्तों से चल कर वहां पहुंचा है जहां आज वह खड़ा है। उन पर फिर उसे लौटा कर ले जाने का सिवाय इसके कोई अर्थ नहीं होगा कि दो-तीन हजार साल में वह फिर वहीं पहुंच जाए, जहां आज पहुंचा है। अगर आज जोर जबरदस्ती से रामराज्य स्थापित कर लिया जाए तो तीन हजार साल में फिर हम वहीं पहुंच जाएंगे। जहां हम खड़े हैं। यह वैसे ही है, यह वैसा ही पीछे लौटने का खयाल आदमी में बार-बार पैदा होता है। और उसका कारण यह नहीं कि पीछे आदमी ठीक था। इसके कारण दूसरे हैं। और मनोवैज्ञानिक हैं। ऐतिहासिक नहीं। हर आदमी को बचपन की स्मृति है कि बचपन सुंदर था और सुखद था। मनुष्य पहले ठीक था और अब गलत हो गया है। और यही मनोवैज्ञानिक कारण मनुष्य अपने पूरे इतिहास में बार-बार दुहरा लेता है कि कल ठीक था और अब गलत हो गया है। बचपन की सुखद स्मृति है। कारण अतीत के

इतिहास का ठीक होना नहीं। और बचपन की स्मृति भी इसलिए सुखद है कि हमें जीवन के जीने की कला का भी ठीक अंदाज नहीं। अन्यथा यह होना विकृत और रोग का लक्षण है कि बुढ़ापे में आदमी कहे कि बचपन के दिन सबसे सुखद थे। इसका मतलब यह हुआ कि बचपन के बाद इस आदमी का जीवन आनंद की तरफ विकसित नहीं हो सका। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि बचपन के बाद यह आदमी गलत ढंग से जी रहा है। बचपन अगर सुखद था तो उसका अर्थ यह हुआ कि हम विकसित नहीं हुए। हमने जीवन की खोज ही नहीं की। जीवन के रस और आनंद से हम परिचित ही नहीं हुए, अन्यथा जीवन का अंतिम दिन सबसे ज्यादा सुखद और आनंद पूर्ण होना चाहिए। अगर जीवन एक विकास है तो मरने की घड़ी जीवन के अनुभव की चरम घड़ी होनी चाहिए। मृत्यु का क्षण जीवन की अनुभूति का परिपूर्ण क्षण होना चाहिए। लेकिन हम कहते हैं कि जन्म के दिन सबसे सुखद और सुंदर थे। और जब कवि इसके गीत गाते हैं तो हम बड़े प्रसन्न होते हैं। बचपन की सुखद और सुंदर अनुभूति सारे जीवन की निंदा है। और सारे जीवन के गलत होने का सबूत है। और यही स्मृति चूंकि हर एक मनुष्य के मन में बैठी हुई है अतः इसी स्मृति का प्राजेक्शन प्रक्षेप और विस्तार होता है। और हम कहते हैं कि पहले के दिन ठीक थे। धीरे-धीरे पूरे इतिहास पर यह वृति लागू हो जाती है। और निरंतर हम पीछे लौटने का भाव लेने लगते हैं। नये, आज के आधुनिक वर्तमान के मनुष्य को बदलने के लिए हम पुराने मनुष्य की तस्वीर उसके सामने खड़ी करते हैं। एक बात जाननी जरूरी है। मनुष्य पीछे नहीं लौट सकता। उसके अनुभव बहुत प्रगाढ़ हैं। उसका, पूरे का पूरा मनुष्य-जाति का अचेतन मन अतीत से भलीभांति परिचित है इसलिए लाख उपदेश देने पर भी आदमी पीछे लौटने को राजी नहीं हो सकता। आदमी की खोज आगे जाती है। आगे ही खोज हो सकती है और आगे खोज नहीं हो पाती क्योंकि हम हमेशा पीछे की तरफ देखने में लीन हो जाते हैं। मनुष्यता आज तक ऐसे ही चलती रही है, जैसे किसी कार के सामने प्रकाश न लगा हो, कार के पीछे प्रकाश लगा हो। कार तो आगे चलती है और प्रकाश पीछे पड़ता है, तो सिवाय दुर्घटना के और कुछ भी होने की संभावना नहीं। आदमी चलता आगे है और देखता पीछे है। इसलिए रोज-रोज दुर्घटना होती है और जितनी दुर्घटना होती है उतना ही वह और पीछे देखने लगता है, कि पीछे के दिन अच्छे थे। वहां दुर्घटना कभी भी नहीं होती थी। और जितना वह ज्यादा पीछे देखता है आगे का जीवन दुर्घटना से और भरता जाता है। अतीत की तरफ देखने वाले लोग मनुष्य का निर्माण नहीं कर रहे हैं।
लेकिन अतीत की तरफ देखने वाले लोग बहुत भले मालूम होते हैं। और वे बाधा बन रहे हैं। वे रुकावट डाल रहे हैं। उस चिंतन में जिस दिन मनुष्य के नये विकास की दिशा में सोचना शुरू करते हैं। पहली बात तो यह है कि अतीत कोई स्वर्ग था, यह सरासर झूठ है। अतीत कोई स्वर्णयुग था, यह सपने की बात है, कविताओं की, सत्य नहीं है। और दूसरी बात कि अतीत की तरफ निरंतर देखने के कारण वह मनोभूमिका नहीं बन पाती कि हम भविष्य की तरफ देखें और जो कुछ भी किया जा सकता है वह सिर्फ भविष्य में ही किया जा सकता है। अतीत में कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो भी संभावना है करने की; वह भविष्य में है। और भविष्य में कुछ भी करने में हम तभी समर्थ हो सकते हैं जब अतीत से हमारा मोह कम हो जाए। जितना हम अतीत की ओर देखते हैं उतना ही उस राष्ट, उस व्यक्ति की आत्मा वृद्ध और बूढ़ी होती चली जाती है। बच्चे भविष्य की तरफ देखते हैं, बूढ़े अतीत की तरफ देखते हैं। बूढ़ों के सामने मौत के अतिरिक्त कोई भविष्य नहीं होता। बच्चों के पास कोई अतीत नहीं होता। बच्चे भविष्य की तरफ देखते हैं। जो कौम अतीत की तरफ देखने लगती है वह धीरे-धीरे अपने हाथ से ही अपनी मृत्यु का आयोजन जुटा लेती है। वह बचपन खो देती है। वह जवानी खो देती है। वह बूढ़ी हो जाती है। हमारी कौम सैकड़ों वर्ष से बूढ़ी होकर जी रही है। और यह देश युवा नहीं हो सकता जब तक भविष्य की तरफ देखने की सामर्थ्य हम न जुटा लें। अतीत की तरफ जब तक हम बंधे हैं तब तक वह साहस, वह सामर्थ्य नहीं जुटाई जा सकती। इसलिए मैंने कहा कि आज जैसा मनुष्य है वह अतीत का फल है। अगर वह स्पष्ट हो जाए तो हम अतीत से मुक्त हो सकते हैं। फल को देखकर वृक्ष का पता चलता है। आज के आदमी को देखकर पूरे अतीत का पता चल जाना चाहिए। और अगर इसे हम गौर से देखें तो आज का मनुष्य निंदा के नहीं, दया के योग्य है। यह हजारों साल की गलत संस्कृति का फल भाग रहा है। हजारों साल की गलत सयता के आधारों का

परिणाम भुगत रहा है। यह आदमी घृणा के और निंदा के योग्य नहीं; दया के योग्य है। जो हजारों साल से मनुष्य के जीवन का ढांचा रखा गया था उस ढांचे ने उसकी यह हालत कर दी है। हालांकि एक दो दिन में संस्कृतियों के फल नहीं आते, संस्कृतियों के फल आने में हजारों वर्ष लग जाते हैं। इसलिए महावीर जो आधार रखेंगे राम जो आधार रखेंगे उनके सामने उसका फल स्पष्ट नहीं हो सकता। उसके फल स्पष्ट होने में हजारों वर्ष लग जाएंगे और जब हजारों वर्ष बाद फल आएगा तब हमें ख्याल भी नहीं होगा कि किसने आधार रखे थे और क्या फल आए। अभी गांधी ने आधार रखे थे। रोज-रोज फल आने शुरू हो गए। दो, चार सौ पांच सौ वर्षों में पूरे फल हमारे सामने होंगे और तब तय करना मुश्किल होगा कि पांच सौ पहले गांधी पर हम जिम्मा डालें। गांधी अलग पीछे बच जाएंगे। खयाल भी नहीं आएगा। संस्कृति की यात्रा लंबी है। और उसे यह स्मरण भी नहीं होता कि कौन सी चीज क्या परिणाम लाती है।
मैं कुछ बातों पर विचार करना चाहता हूं ताकि खयाल आ सके कि हमने कैसे मनुष्य को विकृत कर दिया। और खयाल आना और भी मुश्किल हो जाना है जब हम अच्छे अच्छे सिद्धांतों के आधार पर मनुष्य को विकृत होने की व्यवस्था करते हैं। जब अच्छे शब्दों की आड़ होती है और साधु-संतों का प्रभाव होता है तब और भी कठिन हो जाती है। खोज करनी कि आदमी की विकृति के आधार किसने रखे? आज तक के धर्मों और संस्कृति के सारे आधार, दमन के आधार रहे हैं सप्रेशन के आधार रहे हैं। और जो आदमी पैदा हुआ है वह तीन हजार वर्ष के दमन का परिणाम है। लेकिन खोज पाना बहुत कठिन है। आज सड़क पर एक युवक एक स्त्री को धक्का दे रहा है तो यह खोज पाना कठिन है कि तीन हजार वर्ष की ब्रह्मचर्य की शिक्षा का यह फल हो सकता है। यह खयाल में भी आना कठिन है। इस तरफ दृष्टि भी जानी कठिन है। क्योंकि ब्रह्मचर्य का कहां ऊंचा सिद्धांत और कहां नंगी स्त्रियों की तस्वीरें, चित्र, फिल्में, कहानियां कविताएं, कहां लड़के एसिड फेंकते हुए लड़कियों को धक्का देते हुए, गालियां देते हुए? कहां ये लड़के? कहां यह गंदा युग? कहां यह कामुकता से भरा हुआ सारा साहित्य और कहां कामुकता से भरा हुआ सारा साहित्य और कहां ऋषि मुनियों की ब्रह्मचर्य की बातें इनमें क्या संबंध? मैं आपसे कहना चाहता हूं इतने अनिवार्य संबंध है। जो देश भी बहुत दिन तक काम की; यौवन की; निंदा करेगा और दमन करेगा, उस देश में आज नहीं कल यौवन का विक्षिप्त विस्फोट होना निश्चित है। जो देश भी सेक्स के संबंध में शत्रुता का भाव लेगा, आज नहीं कल उसका पूरा चित्त सेक्सुअल हो जाने को मजबूर है। जब यह हो जाएगा तब हम चिल्लाएंगे और गाली देंगे और तब हम कहेंगे कि आदमी गलत हो गया है। और कभी हम भूल कर भी नहीं सोच पाएंगे कि इसको गलत करने में अच्छे तथाकथित लोगों का हाथ है। ब्रह्मचर्य की शिक्षा मनुष्य-जाति को कामुक बनाने के सिवाय और कहीं भी नहीं ले गई और अगर यह शिक्षा जारी रहती है तो सारी पृथ्वी कामुकता का एक नग्न नृत्य हो जाने को है। और जुम्मा उन लोगों पर नहीं होगा जो गंदी फिल्में बनाते हैं। उन लोगों पर नहीं होगा जो गंदी किताबें लिखते हैं। जुम्मा उन अच्छे लोगों पर होगा जो स्त्री को नरक का द्वार बतलाते हैं। जुम्मा उन अच्छे लोगों पर होगा जिन्होंने काम की धारणा को न तो वैज्ञानिक रूप से स्थापित होने दिया, न मनुष्य की काम वासना के लिए स्वस्थ दिशाएं खोजीं, न मनुष्य के चित्त के विकास के लिए नैसर्गिक है? क्या स्वाभाविक है? उसकी कैसे सम्यक अभिव्यक्ति हो? वे उसके कोई आधार नहीं रखे, जिन्होंने आमूल रूप से यौन की निंदा की। उन लोगों के ऊपर जुम्मा होगा, सारे मनुष्य-जाति यौनग्रस्त होती चली जा रही है। और जितना मनुष्य यौन ग्रस्त होता है, उतना ही हम ऋषि मुनि की पुकार करते हैं, कि वापस लौट चलो, ऋषियों के चरणों में। ब्रह्मचर्य की शिक्षा जोर से दो। लोगों को समझाओ कि यह काम पाप है, अनीति है। व्यक्ति को मुक्त करो वासना से, हम उतना ही ज्यादा इस नीति शिक्षा को दोहराते हैं और हमें पता नहीं कि इसी शिक्षा का यह फल है। जितना ही आप दोहराइएगा यह फल उतना ही विषाक्त होता चला जाएगा। ऐसे एक दुश्चक्र में आदमी जी रहा है। एक विसियस सर्किल खड़ा हो गया है। जो रोग का कारण है, उसे हम बीमारी समझ रहे हैं। जिस बात को मनुष्य के मन में जितना दबाने का उपाय किया जाए वह बात उतना ही बल अर्जित करती है और एक दिन प्रकट होने की प्रतीक्षा करती है।

जिस बात को आदमी के भीतर दबाया गया वही बात उससे ज्यादा विकृत होकर प्रकट होनी शुरू हो गई है। अभी हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा कि लड़कों का पता नहीं है। वे आएंगे कि नहीं आएंगे कोई पता नहीं क्योंकि आपने वहां तख्ती लगा दी है। कि मैं यहां बोलूंगा आप आएं। इससे भी ज्यादा उचित यह होना कि हाल के बाहर एक तख्ती लगा दी जाती कि यहां भीतर कोई भी न आए। यहां आज आना मना है तो जो विद्यार्थी नहीं आए हैं जरूर आ गए होते। फिर इस विश्व विद्यालय के पूरे केंपस में इतने संयमी विद्यार्थी खोजना कठिन हो जाता। जो इस हाल की तरफ न आता। मुश्किल होता। और अगर कोई विद्यार्थी संकोच में लाज शर्म में बिना झांके इस हाल से निकल भी गया होता तो बड़ी बेचैनी में पड़ जाता। कक्षा में बैठता, लेकिन पढ़ नहीं पाता। मन उसका इसी भवन के आसपास डोलता रहता। सांझ होते-होते उसे यहां आना पड़ता। सौ में से निन्नयानबे मौके ऐसे हैं कि वह आता। एक मौका ऐसा भी है कि वह किसी भय, किसी संकोच, किसी डर से न आता तो रात किसी सपने में इस भवन में अवश्य हो आता। हम निषेध करते हैं और निमंत्रण बन जाता है। हम रोकते हैं और बुलावा हो जाता है। हम कहते हैं नहीं और हां का प्रतिकार पैदा होता है। आदमी का मन दमन को स्वीकार करने को न कभी राजी था और न राजी है। दमन, निषेध, नकार, आकर्षण को जन्म देते हैं।
एक फकीर था, नसरुद्दीन। एक दिन सांझ अपने घर से बाहर निकलता था। किन्हीं मित्रों से मिलने जा रहा था कि देखा कि घोड़े पर सवार उसके दूसरे गांव का एक बहुत प्यारा मित्र आ गया है। उसने अपने मित्र से कहा कि जमाल! तुम रुको, मैं दो-तीन जगह जाऊंगा जरूरी है वहां जाना। किसी को समय दिया है। वहां जाता हूं। घंटे भर बाद लौटूंगा। दुख तो मुझे बहुत हो रहा है कि वर्षों के बाद तुम आए और मैं तुमको घर में अकेला छोड़कर जाऊं। लेकिन मजबूरी है जल्दी से जल्दी लौट आऊंगा। उसके मित्र ने कहा कि अगर कोई एतराज न हो तो मैं भी साथ चला चलूं। रास्ते में बात भी हो लेगी। लेकिन मेरे कपड़े धूल से भरे हैं। अगर तुम्हारे पास दूसरे कपड़े हों तो में उन्हें ऊपर से डाल लूं और तुम्हारे साथ हो लूं। नसरुद्दीन ने वक्त जरूरत के लिए एक अच्छा कोट, कमीज, पगड़ी बचा रखी थी। जल्दी से निकाल लाया। मित्र ने कपड़े पहन लिए। मित्र जब चलने को साथ तैयार हो गया तब नसरुद्दीन को भूल पता चली। मित्र तो बहुत शानदार मालूम होने लगा फिर उसे कष्ट और भारी दुख हुआ कि कपड़े तो मेरे हैं और शान इसकी बन गई। उसके मन को समझाया और दबाया कि ये भी क्या फिजूल बातें सोचते हो? तुम्हारा इतना प्यारा मित्र है? क्या कपड़े तुम्हारे क्या उसके? बड़ी ज्ञान की बातें की थीं। क्या कपड़े किसी के होते हैं? कपड़े में क्या मोह? समझा बुझा कर मित्र के घर पहुंचा। मित्र से बात होती थी लेकिन बात ऊपर-ऊपर होती थी। भीतर उसे बार-बार कपड़ा ही दिखाई पड़ता था। और बार-बार वह अपने को समझाता कि कपड़े भी क्या किसी के होते हैं? कैसा पागल हो गया है तू नसरुद्दीन? तू इतनी आत्मा की बातें करता था और कपड़ों पर अटका है? अक्सर आत्मा की बातें करने वाले कपड़ों पर अटके होते हैं। लेकिन यह उसे पता नहीं। उसने समझा बुझा कर रोक-टोक कर कपड़ों की बात भीतर छिपा ली। आगे मित्र को लेकर जिस परिवार में गया तो उन्होंने पूछा कि कौन हैं? स्वभावतः वह इतना शानदार मालूम पड़ रहा था। नसरुद्दीन को फिर खयाल आया कि वे ही कपड़े, अन्यथा कौन पूछता इसको? लेकिन उसने कहा कि क्या मैं कपड़े की बात करता हूं? छोड़ो? कपड़ों की बात नहीं करनी है। फिर उन्होंने पूछा परिचय? आप कौन हैं? तो उसने परिचय दिया कि मेरे मित्र हैं बड़े पुराने मित्र हैं। नाम है जमाल! रह गए कपड़े सो कपड़े मेरे हैं। कह गया तब खयाल आया कि यह क्या हो गया? बहुत घबड़ा गया। पसीना निकल आया। मित्र भी, घबड़ा गया। परिवार के लोग भी हैरान हुए कि ये कपड़े मेरे हैं। बड़ी ग्लानि अनुभव हुई। सभी दमन करने वालों को निरंतर ग्लानि का अनुभव होता है। निरंतर अपराध का, गिल्ट का बड़ा अपराधी लगा। बाहर निकलते ही क्षमा मांगने लगा कि माफ कर दो। पश्चात्ताप करने लगा कि ये क्या बातें निकल गईं? क्यों निकल गईं? कैसे मेरी जुबान धोखा दे गई? जुबान धोखा नहीं दी थी, धोखा वह खुद दे रहा था। जुबान ने तो वही कह दिया था जो सच था। जो भीतर था। वही निकल आया, धोखा वह दे रहा था जुबान नहीं। कहने लगा कि कैसी भूल हो गई? कैसी जुबान से क्या बात निकल गई? जो नहीं कहनी थी, कोई खयाल ही

नहीं था कहने का। मित्र भी बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि मैं भी बहुत हैरान हो गया। क्या बात है? लेकिन चलो मैं तो खुद ही कह रहा था कि बाहर चलकर तुमसे कहूंगा कि तुमने क्या किया? लेकिन तुम खुद ही क्षमा मांगते हो छोड़ो जाने दो। मित्र ने तो जाने दिया लेकिन नसरुद्दीन कैसे जाने देता? दूसरे घर फिर जाना था। फिर वही कपड़े अब केवल कपड़े न थे। दोहरा हो गया था मामला। कपड़े भी और कपड़े की बात का अपराध भी। अब मन और भी द्वंद्व में पड़ गया था। दमन की वृति मनुष्य को अंततः और कानफिल्कट में ले जाती है अब मन द्वंद्व में था। वे कपड़े याद आने लगे और पश्चात्ताप भी याद आने लगा। बात तो कर रहा था लेकिन बात में मन नहीं था। भीतर द्वंद्व था। मंदिरों में पूजा करिए। ऊपर प्रार्थना चलेगी, भीतर द्वंद्व है। सारी प्रार्थना झूठी है। गीता पढ़िए, उपनिषद पढ़िए, कुरान और बाईबिल पढ़िए, जब भीतर द्वंद्व है सब पढ़ना व्यर्थ है। लेकिन ऊपर से मीठी-मीठी बातें करता चला गया। जितना ही भीतर वह द्वंद्व गहरा होने लगा ऊपर बातें उतनी ही मीठी होने लगीं। मीठी बातों से हमेशा सावधान होने की जरूरत है। भीतर बहुत कड़वाहट न हो तो आदमी ऊपर बहुत मीठी बातें नहीं करता। भीतर शत्रुता न हो तो मित्रता के लिए बहुत चर्चा करने की आवश्यकता नहीं होती। भीतर घृणा न हो तो मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, इस बेवकूफी को बार-बार दोहराने का कोई सवाल नहीं उठता। दूसरे मित्र के घर पहुंचे, फिर वही। पहुंचने पर जैसे ही उसने कपड़े देखे, मित्रों की आंखें, उसके कपड़ों पर उलझ गईं। नसरुद्दीन पीछे छूट गया। किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। फिर बेचैनी कि वही कपड़े। लेकिन अब उसने कहा कि मुझे यह नहीं कहना है कि कपड़े मेरे हैं। अपने ऊपर संयम रखना है। संयम रखने वालों के भीतर क्या छिपा है, इसका हमें कभी भी पता नहीं चलता। संयम रखना इसलिए पड़ता है कि भीतर रोग है। संयम से रोग मिटता नहीं केवल दबता है। और दब कर बलवान हो जाता है। दबा लिया है उसने। फिर-फिर बात उठी कि कौन है? उसने परिचय दिया। अपने को रोकते हुए कि यह नहीं कहना है कि कपड़े मेरे हैं। उसने कहा कि मेरे मित्र हैं जमाल। मेरे प्यारे मित्र हैं। बहुत दिन बाद आए हैं। सोचा इन्हें भी साथ ले चलूं। रह गए कपड़े कपड़े मेरे नहीं उन्हीं के हैं। कपड़े मेरे नहीं उन्हीं के हैं सब घर के लोग हैरान हो गए कि यह बताने की क्या जरूरत थी कि कपड़े उन्हीं के हैं। कुछ शक होता है। मालूम नहीं किसके हैं? नसरुद्दीन के हैं? मित्र भी घबड़ाया कि यह बात तो फिर लौट आई है। लेकिन उलटी होकर लौटी है। जब बातें उलटी होकर लौटती हैं तो लोग समझते हैं कि दूसरी बातें हो गईं। जब वेश्या के घर जाने वाला संन्यासी हो जाता है तो लोग समझते हैं कि मामला दूसरा हो गया। मामला वही है जो वेश्या के घर में जाता था वही वेश्या के घर से भागने को मजबूर भी करता है। जब आदमी धन को छोड़कर भागने लगता है तो यह मत सोच लेना कि धन को इकट्ठा करने वाला कोई दूसरा आदमी था। धन के प्रति लार टपकाता है जो मन, वही धन को छूने से भी इनकार करने लगता है कि मैं छुऊंगा भी नहीं। मनुष्य का मन अतियों में डोलता है। एक्सटीम में चलता है। कहा था कि कपड़े उसके हैं। तो दूसरी अति ने मन पकड़ा। दमन किया जोर से तो मन ने कहा कि अब यह कहो कि कपड़े उसी के हैं मेरे नहीं। बाहर निकलता तो अब अपराध और गहरा हो गया था। दमन करने वालों के दमन की वृति रोज गहरी होती चली जाती है। वे निरंतर दीन-हीन आत्मा हो जाते हैं। हर बार ली हुई वृति हर किया हुआ दमन छूटता है और पश्चात्ताप का अंधेरा पीछे छूटता है। पश्चात्ताप और जोर से दमन करने को कहता है। बाहर आकर जमाल के वह पैर छूने लगा कि क्षमा कर दो। जमाल ने कहा कि अब मैं तीसरे घर तुम्हारे साथ जाने को नहीं। यह क्या पागलपन है? क्या कपड़ों के अतिरिक्त तुम्हें कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है? अगर तुमने ऐसा घर पर ही कहा हो तो मैं अपने दीन-हीन कपड़े पहनकर ही चला आता। ये कपड़े तो अड़चन बन गए। मित्र ने कहाः न मालूम क्या हो गया है? मैं खुद अपने होश में मालूम नहीं पड़ता। कभी सोचा भी नहीं था कि ऐसी बातें मेरे मुंह से निकल सकती हैं। लेकिन शायद पहली बार गलती हो गई थी। इसलिए सुधारने के लिए दूसरी बात मुंह से निकल गई। लेकिन अब बात खतम हो गई है छोड़ो। अब कपड़े की बात ही नहीं उठानी है। मित्र ने कहा, वचन दो, कसम खाओ, कि अब कपड़े की बात नहीं उठाओगे, तो साथ चलता हूं नहीं तो वापस लौट जाता हूं। उसने कसम खाई कि मैं कसम खाता हूं कि कपड़े की

बात बिल्कुल नहीं उठानी है। कपड़े की बात ही नहीं करनी है। फिर वे तीसरे घर में गए जो कसम खाने वालों की हालत है वही उसकी हो गई। कसम खा ली है कि कपड़े की बात नहीं उठानी है। और मन है कि सिवाय कपड़ों के दूसरी बात ही नहीं करता। मन कपड़ों की कपड़ों से भर गया और कसम कि कपड़ों की बात नहीं उठानी है। वह तीसरे के घर पहुंच गया। तो उसे कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा था, कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था। भीतर बैठा ज्वालामुखी ऊपर वे कपड़े बोलने को आतुर हो रहे थे। वे कपड़े कुछ सुनना चाहते थे, कुछ कहना चाहते थे। अब कपड़े बहुत बलवान हो गए। जाते ही दिखाई पड़ा कि आंखें कपड़ों पर हैं दूसरों को भी। दरअसल में जब आपकी आंख कपड़े पर हो तो आपको सारी दुनिया की आंख कपड़े पर ही दिखाई पड़ेगी। ये साधु-संन्यासियों को रास्ते पर लगे हुए नंगे पोस्टर अकारण ही दिखाई नहीं पड़ते। ये जो साधु संत हैं ये अश्लील पोस्टर और अश्लील साहित्य के विरोध में आंदोलन अकारण ही नहीं चलाते। इन्हें क्यों दिखाई पड़ते हैं ये पोस्टर? इन्हें क्यों ये साहित्य दिखाई पड़ता है? इनकी निरंतर नजर औरत की नग्नता पर लगी है। उससे बच रहे हैं। उससे छूट रहे हैं। उससे भागना चाह रहे हैं। तो जगह-जगह वही नंगी औरत दिखाई पड़ रही है। उसे कपड़े ही कपड़े दिखाई पड़ने लगे थे। मित्र ने पूछा कौन हैं ये? अब वह बहुत घबड़ा गया। बहुत संभल कर बोला और कहने लगा कि मेरे मित्र हैं--जमाल। बहुत पुराने मित्र हैं। बड़े प्यारे मित्र हैं। एक क्षण रुका। और फिर जैसे कोई चीज फूट पड़े उसने कह दिया रह गए कपड़े, सो कपड़ों की बात ही नहीं उठानी है। किसी के भी हो सकते हैं। कसम खा ली है कि कपड़ों की बात ही नहीं उठानी है। आप पूछना ही मत कि कपड़े किसके हैं? किसी के भी हो सकते हैं? कपड़ों से क्या लेना-देना है। सवाल आदमी का है। यह सप्रेसिव माइंड, वह दमन करने वाला चित्त, अंततः वही पहुंचा देता है। सारी मनुष्यता को हमने यहां ही पहुंचा दिया है। हजारों वर्षों की दमनकारी शिक्षा ने मनुष्यता के सारे चित्त को रुग्ण और विक्षिप्त कर दिया है। आज जो विस्फोट हो रहे हैं उनके लिए गाली मत देना। इस आदमी को जो आज है यह बेचारा विक्टिम है। यह शिकार है हजारों साल का। इसका कोई कसूर नहीं। यह दयनीय है, यह फंस गया है चक्र में। हजारों साल की शिक्षाओं ने इसके सारे चित्त को विक्षिप्त कर दिया है। हम उसे रोज-रोज इन्हीं शिक्षाओं को देकर विक्षिप्त किए चले जा रहे हैं। पुराना मनुष्य गलत सिद्ध हुआ। उसका सारा व्यक्तित्व कामुक हो गया। उसका सारा व्यक्तित्व दब गया। वह जो भी चाहता था, जो भी सहज था, सब टूट गया और जटिल हो गया। और उस जटिलता ने क्या-क्या परिणाम लाए हैं। आज आंकना भी बहुत कठिन हो गया है। मेरी समझ में है कि दुनिया कभी भी युद्धों से मुक्त नहीं हो सकेगी, अपराधों से, हत्याओं से आत्म हत्याओं से, जब तक हम मनुष्य के लिए गैर दमनकारी नीति नहीं खोज लेते। पिछले दो महायुद्धों में यह अनुभव हुआ। पहला महायुद्ध चला, कोई साढ़े तीन करोड़ लोगों की हत्या हुई। जितने दिन युद्ध चला उतने दिन बड़े आश्चर्य की घटना घटी। सारे यूरोप में वह घटना किसी की कल्पना में भी नहीं थी कि घटेगी? वह घटना यह घटी कि युद्ध के चलते समय हत्याएं कम हो गईं? चोरियां कम हो गईं, लोग कम पागल हुए, यह तो बड़ी हैरानी की बात थी। युद्ध से पागलपन का क्या संबंध? लोग कम पागल हुए, आंकड़ा नीचे गिर गया पागलों का, और मनोवैज्ञानिक परेशान हो उठे कि पागलों से कहीं युद्ध चलता है तो काशी में किसी के पागल होने से क्या संबंध? फिर दूसरा महायुद्ध आया और बड़ी हत्या हुई, कोई हत्या के आंकड़े दुगुने हो गए। साढ़े सात करोड़ हत्या हुई। पागलों के, हत्यारों के, आत्महत्या करने वालों के आंकड़े उसी अनुपात में दुगुने नीचे गिर गए। तब कुछ को-रिलेशन कुछ अंतर-संबंध दिखाई पड़ा। तब यह दिखाई पड़ा कि जब युद्ध चलता है तब सामूहिक रूप से पागलपन के निकलने की सुविधा मिल जाती है तो व्यक्तिगत रूप से पागल होने की जरूरत नहीं रह जाती। जब सामूहिक रूप से कोई रोग फैलता है तो व्यक्तिगत रूप से निकास अलग से खोजने की जरूरत नहीं रह जाती। जब यूनिवर्सल मेडनेस हो तो प्राइवेट मेडनेस की जरूरत क्या है? जब इतने जोर से हत्या चल रही हो तो मेरा जो हत्या करने का मन है वह तृप्ति अनुभव करता है। जब इतने जोर से सब कुछ विक्षिप्त हो गया हो तो वह जो मेरा तनाव है इस विक्षिप्तता के साथ तादात्म्य जोड़ लेता है, और मुक्त हो जाता है। इसीलिए रास्ते पर भी दो आदमी लड़ते हों तो आप अकारण खड़े नहीं हो

जाते; हजार काम छोड़ कर। दो आदमियों को लड़ता देख कर आपके भीतर कोई तृप्ति मिलती है। युद्ध चलता है तो लोग पांच बजे सुबह उठ कर जो कभी आठ बजे के पहले नहीं उठते थे, अखबार खोजने लगते हैं। क्या पागलपन है? क्यों अखबार की आपको जरूरत पड़ गई है सुबह?
युद्ध की खबर, हिंसा की खबर, आग्नेय बम, एटमीय हाइड्रोजन बम, आपके भीतर
जो विध्वंस का तीव्र भाव है उसको तृप्ति देते हैं। आदमी के भीतर इतना विध्वंस का भाव क्यों है? आदमी तोड़ने को इतना आतुर क्यों है? आदमी क्या तोड़ना चाहता है? अगर ठीक से हम समझें तो आदमी अपने भीतर जो दमन है उसको तोड़ना चाहता है। लेकिन उसकी सूझ में कुछ नहीं आता और वह कुछ भी तोड़ने लग जाता है। लड़के बसें जला रहे हैं, मकान तोड़ रहे हैं, शिक्षकों पर पत्थर फेंक रहे हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि न उन्हें शिक्षकों से संबंध है, न बसों से न मकानों से। लड़कों की सहज काम-वृति का अति दमन उन्हें तोड़ने को आतुर कर रहा है। और वे कुछ भी तोड़ रहे हैं। और वे कुछ भी तोड़ते रहेंगे। आपकी शिक्षाओं का कोई फल होने को नहीं है। जब तक हम व्यक्ति के लिए सहज, नैसर्गिक अदमनकारी, नॉन-सप्रेसिव कोई व्यवस्था नहीं खोज लेते। अब तक का सारा मनुष्य दमन के पत्थर के नीचे दबा हुआ मनुष्य था। इसलिए आप जानकर हैरान होंगे कि तीन हजार वर्षों में चौदह हजार छह सौ युद्ध हुए हैं। और न महावीर समझा सकते हैं, न अहिंसा। न बुद्ध, न गांधी। क्योंकि महावीर, बुद्ध और गांधी अहिंसा को समझाते रहे। इससे कुछ होने वाला नहीं। सिर्फ वही आदमी लड़ने को अनातुर होता है जिस आदमी के भीतर द्वंद्व है। और दमन है वह हमेशा तोड़ने को, मिटाने को, फोड़ने को, आतुर होता है। आतुरता व्यक्तिगत रूप से भी निकलती है। और हर दस पंद्र्रह वर्षों में इतनी घनीभूत हो जाती है मनुष्य की आत्मा पर, कि सामूहिक निकास होना अत्यंत जरूरी हो जाता है। युद्ध होते रहेंगे। जब तक सप्रेसिव मॉरेलिटी है। जब तक दमनकारी नीति है तब तक युद्ध कभी भी बंद नहीं हो सकते। कोई शिक्षा अहिंसा की किसी अर्थ की नहीं है। आदमी को नये आदमी को--अगर पैदा करना है तो केंद्रीय सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूं और वह यह है, आज तक का आदमी दमन की नीति पर खड़ा है। वह आदमी गलत था। नया आदमी पैदा करना है। और अगर आप पैदा नहीं करते तो एक बात निश्चित है कि पुराना आदमी तो मरेगा और उसके साथ पूरी मनुष्यता ही मरेगी। क्योंकि नया आदमी वही होगा जो जी सके आगे। वे ही दमनकारी चित्त अंततः हाइड्रोजन बम और सुपर बम पैदा कर लिए वही दमनकारी चित्त वहां पहुंच गया है कि हम सारे जीवन को ही नष्ट कर देंगे। जीव के प्रति इतनी तृष्णा, इतनी घृणा, इतना क्रोध मनुष्य के भीतर इकट्ठा हो गया है कि हम यूनिवर्सल स्यूसाड के लिए तैयार हो गए हैं। हम सार्वजनिक रूप से जागतिक आत्महत्या कर लेंगे। लेकिन यह जीवन जीने जैसा नहीं रह गया। इसे हम खत्म ही कर लेंगे। आदमी के चित्त में पांच हजार वर्षों में हमने इतना रोग इकट्ठा कर दिया है कि अब वह कहता है कि हम मिट ही जाएंगे। अब जीने का कोई अर्थ नहीं। जीने का सारा आनंद हमने छीन लिया है। जीने का सारा रस छीन लिया। जीने का सारा अर्थ छीन लिया। और हम समझ रहे हैं हजारों वर्षों से कि जीवन असार है। जीवन दुख है। जीवन पाप है। और एक ही लक्ष्य बता रहे हैं आदमी को मोक्ष। एक ही लक्ष्य बता रहे हैं कि किसी तरह जीवन के आवागमन से मुक्त हो जाओ। क्या पागलपन की बातें हम आदमी को समझा रहे हैं। जीने को जीने की कला जीवन कैसे जीयें, यह हम नहीं सिखला रहे हैं। जीवन कैसे छोड़ें अगर इस मोक्षवादी या ठीक शब्दों में कहें तो मृत्युवादी संस्कृति का, और आदमी की इन शिक्षाओं का यह अंतिम फल हुआ हो कि आदमी ने सोचा हो कि हम सभी लोग इकट्ठे मोक्ष को क्यों न चले चलें। अलग-अलग बहुत हो चुका। इससे जगत चक्र कभी खाली नहीं होता और संसार का चक्र चलता ही रहता है। एक-एक आदमी अगर मुक्त होता रहा, एक-एक बूंद समुद्र की अगर लोप होती रही तो अनंतकाल तक करोड़ों आत्माएं कष्ट ही भोगती रहेंगी। अब हम कोई ऐसी व्यवस्था कर लें सामूहिक मुक्ति की। यह सारा युद्ध और जो अब यह समग्र युद्ध हमारे सामने खड़ा हुआ है मनुष्य को इसी मानसिक दमन की वृति का परिणाम है। इतने दिनों के मानसिक दबाव का अब अंतिम विस्फोट होने को है। पुराना मनुष्य अर्थात दमनयुक्त। नया मनुष्य अर्थात, निर्सग स्वभाव, सहज, नये मनुष्य के जन्म की दिशा का सूत्र है। हम मनुष्य के सहज जीवन की व्यवस्था

और जीवन की कला के संबंध में सोचें। सोचें कि मनुष्य जैसा है। गाली न दें मनुष्य को कि तुममें काम की वृति है। कि तुम पशु हो, कि तुम जानवर हो, कि तुम में मैथुन है कि तुम कुत्ते और पशुओं की कोटि के हो। इन गालियों से कुछ भी नहीं होता। आदमियों के भीतर जो है वह है, आपकी गालियों से कोई असर नहीं पड़ता। आपकी गालियों से स्वीकृति बंद हो जाती है और वह खुद भी बंद हो जाता है सोचना, कि क्या मेरे भीतर है। वह खुद को ही डिसीव करने में, और प्रवंचना में पड़ जाता है। एक ऐसी व्यवस्था देनी है जगत को, और मनुष्य की जाति को जो सहज है। वह स्वीकृत हो सके। उसकी निंदा न हो। उसका निषेध न हो। उस सहज को कैसे हम स्वस्थ दिशा में ले जा सकते हैं। उससे जो सूत्र विकसित हों, उन्हें हम गति दें। मनुष्य को सहज होने के लिए आयोजन करना है। मनुष्य ने असहज होने के लिए भारी आंदोलन कर लिया है। और एक-एक आदमी विकृत हो गया है। नया मनुष्य निर्सग का मनुष्य होगा। वह इनकार नहीं करेगा कि मैं पशु हूं। बहुत कुछ है उसमें, जहां वह पशु से जुड़ा है। और उसके मन में स्वीकृति होगी कि ठीक है। लेकिन अपनी पशुता की स्वीकृति उसे पशु नहीं बना देती। अपनी पशुता की स्वीकृति अपनी सहजता की स्वीकृति उसे सरल बनाती है। निर्सगता के अनुकूल बनाती है। और सरलता के मार्ग से वह पशु का और मनुष्य का अतिक्रमण कर सकता है। सहज होकर वह उसको भी पा सकता है जो प्रभु है। जटिल होकर तो वह अपने को ही खो देता है। प्रभु को पाने का सवाल ही नहीं। दमन से, तो वह स्वयं से ही टूट जाता है वह परमात्मा से कैसे जुड़ सकता है। मेरी बात है आदमी को आदमी से जोड़ देना है। और आदमी को हम आदमी से तब तक जोड़ नहीं सकते, जब तक हमारे मन में जैसा आदमी है उसकी स्वीकृति न हो। अस्वीकृति तोड़ रही है। दमन तोड़ रहा है। विरोध तोड़ रहा है। नये मनुष्य की जन्म की दिशा है सहज की दिशा, सरल की दिया, स्वाभाविकता की दिशा। हम परमात्मा के खिलाफ लड़ रहे हैं। प्रकृति से, सहज से, निर्सग से लड़ना मूलतः ईश्वर का विरोध है। क्योंकि अगर ईश्वर का विरोध है। क्योंकि अगर ईश्वर को पसंद नहीं है प्रकृति और निर्सग तो कभी का उसे नष्ट कर देना चाहिए। लेकिन वह निरंतर प्रकृति को जन्म दिए चला जा रहा है। अनंत-अनंत रूपों में जीवन को विकसित किए चला जा रहा है। और हम मोक्ष के आकांक्षी हैं। मोक्ष का आकांक्षी अधर्मी है। जीवन की और परिपूर्ण जीवन की आकांक्षा चाहिए। अनंत जीवन की आकांक्षा चाहिए ऐसे जीवन की आकांक्षा चाहिए जिसका कोई अंत न हो। शायद मोक्ष का ठीक अर्थ यही होगा कि अनंत जीवन। जीवन की अनंतता। उसी में मैं एक हो जाऊं। लेकिन जो ऊर्जा हमारे भीतर प्रकट हो पा रही है उससे ही हम एक नहीं हो पा रहे हैं। उससे ही हमने दीवाल खड़ी कर ली है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। पुराना मनुष्य गलत भित्ति पर खड़ा था। और अगर नई भित्ति हम मनुष्य को दे सकते हैं तो मनुष्यता बचाई जा सकती है। अन्यथा हम रोज-रोज पागल होते चले जाएंगे। हम रोज-रोज रुग्ण होते चले जाएंगे। हम रोज-रोज रुग्ण हो रहे हैं। आज अमेरिका में कोई पंद्रह लाख लोग रोज अपनी मानसिक चिकित्सा के लिए सलाह ले रहे हैं। यह सरकारी आंकड़ा है। और सरकारी आंकड़े कहीं भी सत्य नहीं होते। कम से कम तीस लाख लोग ले रहे होंगे। तब सरकार कहेगी कि पंद्रह लाख लोग चिकित्सा की सलाह ले रहे हैं। न्यूयार्क का अभी मनोवैज्ञानिक परीक्षण हुआ, केवल अठारह प्रतिशत लोग मानसिक रूप से स्वस्थ कहे जा सके। तो कितनी देर है कि जब पूरा आदमी पागल हो जाए। इतनी देर मैं यहां बोला। एक घंटे अगर, तो एक घंटे में पृथ्वी पर साठ लोगों ने आत्महत्याएं कर लीं। प्रति मिनट एक आदमी आत्महत्या कर रहा है। क्या हो गया है आदमी को? और जो आत्महत्या नहीं कर रहे हैं वे आत्महत्या से भी बदतर हालत में जी रहे हैं। सिर्फ साहस नहीं जुटा पाते मरने का। इसलिए जीए चले जा रहे हैं। लेकिन उनके जीवन का कुल जोड़ एक लंबी आत्महत्या से ज्यादा नहीं निकलेगा। एक ग्रेजुअल स्युसाइड है। जिस तीस चालीस वर्ष में पूरा कर पाते हैं। कोई आदमी एक मिनट में पूरा कर लेता है। यह जो स्थिति है क्या यह स्थिति नहीं प्रतीत होती कि बदली जाए। क्या यह ऐसा नहीं लगता कि आदमी नया हो? लगता है प्रत्येक को लगता है। लेकिन जैसे ही यह लगता है कि आदमी को बदलना है वैसे ही एक दूसरा भ्रांत तर्क मन में बैठा है कि पिछले जैसे आदमी को बना देना चाहिए। गुरुकुल खोलने चाहिए। यहां काशी विद्यापीठ

में पढ़ाने की कोई जरूरत नहीं। यहां लड़के बिगड़ते हैं। लड़कियां साथ हैं। गुरुकुल खोलने चाहिए। वहां पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य की शिक्षा देनी चाहिए। वहां दूर रखना चाहिए स्त्री और पुरुष को ताकि वह पास न आ पाएं। युवकों को फिल्में नहीं देखने देना चाहिए। उपन्यास नहीं पढ़ने देना चाहिए। ये बेवकूफी की बातें उठती हैं जब बदलाहट का सवाल उठता है। इन्हीं बातों का यह फल है। और इन्हीं बातों को हम दोहराए चले जा रहे हैं। और जब भी सवाल उठता है तो चलो विनोबा के पास। चलो साधु-संतों के पास। उनसे पूछो कि क्या रास्ता खोजें। उन्होंने जो रास्ता बताया है वह आदमी को यहां ले आया है। और फिर उन्हीं के पास चलो। उनसे पूछो कि क्या रास्ता है। और वह दमन की, घुटने की, घोंटने वाली, गला घोंटू प्रवृति रोज चर्चित होती है। रोज प्रवचन होते हैं। उसी आदमी को रोज कसा जाता है। एक बड़े विद्रोह की जरूरत है। हम अतीत के पूरे मनुष्य के जीवन-आधारों को देख लें और खोजें कि हम कैसे हो गए हैं। उसे हो जाने में उन जीवन आधारों का क्या अंतर-संबंध है? उन आधारों की जगह नये आधार विचार करें, निर्मित करें। मैं नहीं कहता कि मैंने जो कहा वह आप मान लें। यह पुराना आदमी कहता था। वह भी पुराना आधार है कि हम जो कहें वह मान लें। तीर्थंकर जो कहें वह मान लें। मैं नहीं कहता कि मैंने जो कहा वह आप मान लें। तीर्थंकर जो कहें हम जो कहें वह मान लें। तीर्थंकर जो कहें वह मान लें। मैं नहीं कहता कि मैंने जो कहा वह आप मान लें। वह भी पुराना रोग है।
मैं आपसे कहता हूं कि आप ने मेरी बात सुनी बड़ी कृपा की। इतना ही करें
कि मैंने जो कहा उसे सोचें। हो सकता है कि जो मैंने कहा वह बिल्कुल गलत हो सकता है। सत्य का किसी का कोई ठेका नहीं है। मैंने जो कहा वह बिल्कुल गलत हो सकता है या हो सकता है कि दुनिया में जो लोग पागल हो गए हैं मैं भी पागल हो गया हूं। और जो बातें कह रहा हूं पागल की बातें हैं। पागल को कभी पता नहीं चलता कि पागल है। हो सकता है कि मुझे पता न हो कि मैं पागल हूं। इसलिए मेरी बातों को मान लेने की जरूरत नहीं। सिर्फ सोचने का निवेदन है। और अगर प्रतीत हो कि सब गलत है तो कचरे की तरह बाहर फेंकते चले जाएं। और अगर कुछ बात ठीक लगे तो चिंता करें खोजें। जब आप सोच कर किसी बात को पाएंगे कि वह सत्य है तो वह बात मेरी नहीं रह जाती है वह आपकी हो जाती है।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। और अंत में सबके भीतर के परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन की कला
नौवां प्रवचन

जीवन का आमूल परिवर्तन

मेरे प्रिय आत्मन्!
जीवन तो सभी को मिलता है। लेकिन फिर भी जीवित बहुत थोड़े लोगों को कहा
जा सकता है। अधिक लोग ऐसे ही जीते हैं कि जैसे वे जीते ही न हों। जीवन का न कोई अर्थ, ऐसे जीते हैं, जैसे मजबूरी में एक व्यर्थ बोझ उठाना पड़ रहा हो। ऐसे जीने को जीना कहना शब्दों के साथ खिलवाड़ करना है। जीने की संभावना सबको मिलती है लेकिन उस संभावना को वास्तविक रूप से बहुत थोड़े लोग जान पाते हैं। और जीवन के साथ हम जो करते हैं, अवसर तो जैसा मैं एक कहानी कहता हूं--एक सम्राट था और उसके तीन बेटे थे। वह चिंतित था कि इन तीनों में से किसको साम्राज्य सौंपू। कौन है इस योग्य जो साम्राज्य का मालिक बन सकेगा। तीनों एक जैसे थे। कैसे जानूं कि कौन योग्य है। उसने एक फकीर को पूछा। फकीर ने रास्ता बताया। और सम्राट ने संध्या को तीनों लड़कों को बुलाया और कहा कि एक हजार रुपये लो और बस कल तक एक हजार में जो भी सामान ला सको, लाकर महल को भर दो। बस केवल हजार रुपये खर्च करने हैं और महल अधिक से अधिक भर जाए। ऐसा आयोजन करें। कल संध्या मैं आऊंगा और तुम्हारी परीक्षा इसी से हो जाएगी कि तुममें से साम्राज्य का मालिक कौन बनेगा। जो सफल होगा वही सम्राट बनेगा। इसलिए सोच कर, समझ कर, इस कार्य को पूरा करो।
वे सब बड़े सोच में पड़ गए कि इतने रुपये में क्या हो सकता है। महल बड़ा था। हजार रुपये में क्या हो सकता है। शायद लाख रुपये होते तो कुछ सार्थक लायक हो भी सकता था। हजार रुपये तो उसके सजाने में ही खर्च हो जाएंगे। पहले लड़के ने बहुत चिंता की और रात भर सो न सका। दूसरे दिन भी बड़ा बेचैन था और दिन ढलता जा रहा था सांझ करीब बाती जाती थी। फिर क्या होगा? आखिर में वह इतना घबराया, इतना चिंतित और परेशान हो गया कि सोचा जाऊं मधुशाला और थोड़ी शराब पी लूं--तो शायद थोड़ी राहत मिले, चिंता से, और तब शायद कुछ कर सकूं। वह मधुशाला गया। उसने पहला प्याला तो स्वयं पिया और सोचा कि एक प्याली पीकर लौट आऊंगा। लेकिन एक प्याली पीकर कोई कभी उस द्वार से आज तक लौट न सका। पहली प्याली आदमी पीता है और फिर दूसरी प्याली जाम और फिर इसी तरह तीसरी प्याली... और फिर प्यालियों का जो सिलसिला चलता है, उसका उसको पता भी नहीं चलता कि कितनी शराब पीयी। उसने खूब शराब पी और बेहोश हो गया। बेहोश पड़ा देखकर उसे कुछ लोग उठा कर ले आए और महल की सीढ़ियों पर उसे छोड़ गए। जब सम्राट संध्या आया तो महल अंधकार से भरा था। द्वार पर ताले पड़े थे। और राजकुमार बेहोश सीढ़ियों पर पड़ा था। सम्राट ने उसे जगाया और उसने कहा कैसे पड़े हो यहां? उसने कहा कैसे रोकें, कहां से रोकें, तुम कौन हो?
उसके पिता ने कहा कि तुम पागल हो गए हो। मुझे भी स्मरण नहीं कर रहा कि मैं कौन हूं? मैं तेरा पिता हूं। वह हंसने लगा और कहने लगा--कैसा पिता, कौन पिता, मुझे कुछ भी याद नहीं पड़ता। फिर उसने आंखें बंद कर लीं और बेहोश हो गया। अधिक लोग इस मृत्यु की भांति जीवन जीते हैं और जीवन का अंतिम क्षण उनका अंधकार से भरा होता है और द्वार पर ताले पड़े होते हैं और अंदर अंधकार होता है। मौत अधिकतर लोगों को इस हालत में ही पाती है।
दूसरा राजकुमार भी बहुत चिंतित हुआ। बहुत सोचा और अंत में एक ही बात उसके खयाल में आ सकी कि हजार रुपये में ही महल को भरना है तो सिवाय कूड़े और कचरे के और कैसे महल भरा जा सकता था, तो उसने गांव से कचरा, जो गांव के बाहर फेंका जाता था, कचरे के मालिकों से प्रार्थना की कि सब कचरा महल में डाल दें। शाम होते-होते महल कचरे, कूड़े बदबू और गंदगी से भर गया। क्योंकि सामर्थ्य थी कम, शक्ति थी कम, रुपये की सीमा थी, इसलिए उतने रुपये में सिर्फ कचरा ही भरा जा सकता था। शाम तक महल कचरे की बदबू और गंदगी से भर गया। क्योंकि कचरा ही फेंका गया था। अतः शाम तक वह महल इतने दुर्गंध से भर गया कि रास्ते से गुजरना मुश्किल हो गया था। जो कचरे से भरा गया हो, उसमें दुर्गंध ही तो उठेगी। कचरे से कभी सुगंध नहीं उठ सकती। सम्राट महल के द्वार से गुजरा तो नाक दुर्गंध से भर गई और उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ी द्वार

को खोलने की। बेटा ने कहा कि हमने उतने रुपये में पूरा महल भर दिया है। कचरे से कोना-कोना भरा हुआ है, इसलिए मेरी विजय निश्चित ही है। इतना कचरा! दुर्गंध, बदबू। राजकुमार ने कहा, महल भरने का था। सवाल यह कहां था किससे? महल भर दिया। जीवन को अधिक लोग उस कचरे से, कूड़े से भरे हुए जीते हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि जीवन भरने का सवाल था तो भर दिया जीवन। फिर उनका जीवन एक दिन यात्रा बनता है जिसको वे स्वयं जीते हैं और उनके आस-पास जो हैं वे भी वैसे ही जीते हैं। हम एक दूसरे को दुख इसीलिए दे पाते हैं क्योंकि जीवन में इतना कचरा है कि सिवाय कचरा और कूड़े और दुर्गंध के और कुछ होता ही नहीं। जिसका हाथ पकड़ते हैं, और जिसका साथ पकड़ते हैं, उसका जीवन दुख भरने का संबंध बनता है। पति-पत्नी का जीवन दुख से भर देता है। पत्नी पति का, और पिता बेटा का जीवन दुख से भर देता है और बेटा पिता का जीवन दुख से भर देते हैं। इसी तरह एक मित्र पड़ोसी, राष्ट, एक जाति दूसरे जाति का जीवन दुख से भर देते हैं और हम सब एक ही काम में संलग्न होते हैं। कि एक दूसरे का जीवन को दुख से भर देते हैं। यह जो हमारे भीतर पड़ा हुआ है, वह है कचरा और गंदगी। तो कैसे संभव है कि इस गंदगी से प्रेम की भावना पैदा हो सकती है कि सुगंध के फूल खिल सकें और गीत संगीत पैदा हो। और जो पैदा होता है वह वही हो सकता है जो मेरे भीतर है। लेकिन कोई स्वप्न में भी इसे नहीं देखता। सोचता और एक दूसरे की तरफ देखता है और सोचता है कि दूसरे लोग दुख पैदा कर रहे हैं। और हरेक यही सोचता है कि दुख पैदा कर रहा है। कौन दुख पैदा कर रहा है-- प्रत्येक आदमी अपनी अनंत धारणा को जन्म देता है। क्योंकि जो जीवन है, वस्तुतः वह वही हो सकता है जो उसके भीतर है। कुछ दूसरे लोग इस दूसरे राजकुमार की तरह से जीवन व्यर्थ करते रहते हैं। कोई धन से भर लेता है जीवन को, और कोई यज्ञ से। और धन से भरना कचरे से भरना है, यश से भरना कचरे से भरना है। क्योंकि धन से जो भी अपने को भरेगा तो ख्याल किया जाए कि जितना ही धन इकट्ठा किया जाएगा, उसके चारों तरफ उतना ही दुख की अंध धारणाएं उसके सामने छा जाएंगी। धन के आसपास कोई दुर्गुण उसको नहीं दिखाई देंगे। इसलिए मैं कहता हूं कि धन कचरा है। अगर धन सचमुच धन होता तो उसके आस-पास से सुगंध पैदा होती। लेकिन धन के आसपास से दुर्गंध फैलती है। एक आदमी बड़ा होने लगता है तो पड़ोस के लोग ईर्ष्या करने लगते हैं। एक आदमी धन के ऊपर बैठता है और अधिकतम आदमी की जिंदगी मृत्यु के ऊपर बैठनी शुरू हो जाती है। इसलिए धन कचरा ही होगा निश्चित, क्योंकि उससे कोई सुखी नहीं हो सकता। एक आदमी यश और पद कुछ भी हो, और जब वह आदमी यश और पद की यात्रा में संलग्न होता है तो न मालूम कितने लोगों के कंधों की सीढ़ियों उसे बनानी पड़ती हैं। और न मालूम कितने लोगों की उसे गर्दनें काटनी पड़ती हैं। बिना हिंसा के पद और यश की यात्रा कभी संभव ही नहीं है। दूसरे मनुष्यों के साथ दुर्व्यवहार किए बिना कोई किसी यात्रा के पहुंच नहीं सकता है। जीसस क्राइस्ट कहते हैंः धन्य हैं वे लोग जो अंतिम घंटों तक में समर्थ होते हैं। बड़ी अजीब बात हुई। धन्य हैं वे लोग जो अंतिम खड़े हुए। लेकिन यश का और पद का यात्री कहता कि प्रथम खड़े हुए बिना मुझे चैन नहीं। जो अंतिम खड़ा होता है, वह जीवन को ईर्ष्या, द्वेष और घृणा से नहीं डरता है। यहां तक कि उसमें खड़े होने में जो प्रतिस्पर्धा है, उससे मुक्त हो जाता है। लेकिन जो प्रथम होने की स्वांग से भरता है उसकी सारी आकांक्षाएं हिंसा में ले जाती हैं। और महत्वाकांक्षा में कोई अतिरिक्त अहिंसा नहीं है, कोई एंबीशन नहीं, एकमात्र हिंसा है। और जितना महत्वाकांक्षी व्यक्ति होगा उतना ज्यादा जीवन दुर्गंध से भरा हुआ होगा। इसलिए मैं कहता हूं कि पद और यश की यात्रा कचरे और कूड़े से भरने की जीवन की यात्रा है। और अधिक लोग इस जीवन को कचरे से भरते हैं, इसीलिए जो जगत इतना दुखी है, इसीलिए तो जीवन इतना पीड़ित है, इसीलिए तो एक-एक आदमी उदास और निराश है। लेकिन हमें यह याद भी नहीं है कि हमने कब से यह यात्राएं शुरू कर दी हैं।
पहले दिन एक छोटा सा बच्चा स्कूल में भर्ती होता है तो मां-बाप, शिक्षक, पड़ोसी सब उसके पीछे पड़ जाते हैं कि पहला आना जरूरी है। और शायद हमें पता नहीं है कि हम उसे जहर देते हैं और उसके जीवन को सारे कीचड़ से भरने की दौड़ करते हैं। जब वह प्रसंग खड़ा हो जाएगा उसके साथ, तो यह मत सोचो

कि मुझे जो खुशी है कि वह इस बात की खुशी है कि वह पहला आ गया है, वह भ्रम है कि उसने उनतीस लड़कों को पीछे छोड़ दिया है। अगर एक क्लास में एक ही लड़का प्रथम आ जाए तो किस मां, बाप को खुशी नहीं होगी, और तीन हजार में हो जाए तो खुशी और बढ़ जाएगी। और फिर तीन करोड़ हो जाए तो फिर कहना ही क्या है और तीस करोड़ हो जाए तो राष्टपति हो जाएगा। राष्टपति होने की यह खुशी नहीं है कि आप राष्ट्रपति हो गए। राष्टपति होने की खुशी यह है कि चालीस करोड़ लोगों को पीछे छोड़ा जा रहा है, जो चिंता की ऊंची दौड़ है। इसलिए जितने हिंसक आदमी हैं उतनी पद्धति गहरी से गहरी यात्रा को संलग्न होता है और परिणामतः उसके, चूंकि सारे जीवन में दुर्गंध होती है, इसलिए मैं कहता हूं कि वह कचरा है। जीवन उससे आनंदित नहीं होता।
सम्राट तीसरे राजकुमार के भी द्वार पर पहुंचा। बहुत निराश और बहुत थका हुआ कि क्या तीनों पुत्र अयोग्य सिद्ध हो जाएंगे। वह बहुत डरा हुआ था। लेकिन उसे क्या पता था कि उसे यह सब घटना देखने को मिलेगी। पहुंचा और देखा घर सूना और शांत था। वहां कुछ भी भरा गया नहीं था। अंधेरी रात थी, दीये जरूर उस घर में जल रहे थे। हजार-हजार दीये जल रहे थे। सम्राट घर में गया। उसने कहा दीये किसने जलाने को कहा था। भवन को भरना था। राजकुमार ने कहा कि आंख हो तो देख सकते हैं कि भवन का कोना-कोना भर दिया गया है। एक तिल भी जगह नहीं जहां भवन खाली हो। सम्राट ने कहा कि मुझे तो कुछ दिखाई नहीं देता, भवन खाली है। उस राजकुमार ने कहा कि संभालो अपने साम्राज्य को, मुझे नहीं लेना है। लेकिन इतना कहे देता हूं कि देखते नहीं कि प्रकाश से भरा हुआ है। और प्रकाश बाहर दूर-दूर तक महल के बाहर पहुंच रहा है। एक इंच भी जगह खाली नहीं जहां प्रकाश से सारा घर भर न दिया गया हो। सम्राट को पहे तो दिखाई नहीं पड़ा कि घर प्रकाश से भरा हुआ है। क्योंकि सम्राट का सारा जीवन कचरे और कूड़े की भांति भरा हुआ बीता था। क्योंकि उसे पता ही नहीं था कि प्रकाश से भी घर को भरा जा सकता है। इसलिए इस राजकुमार की तरफ कितने मनुष्य जीते हैं, जिनका जीवन प्रकाश से भरा हुआ है। और केवल वे ही लोग सारे जीवन को प्रकाश से भर देते हैं, केवल वे ही लोग जीवित कहे जाने के अधिकारी भी हैं, जो अपने जीवन को प्रकाश से भर पाते हैं। क्योंकि उस जीवन के प्रकाश में ही जीवन के नृत्य और जीवन के संगीत का पूरा अनुभव होता है। उस प्रकाश में ही जीवन के सारे रहस्य खुलते हैं। प्रकाश में जीवन कभी न कभी रूपांतरित हो जाता है। तब जीवन ही परमात्मा बन जाता है और किसी एक व्यक्ति का जीवन प्रकाश से भरता जाता है, तो दूसरों के अंधेरे रास्ते पर वे शूल बन जाते हैं। और जब एक एक घर में दिया जलता है तो सैकड़ों मील दूर तक प्रकाश पहुंच जाता है। और न मालूम कितने लोगों को प्रकाश की यात्रा की प्रेरणा की याद संकल्पकारी बना देती है। प्रकाश से भरे हुए जीवन को मैं जीवन कहता हूं। ऐसे जीवन पाने के क्या सूत्र हैं? इन्हीं सूत्रों पर मैं कुछ आपसे बात करूंगा। क्या मार्ग हैं, क्या द्वार हैं, कैसे यह जीवन इतना आनंदित और अमृत इतना प्रकाश का अधिकारी और हकदार हो जाता है और एक एक व्यक्ति का हो सकता है। अगर दुनिया में एक भी आदमी का जीवन प्रकाश से भरा हुआ हो तो यह निश्चय हो गया कि हर दूसरे आदमी का जीवन प्रकाश से भर सकता है। जब एक मनुष्य के भीतर भर सकता है, तब हर प्रत्येक दूसरे मनुष्य से भर सकता है। क्योंकि मनुष्य और मनुष्य के बीच में मंदता और जड़ता है। एक एक बीज उसमें से अंकुरित होता है और वह फूल खिल जाता है, तो सब बीज हकदार हो गए कि हम क्यों अनखिले हैं, हम भी क्यों न अन्य फूलों से बढ़ जाएं। लेकिन कितने ऐसे लोग हैं जो इस तरह से उनके फूल खिल जाते हैं। शायद हमें इस जीवन के सूत्रों का ख्याल नहीं। यदि हम जिन्हें जीवन के सूत्र समझते हैं, वे हैं जीवन से उलटे रास्ते में ले जाने का। तीन छोटे सूत्र आपको स्मरण दिलाना चाहता हूं।
पहला सूत्र जीवन में सबसे आधारभूत क्या है? कौन सा सूत्र है जीवन में सबसे आधारभूत, इस बात की संभावना और इस बात की आशा और इस बात की निष्ठा की स्वीकृति है कि मैं भी प्रकाश से भर जाऊं। जिसको यह भी संभावना का ख्याल नहीं वह कैसे आने जीवन को प्रकाशित करेगा। मैं भी आनंद को उपलब्ध हो सकता हूं, इस बात का स्पष्ट बोध न हो, तो आनंद की खोज कैसे हो सकती है और हम सब लोग बचपन से ही निराश होने की रूढ़ियां विक्षिप्त किए जाते हैं। जो भी

मिलेगा वही कहता है जीवन निरर्थक है, निराशा है, जीवन व्यर्थ है। मैं अभी एक महानगरी में था। और एक छोटी सी लड़की ने पूछा जिसकी उम्र मुश्किल से नौ वर्ष की थी। उसने मुझसे आकर पूछा कि जीवन से मुक्त होने का उपाय क्या है? मैं तो बहुत हैरान हो गया। नौ वर्ष की लड़की पूछे कि जीवन से मुक्त होने के उपाय क्या हैं, नब्बे वर्ष का बूढ़ा पूछे तो समझ में भी आ सकता है, कैसे वह भी बहुत जो शोभा योग्य नहीं, क्योंकि नब्बे वर्ष का बूढ़ा भी पूछे जीवन से मुक्त होने का मार्ग क्या है? कि जीवन में बार-बार न आना पडे? तो वह इस बात का सबूत है कि उस आदमी ने नब्बे वर्ष गंवा दिए हैं और जीवन का अनुभव करने में असमर्थ रहा है। लेकिन नौ वर्ष का बच्चा पूछने लगे कि जीवन से मुक्त होने का उपाय क्या है। हमने उसके सारे व्यक्तित्व को, सारे जीवन को अंधकार से भर दिया। हमने उससे कहा कि जीवन की संभावनाओं की जड़ें कहां हैं?
जीवन की संभावनाओं की जड़ें कहां हैं? जीवन वहीं बनते हैं जिसकी आशा और जिसकी संभावना के संकल्प को लेकर हम यात्रा शुरू करते हैं।
जापान में कोई तीन सौ वर्ष पहले एक अदभुत घटना घटी। एक छोटे से राज्य
पर एक बड़े राज्य ने हमला किया। राज्य इतना छोटा था और सैनिक इतने कम थे कि जो ना के बराबर थे। जीत की कोई उम्मीद न थी। लड़ना हारना ही था। सम्राट के सामने सेनापति ने जाकर कहा कि अब मैं क्या करूं? असमर्थ हूं--सैनिकों को युद्ध पर नहीं ले जा सकता। यह तो व्यर्थ ही उनको मृत्यु की गर्त में झोंकना है। दुश्मन दस गुना बड़ा है। हम कैसे मुकाबला कर सकते हैं। जीत असंभव है। सम्राट यह जानता था और डरा हुआ था कि सेनापति कहीं यही न कह दे। लेकिन सम्राट ही क्या कि बिना लड़े हार जाए, बहुत से लोग हैं, जो बिना लड़े ही हार जाते हैं। निराशा ही हरा देती है। हार की संभावना ही हार बन जाती है। सम्राट अभी डरा था और सोचता था कि क्या करूं? और सेनापति जब अहंकार करता है तो सम्राट ने वजीर से कहा कि मैं एक संन्यासी के पास चलता हूं और जब तक कोई समस्या मैंने उसे वैसा नहीं दिया जिसका समाधान उसने न किया हो। आप कृपा करें, उस संन्यासी तक मेरे साथ चलें और फिर कोई निर्णय लें। अंत में उस संन्यासी के पास गए। बूढ़ा वजीर था। उसने सारी बातें बताईं। उस संन्यासी ने सुना तो हंसने लगा और कहा कि यह सेनापति तो हार ही चुका, इसकी छुट्टी कर दें। इसकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं थी। मैं इसकी जगह चला जाता हूं। सम्राट ने कहा कि आप? शायद आपको तलवार पकड़ना भी नहीं आता हो। आप युद्ध पर जाएंगे सेनापति की जगह। उस संन्यासी ने कहा कि युद्ध मैं जीतने के लिए नहीं जाता हूं लेकिन तलवार की कर्णधार मैं हूं। युद्ध वे ही जीतते हैं जो जीतने के खयाल से उद्यत होते हैं। तलवार पकड़ना आ सकता है। मैं जाता हूं। आप चिंता छोड़ दें। फिर आपने हारने का तो तय ही कर लिया है। एक मौका दें। संन्यासी ने हाथ में तलवार और टुकड़ी ली और चल पड़ा। सैनिक घबड़ाए कि यह और भी पागलपन हो गया। सेनापति होता तो थोड़ी बहुत आशा भी थी, बहुत कम थी आशा, सौ में दस थी। लेकिन फिर भी सेनापति होता तो आशा थी। लेकिन उसकी जगह यह संन्यासी खुशी से घोड़ा हांके जा रहा है, इससे क्या होगा? यह क, ख, ग, भी नहीं जानता युद्ध का। लेकिन उन्हें यह पता नहीं था कि संन्यासी क्या जानता है? युद्ध न कभी युद्ध विद्या जानने से जीत गए और न कभी जीते जा सकते हैं। इसका मतलब कि संन्यासी और कुछ जानता था। फिर वह नगर के बाहर पहुंच गए। जहां नदी थी और उसके पार दुश्मन का खेमा खड़ा था। सैनिक थरथराने लगे। विशाल सेना थी। दूर-दूर तक जहां तक आंखें जाती थीं, उतनी थी दुश्मन की सेना। छोटी सी टुकड़ी यह क्या कर सकेगी? संन्यासी जाकर रुका एक मंदिर के पास और उसने कहा, इससे पहले कि इस युद्ध में कूदें, जरा इस मंदिर के देवता से पूछ लें कि हम हारेंगे कि जीतेंगे। मेरा इस देवता से पुराना नाता है, इसलिए हम हमेशा पूछ लिया करते हैं। सेना ने कहा कि देवता ने क्या उत्तर दिया आप तो जानेंगे, लेकिन हम लोग कैसे जानेंगे? कि देवता ने क्या कहा, तुम घबड़ाओ मत! तुम्हारे सामने ही पूछूंगा। उसने खूंटे से एक चमकता हुआ सोने का रुपया निकाला और कहा कि हे परमात्मा अगर हम जीतते हैं तो यह रुपया पृथ्वी पर सीधा गिरे और यदि यह सीधा गिरा तो याद रखें कि दुनिया की कोई ताकत नहीं, जो हमें हरा सकें। उसने

रुपया फेंका, सूरज की रोशनी में चमकता हुआ रुपया आकाश की ओर उठा। उन सैनिकों की आंखें एकटक वहीं लगी रह गईं, जैसे आंख बंद ही न हों, क्योंकि जीवन-मरण का सवाल था। वह रुपया गिरने लगा और वह रुपया पृथ्वी पर सीधा गिरा। उस संन्यासी ने रुपया उठाया और उन्हें दिखाया कि यह रुपया सीधा गिरा है। अब तुम हारना चाहो तब भी नहीं हार सकते। अब जीत अनिवार्य है और वे युद्ध में कूद पड़े। और दस दिन बाद वे युद्ध जीत कर लौटते हैं। फिर लौटने लगे तो सैनिक कहने लगे कि उस मंदिर के देवता को धन्यवाद तो दे दें। उन संन्यासी ने कहा कि छोड़ो उस देता को, यदि धन्यवाद देना है तो मुझे दो, देवता का इससे क्या संबंध है। सेना ने कहा कि क्या पागलपन की बातें करते हो? उसी देवता ने कहा था कि हम जीत कर लौटेंगे। उस संन्यासी ने कहा कि अब मैं तुझे कहे देता हूं उसने खीसे से रुपया निकाला और कहा कि देख लो यह रुपया दोनों तरफ से सीधा है। यह कैसा भी गिरता सीधा ही गिरता। वह दोनों तरफ से सीधा था। लेकिन आदमी ख्याल से गिरे, वह ख्याल ही आदमी की सबसे बड़ी कमजोरी है। और वह ख्याल लड़ने से मरने की लंबी यात्रा में अगर कोई हारने का ख्याल लेकर चलेगा तो जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता। कोई संभावना नहीं है। मनुष्य की हार और जीत उसके प्राणों का प्रबलतम हार है।
एक और घटना मैं तुमसे कह दूं। रूस में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कुछ प्रयोग कर रहा था। वह एक यूनिवर्सिटी में गया। तुम्हारे जैसे पड़ते थे विद्यार्थी। वह एम. ए.के विद्यार्थियों की कक्षा में गया और कहा कि मैं एक प्रयोग कर रहा हूं। तीस विद्यार्थी थे। उनको दो टुकड़ों में तोड़ दिया। पंद्रह एक कमरे में और पंद्रह दूसरे कमरे में बिठा दिया और पंद्रह पहले कमरे के विद्यार्थियों के कमरे में जाकर बोर्ड पर एक सवाल लिखा और कहा कि यह सवाल इतना कठिन है कि शायद ही कोई तुममें से इसे हल कर सके, सपने में भी नहीं हल कर सकता। हल करना तो बहुत दूर एकाध-दो कदम इसकी ठीक विधि में कलम उठा सके, यह भी असंभव है। मेरी जानकारी में पृथ्वी पर दस-बारह गणितज्ञ हैं, जो इस सवाल को हल कर सकते हैं। क्या हुआ कि यह बात सुनकर विद्यार्थियों के मनोबल ढीले हो गए, उनके ज्ञान शिथिल हो गए। जब दस-बार गणितज्ञ इस पृथ्वी पर हैं, तो संभावना बहुत छोटी है। सबकी कलमें बंद हो गईं। उनमें से एक विद्यार्थी ने कहा कि फिर हमें यह हल करने को क्यों दिया जा रहा है। वैज्ञानिक ने कहा कि मैं जानूं कि क्या एम. ए. के विद्यार्थियों में भी इतनी प्रतिभा, बुद्धिमत्ता हो सकती है कि वे ठीक विधि में एकाध दो कदम ठीक हल कर सकें। पूरे की तो संभावना ही नहीं लेकिन तुम संभावना ही छोड़ दो। लेकिन अगर तुमने ठीक दिशा में काम किया तो बड़ा गुण होगा और बड़ी योग्यता होगी। मैं जांच करना चाहता हूं। तुम कोशिश करो, शायद कोई, बहुत कमजोर तो नहीं लेकिन शायद कोई थोड़ा बहुत कर पाए। वह बार-बार दोहराने लगा कि उम्मीद नहीं है कि कोई हल कर पाए। उम्मीद नहीं यह सुझाव लड़कों के कान में बैठ गए। उन्होंने कलमें उठाईं लेकिन जानते हैं कि व्यर्थ है। उन्होंने चेष्टाएं कीं सवाल हल करने की दिशा में, लेकिन जानते हैं कि व्यर्थ है। सफल नहीं हो सकता। वह सवाल हल करने लगे और वह वैज्ञानिक दूसरी कक्षा में गया। उसने वही सवाल बोर्ड पर लिखा और उसने कहा कि यह सवाल इतना सरल है कि तुमसे नीचे की कक्षा के विद्यार्थी भी हल कर सकें। मैं यह भी कल्पना नहीं कर सकता कि तुममें से एक भी विद्यार्थी इसको हल करने में असमर्थ हो जाए। असंभव है। लेकिन तुम एम. ए. तक ऊंचे कक्षा तक आ भी गए हो। यह तो गणित के अ ब स जानने वाले भी हल कर सकते हैं। उसमें से एक विद्यार्थी ने कहा कि फिर हमें क्यों हल करने को दिया जा रहा है? उसने कहा कि मैं एक प्रयोग कर रहा हूं कि ऐसा भी संभव है, हालांकि यह संभव नहीं कि एम.ए. की कक्षा में थोड़ा भी भूल करें, इस सवाल में। इस सवाल में क्या है? मैं एक रिसर्च करता हूं, एक शोध करता हूं, शायद तुममें से कोई असमर्थ हो जाए, कोशिश करो, तुम थोड़ी कोशिश करके देखो आशा नहीं है कि कोई असफल हो जाए। लेकिन मैं इस खोज में हूं कि इतनी ऊंची कक्षा में भी इतना सरल सवाल हल नहीं हो सकता। सवाल वही था। विद्यार्थी उसी वर्ग और योग्यता के थे। लेकिन उनके आंख और कान बिल्कुल जकड़ गए। लेकिन एक को यह कहा गया कि यह सवाल इतना सरल है कि नीचे के कक्षा के विद्यार्थी भी हल कर सकते हैं और उनकी आत्मा पूरी आशा से भरी प्राण पूर्वक विश्वास था।

क्या हुआ फल? पहले वर्ग के केवल दो विद्यार्थी हल कर पाए सवाल और तरह असफल हो गए। और दूसरी कक्षा में केवल एक विद्यार्थी नहीं कर पाया और पंद्रह विद्यार्थियों ने हल कर दिया। वैज्ञानिक ने हजारों प्रश्न इस तरह के किए और इस नतीजे पर पहुंचा कि आदमी जिस भावना को लेकर काम शुरू करता है सौ में से निन्यानबे वे मौके ऐसे बनते हैं कि वह उसके भाव को, उसकी पूर्णाहुति पर पहुंचा देते हैं। यह जीवन का पहला सूत्र मैं तुमसे कहता हूं कि जीवन को प्रारंभ करना अत्यंत आशा से भरे हुए हो। निराशा पास भी खड़ी न होने पाए। निराशा मौत है। निराशा तुम्हारे प्राणों के मध्य में होती है उसे जगह भी मत देना। उससे बड़ा शत्रु जीवन में और कोई भी नहीं हो सकता है। अगर जीवन में कोई भी संभावना जाग्रत बनानी है तो निराशा उसका आधार नहीं है। और आज पृथ्वी पूरी ही निराशा से भरी है। इसलिए जीवन पर इतना आघात हुआ और इतने कम लोग जीवित हैं। और पृथ्वी रोज-रोज निराशा से भरती चली जाती है। हर पीढ़ी निराशा से भरती चली जा रही है। निराश प्राण निष्प्रम हो जाते हैं, इंपोटेंट हो जाते हैं। निराश व्यक्ति सब कुछ खो देता है, आत्महारा होता है और हम सब आत्महारा होते जा रहे हैं। लड़ने से पहले हमने हार सुनिश्चित मान लिया है। खोजने से पहले हमारे पैर रुकते हैं जन्म के साथ हम सिर्फ मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जीवन में कुछ संपन्न करने की नहीं, जीवन में कुछ निर्मित करने की नहीं, जीवन में कुछ क्रिएटिव कुछ सृजन करने की नहीं, कि जीवन एक मूर्ति बन जाए, जीवन में एक सौंदर्य, जीवन में एक प्रकाश बन जाए, यह पहला सूत्र है।
दूसरा सूत्र अकेली आशा क्या हो सकती है? अकेली आशा कोई लेकर बैठ जाए, उससे क्या होगा। अकेली आशा क्या कर सकती है? अकेली आशा को लेकर कोई बैठ जाए तो वह सिर्फ सपने ही देख सकता है, सुंदर सपने देख सकता है और उसी सपने में ही खोया रहेगा। अकेली आशा क्या करेगी? अकेली आशा से क्या हो सकता है। आशा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता, लेकिन अकेली आशा से भी कुछ नहीं हो सकता। आशा के पीछे, आशा के साथ, सातत्य चाहिए श्रम की, एक सतत श्रम की, अनवरत धारा चाहिए। सारा जीवन श्रम की साधना है।
और हमारा जीवन जैसे आज है, आलस्य की एक लंबी कहानी है। जहां हम समय को गुजारते हैं। जहां हम समय को व्यर्थ जाने देते हैं, जहां हम लोगों को कहते हैं टाइम पास कर रहे हैं, समय गुजार रहे हैं। हर आदमी समय गुजारता है। समय गुजारने वाला मनुष्य कभी कहीं पहुंच सकता है? समय गुजारने वाला अपने को ही गुजार रहा है। समय को कौन गुजारता है। हम नहीं थे, तब भी समय था। हम नहीं होते तब भी समय था। समय को कोई भी नहीं गुजार सकता है। सिर्फ हम ही गुजर जाएंगे। इसलिए मत कहिए कि टाइम को पास कर रहा हूं। जानना कि समय को गुजरना जीवन को गुजारना है। एक एक पल महत्वपूर्ण है और एक एक पल से जूझना महत्वपूर्ण है और एक एक पल में जो भी रस दिया है उसे प्रकट करना जरूरी है। एक एक पल बेकार न चला जाए, उसे जी लेना है, उसमें से पूरे प्राण को निचोड़ लेना है। यह कहने को न रह जाए कि जिंदगी में आया था और समय और बह गया और मैं उसे जी नहीं पाया। लेकिन सारे जगत का जीवन दर्शन आलस्य का है। श्रम का नहीं। सारे जगत का जीवन-दर्शन जीवन को गुजार देने का है। जीवन एक उपभोग का नहीं, जीवन एक अवसर है और उसको निकाल लेना है। उसको कोई खयाल नहीं करता है। एक पत्थर पड़ा हो गौर वह पड़ा ही रहेगा तो वह पड़ा ही रहेगा करोड़ों वर्ष तक पत्थर की तरह ही, जब तक किसी कलाकार की छैनी और हथा.ैड़ी उस पर पड़ेगी नहीं। छैनी, हथौड़ी पड़ेगी और उस पत्थर के टुकड़े छिटकने लगेंगे और वह अनगढ़ पत्थर निश्चित ही एक मूर्ति में परिवर्तित हो जाएगा। लेकिन करोड़-करोड़ वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ेगी उस पत्थर को उठाने की, जो पत्थर को तोड़ने में संलग्न हो जाएगा तब पत्थर मूर्ति बनता है। जीवन भी प्रतीक्षा करता है उनकी, जो जीवन को तोड़ कर मूर्ति बनाने के लिए आबद्ध होते हैं। लेकिन हम सारे लोग एक अनगढ़ पत्थर की तरह जीवन गुजार देते हैं। पत्थर वैसे ही पड़ा रहता है और प्रतीक्षा करता है कि कोई आएगा और तोड़ेगा और मूर्ति प्रकट हो जाएगी। एक-एक जीवन अनगढ़ पत्थर है जो श्रम करता है और उससे एक सुंदर मूर्ति निकालने में समर्थ होता है। युवक मुझसे पूछते हैं स्कूलों में, कालेजों में, जीवन क्या है? जीवन में अर्थ क्या है? जीवन में अर्थ बिल्कुल नहीं है। जीवन में उतना

ही अर्थ होता है जितना तुम पैदा करते हो। तो तुम यह मत पूछो कि जीवन का क्या अर्थ है? यह पूछो कि जीवन में अर्थ दृढ़तापूर्वक कैसे उपलब्ध हो सकता है? जीवन में अर्थ मिला हुआ, बना हुआ, रेडीमेड नहीं है। जीवन में अर्थ नहीं दिखाई पड़ता है। हर आदमी पूछता है कि जीवन में अर्थ क्या है? और जीवन में अर्थ नहीं दिखाई पड़ता है तब दार्शनिक कहते हैं कि जीवन अर्थ ही न है। निरर्थक है... । जैसे पश्चिम के लोग कहते हैं कि जीवन में कोई अर्थ नहीं है। अर्थहीन है, ये जैसी बैठी हुई हैं वीणा लिए हुए, और हम पूछें कि वीणा में अर्थ क्या है? वीणा में क्या अर्थ है? तार है? तंबूरा है? अर्थ क्या है। अर्थ उसको प्रकट होता है जो वर्षों तक वीणा के साथ श्रम करेगा। और तब वीणा, तार और तंबूरा नहीं रह जाएगी। वीणा एक अलौकिक संगीत के अवतरण का अवसर बन जाएगी।
मैंने सुना है कि एक घर में बहुत दिनों से एक वीणा रखी थी। न मालूम ब.ूढों के समय से रखी थी। घर के बच्चों को पता भी न था कि कौन उसे बजाता है। वह वीणा एक कोने में रखी थी। उस वीणा को कभी कोई बिल्ली या चूहा हिला देता है और उसके तार झनझना जाते हैं। रात आधी हो और तार झनझना जाते हैं तो घर के लोग कहते हैं कि इस वीणा को फेंको। रात नींद खराब कर दे रही है। कभी कोई बच्चा उसके तारों को छू देता है और तब घर के लोग कहते हैं कि वीणा एक डिस्टर्बेंस हो गई। क्या अर्थ है इस वीणा को घर में रखने का। घर में कूड़ा कर्कट इकट्ठा करने का। कभी गिर जाती है तो आवाज इधर कभी जाती है, कभी उधर जाती है। अलग करे इस वीणा को। फिर आखिर में उस घर में लोगों ने कहा कि अलग ही कर दो। और एकदम फेंक आए उसे कूड़े पर उसको। वीणा अर्थहीन थी उनके लिए। जीवन के साथ भी हम कुछ ऐसे ही करते हैं। लेकिन उसी सांझ को एक भिखारी गुजरता था उस मार्ग से और उस वीणा को उठा कर बजाने लगा। और उस वक्त मंत्र-मुग्ध होकर उस भिखारी के पास घर के सब लोग खड़े हो गए और भीड़ कर दिए। सारा गांव वहां धीरे-धीरे जुट गया। और अंत में उस घर के लोगों ने कहा कि यह वीणा हमारी है, यह हमने ही फेंकी थी, हमें वापस दे दो। उस भिखारी ने कहा कि तुम कचरे में फेंक आए थे, अब वीणा तुम्हारी नहीं, वीणा हमारी है। जो वीणा को बजाना जानता है, वीणा की और कोई मालकियत नहीं होती है, बजाने की कुशलता और कला ही, वीणा की मालकियत है। जीवन भी उसी का है, जो जीवन को बजाना जानता है। जीवन मिल गया उससे कुछ भी नहीं मिल गया। उसे कैसे जीना, उस जीवन को, इस वीणा के उदाहरण से प्रकट हो सकता है। कैसे प्रतीक्षा करने से, राह देखने से, या कुछ श्रम करने से, श्रम पर तो खयाल ही नहीं रह गया। श्रम का कंसेप्ट श्रम की धारणा ही इस दुनिया से मिट गई। हम एक ही खोज में लगे हैं कि श्रम से कैसे बच जाएं सारा विज्ञान एक खोज में लगा है कि आदमी का प्राण कैसे बच जाए। और आदमी खोज कर रहा है कि बिना श्रम के हम कैसे जीएं। निश्चित ही मैं कहता हूं कि पांच सौ वर्ष तक ऐसी ही स्थिति चलती रही तो सारी दुनिया एक ही नतीजे पर पहुंच जाएगी कि आत्म हत्या कर लेनी चाहिए, जीवन की गुंजाइश नहीं है। जीवन एक कचरा है। वीणा जैसे कूड़े और कचरे घर में फेंक देना चाहिए और आज मनुष्य करीब-करीब इस निष्कर्ष पर पहुंचने लगा है। पिछले पचास वर्षों में पश्चिम के बड़े-बड़े विचारकों के आत्म हत्याएं की हैं और उनसे पूछा गया कि आप क्यों मरने को इतने उत्सुक हैं? जिसने आत्म हत्याएं कीं, तो उसने एक पत्र लिखा मरने से पहले अपने एक मित्र के नाम कि तुम यह मत सोचना कि मैं दुखी था इसलिए मर रहा हूं, तुम यह मत सोचना कि मैं किसी कठिनाई में था, इसलिए मर रहा हूं। मैं मर इसलिए रहा हूं कि जीवन व्यर्थ था और तुम यह भी मत सोचना कि मैं कायर था इसलिए मर रहा हूं। मैं तुम से इसलिए कह जाता हूं कि तुम कायर हो इसीलिए जी रहे हो, नहीं तो कभी के मर जाते। युग यह कहता है कि जो जी रहे हैं, वे कायर हैं कावर्ड हैं। मरने की हिम्मत नहीं इसलिए जीते हैं। और उसकी बात थोड़ी दूर तक सच भी है। अगर जीवन व्यर्थ हो तो जीने की जरूरत क्या है? सिवाय कायरता कि और कौन जिलाएगा। या तो जीवन को सार्थक बनाओ, अन्यथा जीने के हक को खो देते हैं हम। किस मुंह से हम कह सकते हैं कि जीने के हम हकदार हैं। क्या हक है कि मैं जीऊंगा और पृथ्वी पर वजन बनूंगा। अगर मुझे कोई हक नहीं है कि विदा हो जाने का, अगर विदा नहीं हो जाना है, तो उस अर्थ को पैदा करने के लिए हमें संलग्न हो जाना--इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है। या तो

आत्महत्या इन दो के सिवाय कोई उपाय नहीं है। और जो युग जीवन को निर्मित करने की साधना श्रम छोड़ देता है, वह धीरे-धीरे सभी आत्म हत्याकारी होती चली जाती है। अभी मैं एक घंटे बोलूंगा और एक घंटे में साठ लोग आत्महत्या कर लेंगे। यानि प्रति बूढ़ों एक आदमी आत्महत्या करता है। और यह संख्या रोज-रोज बढ़ती ही जा रही है। हजारों लोग रोज आत्महत्याएं करते हैं, क्या हो गया है उनको? एक घटना अजीब घट गई और जीवन अर्थहीन है। जीवन अर्थहीन होगा तो उसमें जीवन पैदा होता है श्रम से। और अर्थ मनुष्य का क्रिएशन है, उसका निर्माण है, अर्थ कहीं है नहीं। इसलिए तुम्हारे जीवन में उतना ही अर्थ होगा, जितना तुम अर्थ पैदा करने की तत्परता रखते हो। बुद्ध के जीवन में उतना ही अर्थ है, जितना उन्होंने श्रम किया, महावीर के जीवन में उतना ही अर्थ है जितना उन्होंने श्रम किया। तुम्हारे और मेरे जीवन में उतना ही अर्थ होगा, जितना तुम और हम रम करेंगे। इसलिए तुम यह मत पूछना कि जीवन में अर्थ क्या है? यह पूछना कि जीवन में श्रम कितना किया है? श्रम का पुरस्कार है अर्थ।
इसलिए मैं दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं कि जीवन एक सतत श्रम पाने
की आवश्यकता है। एक क्षण भी खोना उचित नहीं। क्योंकि दूसरे क्षण को कोई भरोसा नहीं है।
मैं अभी एक गांव से गुजर रहा था। वर्षा हुई थी। एक नदी पर पानी भर गया था। और मुझे उसके कारण कुछ क्षण के लिए अपनी गाड़ी रोक देनी पड़ी। मेरे पीछे एक और कार आ रही थी। उसमें दो-चार लोग बैठे थे। मैं तो उन्हें नहीं जानता था, वे मुझे जानते होंगे। मैं बैठा था एक चट्टान पर गाड़ी से उतर कर। तो वे भी गाड़ी से उतरे और बैठ गए और बातचीत होने लगी। जब पानी उतरने लगा, तब वे चलने और चलते वक्त क्योंकि उनके पास बड़ी गाड़ी थी, और मेरी छोटी थी तो मैं दस मिनट बाद निकला, जब और पानी उतर गया उन्होंने कहा कि आपने जो बातें कहीं, वे बहुत ठीक कहीं। हम उस दिशा में कभी ठीक काम करेंगे। तब मैंने कहा कि कभी, तब यह कहो कि वह ठीक नहीं था, क्योंकि कभी कब आए? और बीच में कह क्या करें? वे कहने लगे लौट कर हम आपसे मिलेंगे। हमने कहा कि लौटकर, लौटकर मिलने का क्या भरोसा! हो सकता है कि हम दोनों की समाप्त हो जाएं, और मिलने की कोई संभावना न हो। चलते-चलते उनको मैंने एक कहानी कही।
मुझे पता भी न था कि कहानी एक सच्ची घटना बन जाएगी और प्रमाण बन जाएगा। मैंने उनसे कहा कि आप जाते हैं तो मैं एक छोटी-सी कहानी आपसे कह दूं। चीन में एक सम्राट ने अपने वजीर को पांच वर्ष की सजा दे दी। कुछ नाराजगी थी, कुछ भूल हो गई थी। लेकिन उस सम्राट को यह नियम था कि फांसी के एक दिन पहले सम्राट उसके पास जाता था और कहता था कि यदि तेरी कोई इच्छा या मर्जी हो तो वह पूरी कर लो। फिर यह तो सम्राट का अपना वजीर था और बड़ा प्यारा वजीर था। तो सम्राट एक दिन पहले गया और उनसे अपना घोड़ा कारागार के बाहर बांधा। खिड़कियों के बाहर घोड़ा दिखाई पड़ता था। सम्राट आया वजीर के पास। वजीर बड़ा हिम्मतवर आदमी था, लेकिन सम्राट को देखते ही उसके आंखों में झर-झर आंसू गिरने लगे।
सम्राट ने कहा तुम रोते हो। यह विश्वास के बाहर है। तुम्हारी आंखों में आंसू? तुम कभी मैदान में युद्ध के पीछे नहीं हटे, तुम कभी शेरों से जूझने से पीछे नहीं हटे, तुम मौत को देखकर डरते हो? उस वजीर ने कहा, मौत को देखकर मैं नहीं डर रहा हूं। मौत को देखकर कौन डरता है। तो किस बात की संभावना है, कहो। और पूरा कर लो। उसने कहा कि अब वह पूरा नहीं होगा। सम्राट ने कहा, फिर भी। मैं इसीलिए आया हूं। तो उसने कहा कि पच्चीस साल मेहनत करके एक सीक्रेट आर्ट सीखा, एक गुप्त कला सीखी--मैं घोड़े को आकाश में बढ़ना सिखा सकता हूं। लेकिन जिस जाति के घोड़े को उड़ना सिखाता, वह खोजता था, नहीं मिला और आज आप जिस जाति के घोड़े पर बैठ कर आए हैं। वह उसी जाति का घोड़ा है। सम्राट ने कहाः खैर, छोड़ो उस बात को। लेकिन कल सुबह मर जाना है।
सम्राट के मन में लोभ समाया। घोड़ा भी आकाश में उड़ सके, तो दुनिया में
उस जैसा कोई सम्राट नहीं रह जाएगा। अगर घोड़ा आकाश में उड़ सके, तो युद्ध में कोई मुकाबला न रह जाए। छोड़ फिकर फांसी की। कितने दिन में घोड़ा आकाश में उड़ सकता है। उसने कहा, ज्यादा नहीं एक वर्ष लग जाएगा। बादशाह ने कहा कि घोड़ा

एक वर्ष में आकाश में उड़ना सीख जाएगा तो भविष्य में न तू वजीर रह जाएगा, बल्कि आधे राज्य का मालिक हो जाएगा। और घोड़ा उड़ना न सीख सका तो समझ लेना कि फांसी हो जाएगी। वजीर घोड़े पर अपने घर बढ़ना लौट आया। पत्नी और बच्चे उसके रोते थे।
वजीर को लौटने देख कर उसकी पत्नी कहने लगी कि तुम लौट कैसे आए। उसने कहा कि मैंने सम्राट से कहा कि मैं घोड़े को उड़ना सिखा सकता हूं आकाश में। उसने कहा कि तुम घोड़े पर बैठना भी नहीं जानते, तुम आकाश में उसे उड़ा कैसे सकते हो? तुमने कब सीखा था? उसने कहा कि मैंने कभी नहीं सीखा था, लेकिन मुझे वर्ष भर की मोहलत मिल गई। उसकी पत्नी छाती पीट कर रोने लगी कि तुम पागल हो गए हो। यह वर्ष तुम्हारे हमारे मर जाने के बराबर है। वह दिन कब आएगा, जब तुम मर जाओगे। अगर मांगना ही था तो दस-पच्चीस वर्ष मांगते वर्ष भर क्यों मांगा। उसने कहा पागल तुझे समय का कुछ भी पता नहीं। कौन जाने वर्ष भर में घोड़ा मर जाए, मैं मर जाऊं, सम्राट मर जाए। वर्ष भर बहुत होता है। क्षण भर भी बहुत लंबा है। और घटना बड़ी अजीब है कि उस वर्ष घोड़ा भी मर गया, वजीर भी मर गया और सम्राट भी मर गया। तीनों ही मर गए। तो मैंने जाते वक्त उनसे कहा कि कल का क्या भरोसा? एक क्षण का भी भरोसा नहीं। जो करना है, वह अभी और यहीं... । लेकिन वे चल पड़े और मैं दस मिनट बाद निकला और जब मैं रास्ते में पहुंचा तो वे मुझे मरे हुए मिले। मुझे उम्मीद नहीं कि ऐसा हो जाएगा। मेरे डरइवर ने कहा कि आपने कैसे कहानी कही। मैंने कहा कि ऐसी आशा हो सकती है। जीवन का एक-एक क्षण इतना मूल्यवान है और दूसरे क्षण का कोई भरोसा नहीं, इसलिए तुम यह मत सोचना कि कल, परसों, जो पोस्टपोनमेंट की भाषा में सोचता है, वह जीवन को खो देता है। आज और यहीं जीवन एक स्पंदन है। सतत श्रम एक अर्थ की खोज, एक इंक्वायरी, एक जिज्ञासा एक यात्रा। इसलिए बैठे-बैठे तुम जिंदगी को मत खो देना। जिंदगी को बताना है कि मौत के वक्त तुम कैसे जिंदगी को बता सकते हो कि जिंदगी तुम्हारी है। और जो जिंदगी को बनाने में और सोचने में समर्थ हो जाता है, हैरान होओगे तुम कि उसके लिए मौत समाप्त हो जाती है। मरते वक्त वह जानता है कि जो अर्थ उपलब्ध हुआ है, वह नहीं मर सकता है। वह मरते वक्त जानता है कि जो जीवन जाना है वह कोई मृत्यु नहीं। और इसलिए दूसरा सूत्र है--सतत श्रम।
और तीसरा सूत्र--और अंतिम सूत्र क्या है? किस बात की आशा करेंगे, किस बात पर श्रम करेंगे? तीसरा सूत्र है कि जीवन को बाहर मत खोजो। जो जीवन को बाहर खोजते हैं, वे कुछ भी जीवन को उपलब्ध नहीं कर पाते। खोजना जीवन को भीतर स्वयं में है, और अपने में है स्वयं, वहां जहां प्राणों का प्राण है, वहां जहां मेरे अस्तित्व के पल्लव उगते हैं, फूल आते हैं, जहां से श्वास चलती है, खून आता है, जहां से विचार जन्मते हैं, जहां से चेतना उठती है, वहां खोजना भीतर जड़ों में। स्वयं के भीतर। तो वह जीवन हो सकता है।
तीसरा सूत्र हैः खोजना भीतर स्वयं में।
और आज सारी पृथ्वी बाहर-बाहर खोज रही है। हमारी आंखें बाहर खोज रही हैं, हमारे हाथ बाहर खोज रहे हैं, हमारे प्राण बाहर खोज रहे हैं, हमारी बुद्धि बाहर खोज रही है, बाहर, बाहर, बाहर। हमारा सारा जीवन बाहर का एक जोड़ है। जब कि असली जीवन भीतर का जोड़ हो जाता है। भीतर क्या खोजा है तुमने? भीतर गए हो कभी? कभी कोई परिचय बनाए हो उससे कि तुम्हारे भीतर हो। शायद कभी नहीं बनाया होगा। तुम बनाओगे क्या? बूढ़े और वृद्धा भी जब भीतर की खोज की बात से भरते हैं तब भी बाहर मंदिर जाकर बैठ कर पूजा करते हैं। बूढ़े भी जब भीतर के ख्याल को भरते हैं तो बाहर से किताबें पढ़ते रहते हैं। गीता, कुरान और बाइबिल बूढ़े भी जब भीतर की यात्रा का खयाल करते हैं, तो भी बाहर की यात्रा चालू रखते हैं। मंदिर, तीर्थ, लेकिन भीतर न कोई मंदिर है, न कोई तीर्थ है, चर्च है। लेकिन भीतर की हमने कभी सोचा ही नहीं और उसका कोई पता ही नहीं। तो तीसरी बात तुमसे कहना चाहता हूं कि भीतर की यात्रा अंतर्यात्रा कैसे करोगे तुम? बाहर की यात्रा के बहुत से उपाय हैं। बैलगाड़ी से लेकर राकेट तक। लेकिन भीतर की यात्रा के उपाय क्या हैं? किस वाहन पर सवारी करोगे? भीतर की सीढ़ियों के पास वे ही जा सकते हैं जो अपने जीवन को प्रकाश से भर पाते हैं और जिज्ञासा के साथ सतत जो श्रम करते हैं,

वे ही उन सीढ़ियों तक पहुंचने का अंततः जिज्ञासा के साथ सतत श्रम ही भीतर का वाहन है। कभी चौबीस घंटे के लिए अकेले में बैठ जाइए और पूछते चले जाना कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं? सिर्फ इतना ही पूछते चले जाना कि मैं कौन हूं और सारे विचारों को छोड़ देना। सिर्फ सीखेंगे, उत्तर नहीं दे देना कि मैं आत्मा हूं, परमात्मा हूं, उत्तर बाहर से आएगा। और जब यह उत्तर आए कि मैं आत्मा हूं, परमात्मा हूं, तब जीवन पूर्ण और शांत हो जाएगा। और ऐसी शांति जिसे तुमने कभी जाना नहीं, ऐसी शांति जिससे तुम्हारा कोई परिचय भी नहीं, ऐसी शांति जो बिल्कुल अजनबी है और वह शांति तुम्हें दबाती चली जाएगी और तुम पूछते चले जाओगे कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? और एक घड़ी आएगी कि प्रश्न बिल्कुल मिट जाएगा और प्रश्न भी तुम्हें बाधा मालूम पड़ेगा। और वह इतनी घनीभूत होगी कि उससे तुम यह भी न पूछ सकोगे कि तुम कौन हो। और तुम जहां शत्रु हो जाओगे उस पथ पर, वह जो भगवान का मंदिर है, और वहां तुझे आंतरिक मौन जीवन की झलक, जीव के अंतरंग, जीवन की अमृत... ।
तीन बात--आशा से भरे हुए श्रम के लिए दया और मैं कौन हूं, इसकी जिज्ञासा से भरे हुए जो आदमी यात्रा करता है, वह तब जीवन ही हो जाता है। उसका जीवन हमेशा प्रकाश तक पहुंच जाता है, उसका जीवन आत्मा और परमात्मा की खोज तक पहुंच जाता है। इसे मैं कहता हूं जीवन की शांति, इसे मैं कहता हूं जीवन का आनंद। परिवर्तन जीवन का आमूल परिवर्तन ट्रांसफार्मेशन ऑफ लाइफ। सारे धर्म का इतना ही सार है।

मेरी बातों को इतने ध्यानपूर्वक सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन की कला
दसवां प्रवचन

अहंकार का बोध
(Note- This discourse is incomplete, starts from middle of a story. Complete audio not available.)

... इसमें पत्थर का कोई हाथ न था। यह पत्थर का स्वभाव है। यह कांच का स्वभाव है। ये दोनों स्वभावतः टकराएं तो कांच चूर-चूर हो जाता है। इट जस्ट हेपंस। यह कोई करना नहीं है। कोई पत्थर उपाय नहीं करता कांच को चूर-चूर करने में। कांच बस चूर-चूर हो जाता है। यह कांच और पत्थर के स्वभाव के मिलने का सहज परिणाम है। इसमें पत्थर का कहीं भी कोई हाथ नहीं है। लेकिन कांच के टुकड़े क्या कहते और क्या इनकार करते हो गए थे चूर-चूर। इसलिए मान लेना पड़ा कि पत्थर ठीक ही कहता है। नीचे पड़े हुए पत्थरों की आंखों में और कांच के टुकड़ों में यह बात देखकर कि जो मैंने कहा है, वह स्वीकृत हो गया। पत्थर को स्वीकृति भी मिल गई। वह प्रमाणीभूत हो गया कि मैं हूं। फिर वह गिरा नीचे कालीन पर जहां और बहुमूल्य कालीन बिछे थे। गिरते ही उसने राहत की सांस ली और कहा मालूम होता है शायद इस भवन के लोग बड़े शिष्ट और संस्कारी हैं। मेरे आने के पहले ही ज्ञात होता है कि खबर मिल गई। कालीन इत्यादि बिछा रखे हैं। पता भी न था लेकिन उस पत्थर ने जाना कि मेरे लिए कालीन बिछाने का आयोजन किया गया है। फिर भी बहुत कम उसने जाना। वह चाहता तो यह भी जान सकता था कि महल मेरे लिए निर्मित किए गए हैं, फिर भी कम था। वह यह भी मान सकता था कि महल में रहने वालों को सिर्फ महल की सुरक्षा के लिए छोड़ा गया है, ताकि जब मैं आऊं तो वे मेरे लिए व्यवस्था कर सकें। और कौन इनकार करता? और कोई इनकार करता भी तो पत्थर कहीं मानने को कभी राजी होते हैं? महल का पहरेदार भागा। आवाज है कांच टूटा है पत्थर आया है। उसने पत्थर
को उठाया हाथ में फेंक देने के लिए। लेकिन पत्थर ने कहा, धन्यवाद। हजार-हजार धन्यवाद। मालूम होता है भवन का मालिक हाथ में लेकर सम्मान प्रकट कर रहा है। कोई गलती तो नहीं कर रहा था वह पत्थर। आदमी क्या करता है? और आदमी क्या समझता है? उस पत्थर को फेंक दिया गया। और जब फेंक दिया गया उस पत्थर को, तो उसने यह नहीं समझा कि मैं फेंका जा रहा हूं, कौन ऐसे समझने की भूल करता है? उस पत्थर ने कहा संभालो अपने महल होंगे तुम्हारे महल बड़े, लेकिन कहां वह मजा? कहां वह आजादी पत्थरों के ढेर पर रहने का। मैं अपने घर वापस लौटता हूं।
मुझे मित्रों की याद आती है होम-सिकनेस मालूम होती है। जब दिल्ली से कोई साथी लौटता है तो यही तो कहता है कि बहुत याद आती थी आप सब की। इसलिए वापस चला आया। दिल्ली से फेंक दिया गया हूं। नहीं-नहीं, होम-सिकनेस मालूम होती थी। आप सबकी बहुत याद आती थी। होगी दिल्ली अच्छी। लेकिन कहां वह मजे काशी के? कहां मित्रों के साथ होना? कहां पत्थर का ढेर? और पत्थर का ढेर का मजा? उस पत्थर ने भी यही कहा कि कोई अड़चन है आपको? उस पर हंसते हैं आप। पूछना यह है कि अपने पर कब हंसेंगे। और उस पत्थर की कहानी आपकी मेरी, आदमी की कहानी से कुछ भिन्न है? अज्ञात शक्ति फेंक देती है हमें जीवन में। और हम कहते हैं मेरा जन्म। जैसे जन्म भी हमने लिया हो। जैसे जन्म में भी हमारा कोई कर्तव्य हो। जन्म के भी हम कर्ता हों। मेरा जन्म जैसे कोई जन्म से पहले किसी ने पूछा हो कि वहां जाना चाहते हैं, जन्म लेना चाहते हैं कि नहीं? न कोई पूछता? न कोई निर्णय है? मेरा कोई संबंध कोई अज्ञात हाथ जैसे सागर में लहरें उठा जाता है, कोई अज्ञात हाथ जैसे वृक्ष के पत्तों को हिलाता है, वैसे कोई अज्ञात जीवन की धारा मुझे फेंक देती है। और जब मैं फेंक दिया जाता हूं, तब मुझे पता चलता है कि मैं हूं। लेकिन मैं कहता हूं कि मेरा जन्म। और कोई एतराज नहीं करता। क्योंकि सभी लोग एक ही कुएं का पानी पीए हुए हैं। कोई नहीं कहता कि तुम्हारा जन्म कैसे है। कहता हूं, मेरा बचपन, मेरी जवानी, मेरा बुढ़ापा। जैसे मेरे कोई चेष्टा हो इस सबमें। बच्चे वैसे ही जवान होते हैं जैसे बीच से अंकुर फूटता है। बच्चों से जवानी वैसे ही निकलती है जैसे वृक्ष में पत्ते आते हैं। फूल आते हैं। ये घटनाएं

हो रही हैं। आप कर नहीं रहे हैं। मत कहिए--मेरी जवानी। लेकिन यह तो दूर की बात है। हम तो यहां तक कहते हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। अदभुत है आदमी भी? अगर आदमी श्वास ले रहा होता तब किसी आदमी की, मौत असंभव थी। मौत आ जाती द्वार पर बाहर बैठकर प्रतीक्षा करती, आप श्वास लिए ही चले जाते। क्या करती बेचारी लौट जाती। लेकिन हम जानते हैं श्वास हम ले नहीं रहे हैं, श्वास चल रही है। लेना हमारे हाथ में नहीं। श्वास बाहर गई और नहीं लौटी तो बस नहीं लौटी। हमारे हाथ में नहीं। सच तो यह है कि श्वास बाहर गई और नहीं लौटी तो हम भी नहीं हैं। उसी के साथ हम भी गए बाहर। और कहां गए? और किसी अज्ञात में खो गए? जिसका हमें कुछ पता नहीं। लेकिन हम कहते हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। जीवन को हमने उसी भ्रम पर खड़ा किया है जिस भ्रम पर उस पत्थर ने यात्रा की थी। और उसी भ्रम से अहंकार पैदा होता है। कि मैं हूं, मैं कर रहा हूं मैं जी रहा हूं। इस सबका इकट्ठा, पूंजिभूत जब परिणाम होता है तो लगता है मैं हूं। अहंकार से मुक्ति की खोज में अहंकार के संगठन की प्रक्रिया को जान लेना जरूरी है। इसके जानते ही, इसे पहचानते ही अहंकार की छाया विलीन होने लगती है। उसके संगठित होने की बुनियाद खो जाती है। उसके संगठन का मूल-सूत्र, मूल कीमिया नष्ट हो जाती है। हम नहीं जानते हैं तो उसके संग्रह का कोई कारण नहीं।
इसलिए न तो अहंकार छोड़ना है, न पकड़ना है, न भरना है, न खाली करना है। अहंकार जानना है। अहंकार पहचानना है। अहंकार के बोध से जीवन को भरना है।
यह मैं दूसरा सूत्र आपसे कह रहा हूं। अहंकार जानने से विसर्जित होता है।
अहंकार का ज्ञान अहंकार की मृत्यु है। वह मरा हुआ ही है। उसमें कभी जीवन है ही नहीं, उस मृत्यु को हम पकड़े हुए हैं। इसलिए हम मरते हैं, जीते हैं, मालूम होते हैं। अहंकार गया तो मौत एक झूठ बन जाती है, असत्य हो जाती है।
फिर जो ज्ञात होता है वह अमृत है। फिर जो ज्ञात होता है वह जीवन है। लेकिन कैसे हम इस अहंकार के प्रति परिपूर्ण रूप से जाग सकते हैं। उसकी चर्चा मैं कल आने वाले तीसरे सूत्र में करने वाला हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।